माननीय डा० कैलाश नाथ काटजू

समर्पण

भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता तथा संस्कृत भाषा के संरक्षक

भारतीय संघ तथा कानूनी क्षेत्र के दैदीप्यमान नक्षत्र

प्रयाग नगर के आलोक-स्तम्भ

भारत सरकार के गृह मंत्री

माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू

को

भारत को प्रयाग की देन

सादर समर्पित

—हरेन्द्र प्रताप सिनहा

———

विषय-सूची

पुस्तक-परिचय

तीर्थराज प्रयाग पर पुस्तक लिखना आसान नहीं है। यह कार्य कठिन है। प्रयाग का इतिहास एक दृष्टि से स्वयं भारतवर्ष का राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक इतिहास है। भारतीय मानव समाज का क्रमबद्ध इतिहास जब से मिलता है, तभी से प्रयागराज का भी इतिहास मिलता है। धार्मिक ग्रन्थों से लेकर आधुनिकतम ग्रन्थों के युग तक प्रयागराज के इतिहास के सूत्र अखण्ड, अटूट चलते चले आये हैं। प्रयागराज को भगवान रामचन्द्र, गौतमबुद्ध, शंकराचार्य, हर्षवर्द्धन, सम्राट अकबर, शेरशाह आदि ऐतिहासिक वीरों, आध्यात्मिक नेताओं और सामाजिक अधिनायकों के जीवन के साथ गौरवान्वित होने का अवसर मिला है। पंडित मदनमोहन मालवीय, पण्डित मोतीलाल नेहरू, पंडित जवाहरलाल नेहरू, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, आदि दर्जनों राष्ट्र वीरों ने इसी के आंचल में अभय पाया, इसी के वरदान से ये देश के अग्रणी नेता बने। संस्कृत साहित्य और हिन्दी साहित्य के कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण पृष्ठ भी यहीं लिखे गए। वाल्मीकि, तुलसीदास आदि ने मुक्त कण्ठ से इसके गीत गाए हैं। विदेशी भ्रमणार्थियों ने यहाँ आकर अपनी यात्रा को सफल बनाया है। सम्राट अशोक ने यहीं पर अपना विश्वविख्यात स्तम्भ बनवाया था। उदयन और कौशाम्बी के महत्व को कौन नहीं जानता? अक्षयवट की पूजा की परम्परा आज भी चलती जा रही है। 'जब लगि गंग जमुन जलधारा' तब तक प्रयाग की महिमा बनी रहेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

श्री हरेन्द्र प्रताप सिन्हा ने प्रयाग के परिचय के रूप में यह पुस्तक लिखकर एक सच्चे सजग नागरिक का और अध्यवसायी, मेधावी, परिश्रमशील अन्वेषक तथा संकलनकर्ता का कर्त्तव्य पूरा किया है जिसके लिए वह हम सब के साधुवाद के पात्र हैं। प्रयाग पर पहिले भी अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। वे समादृत भी हुयी हैं। हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक भी उन्हीं पुस्तकों की भाँति आदर प्राप्त करेगी और प्रयाग के गौरवशाली अतीत तथा वर्तमान से सर्वसाधारण को

पूर्णतया परिचित कराने में सफल होगी। यही श्री हरेन्द्र प्रताप सिन्हा की मनोकामना है और उनकी यह मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी।

प्रस्तुत पुस्तक की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें मात्र अतीत पर ही बल नहीं दिया गया है बल्कि उसे आज तक के सभी आवश्यक और महत्वपूर्ण तत्त्वों से अलकृत किया गया है। जिस तरह किसी समय सरकारी गजेटियर का सहारा लेकर किसी जिले को भली भाँति जाना जा सकता था उसी तरह इस पुस्तक पर भी भरोसा किया जा सकता है। परन्तु इसके अतिरिक्त इस पुस्तक की रचना एक सजग, सचेतन, देशभक्त, विचारक तथा स्वाभिमानी तरुण द्वारा हुई है इसलिए इसमें वह गर्मी, जोश, ओज और प्रेरणा भी है जिसका सर्वथा अभाव गजेटियर या अन्य पुस्तकों में रहा करता था। पिछली पुस्तकें वर्णनात्मक थीं, किन्तु यह पुस्तक रिसर्चस्कालर द्वारा लिखित प्रयाग नगर सम्बन्धी एक थिसिस की भाँति है। इस प्रकार यह पुस्तक एक ऐसा कोष बन गयी है, जिसमें प्रत्येक रुचि के लोग अपनी इच्छानुकूल रत्नकण प्राप्त कर सकते हैं। मात्र विद्यार्थी समाज के लिये ही नहीं, सर्वसाधारण के लिए भी इस पुस्तक में प्रचुर मात्रा में रुचिकर और ज्ञातव्य सामग्री भरी हुई है। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर प्रयाग की गौरव-गाथा के चमकते कण बिखरे पड़े हैं।

कुछ समय पहिले श्री हरेन्द्र प्रताप सिन्हा ने 'अमृत पत्रिका' में 'यह इलाहाबाद है' लेखमाला में प्रयाग के सम्बन्ध में लगभग एक दर्जन लेख लिखे थे। उन लेखों का बड़ा आदर हुआ था। उसी समय मैंने प्रयाग पर लोकरुचि को ध्यान में रखकर लिखी गई इस प्रकार की पुस्तक का सपना देखा था और श्री हरेन्द्र प्रताप सिनहा से जो इस विषय की पूरी जानकारी रखते हैं, इस कार्य को हाथ में लेने के लिए प्रार्थना भी की थी। छपाई सम्बन्धी कठिनाइयाँ न होतीं तो यह पुस्तक कभी की प्रकाशित हो गयी होती। बहेर हाल, 'देर आयद, दुरुस्त आयद।' अब यह पुस्तक जनता के हाथों में जा रही है और वह इसका सही मूल्यांकन करेगी।

पुस्तक माननीय कैलासनाथ काटजू को समर्पित की गई है। काटजू जी राजनीतिक नेता से अधिक सहृदय, सवेदनशील नीर क्षीर विवेचन-पटु, सदाशय मानव हैं। आधुनिक प्रयाग के निर्माण में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ

उन्हीं का नाम आता है। इसलिए इस पुस्तक का सम्बन्ध माननीय डाक्टर कैलाशनाथ काटजू के साथ होना सर्वथा उचित है।

आज का प्रयाग वही नहीं है जो वह दस वर्ष पहिले था। आगे भी वह अधिक तीव्रता के साथ बदलेगा, विकसित होगा। इस महत्त्वपूर्ण कार्य में प्रयाग भक्त डाक्टर कैलाश नाथ काटजू का विशेष हाथ होगा इसमें कोई सन्देह नहीं। यद्यपि प्रयाग की ओर से हमारी प्रादेशिक सरकार उदासीन है और वह सर हारकोर्ट बटलर की ही नीति पर चलती रहना चाहती है। मगर प्रयाग का महत्व इस प्रकार कम न किया जा सकेगा। प्रयाग की जनसंख्या पिछले दस वर्षों में प्रायः दूनी हो गई है। इसके साथ ही उद्योगधन्धों तथा आवास आदि के प्रश्न भी उठ खड़े हुए हैं। इन प्रश्नों को शीघ्र ही हल करना होगा, जिसमें यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

सहस्रों वर्षों से प्रयाग भारतवर्ष का आध्यात्मिक तथा धार्मिक केन्द्र रहा है। देश के, विशेषतया उत्तराखण्ड के, सांस्कृतिक जीवन को उत्कर्ष प्रदान करने में प्रयाग का अनुदान सदैव अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। ब्रिटिश काल में भी शिक्षा तथा संस्कृति के क्षेत्र में प्रयाग को प्रधान प्रकाश स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठा मिली थी। राष्ट्रीय आन्दोलन में तो प्रयाग ने सदैव देश को नेतृत्व प्रदान किया और आज भी उसकी यह परम्परा चल रही है। इसलिए प्रकाशकीय उदासीनता के बावजूद प्रयाग की महिमा और प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी रहेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक प्रयाग के एक सजग पहरुए की रचना है। वह प्रयाग की प्राचीन महिमा पर तो गर्व करता है; परन्तु वह लाखों अन्य प्रयाग निवासियों की तरह, प्रयाग के वर्तमान पर क्षुब्ध है और उसके भविष्य के लिए चिन्तित है। यदि समय रहते सरकार तथा जननायकों ने प्रयाग के प्रति किए गए अन्याय का प्रतिकार किया और सही दिशा में उचित कदम उठाया तो प्रयाग के नव-निर्माण का सार्वजनिक स्वप्न साकार होने लगेगा और तरुण श्री हरेन्द्र प्रताप सिनहा को भी अपना परिश्रम सार्थक जान पड़ने लगेगा। हमारी आखें उसी सुखद भविष्य की ओर लगी हुई हैं।

इलाहाबाद,
दीपावली
१९६३

—श्रीकृष्णदास
साहित्य सम्पादक
अमृत पत्रिका

प्राक्कथन

प्रयाग प्रागैतिहासिक काल से ही भारत का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। धार्मिक दृष्टि से भी उसका एक विशिष्ट स्थान रहा है। उसे तीर्थराज कहलाने का गौरव प्राप्त है। प्रतिवर्ष कुम्भ के अवसर पर त्रिवेणी तट पर एक विशाल मेला लगता है और देश के कोने कोने से लाखों यात्री एकत्रित होते हैं। प्रति बारहवें वर्ष जब बड़ा कुम्भ पर्व पड़ता है तो तीस-तीस, चालीस चालीस लाख यात्री सगम में स्नान करने आते हैं। उसके लिए कोई निमन्त्रण नहीं देता, कोई विशेष विज्ञापन नहीं किया जाता, तीर्थ यात्रियों को आकर्षित करने के लिए कोई आयोजन भी नहीं किया जाता, फिर भी नियत समय पर लक्ष-लक्ष नर नारी प्रयाग पहुँच जाते हैं और असाधारण समारोह का दृश्य उपस्थित करते हैं। वह कौन सी भावना या प्रेरणा है जो लाखों स्त्री पुरुषों को सगम के तट पर खींच लाती है? उस भावना अथवा प्रेरणा का मूलाधार यह विश्वास है कि तीर्थराज प्रयाग में पहुँच कर उनका सब कल्मष धुल जायगा। प्रयाग की पावनता उनको पवित्र बना देगी। यहाँ आकर त्रिवेणी का स्नान-दान, अक्षयवट का दर्शन-पूजन आदि ही नहीं होता था वरन् उन साधु-महात्माओं का सत्सग भी सुलभ होता था जो दूर-दूर से तीर्थराज में आकर एकत्रित होते थे। उनके बड़े-बड़े सम्मेलन और भाषण प्रवचन होते थे। उपनिषदों और पुराणों की कथाएँ यात्रियों को सुनाई जाती थीं और वे इन सब चीजों से नई-नई प्रेरणाएँ लेकर अपने घरों को वापस जाते थे। ये सब चीजें मिलकर यदि यात्रियों के जीवन को पवित्र बना देती रही हों, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है?

प्रयाग का बड़ा महात्म्य था, इसमें कोई सन्देह नहीं। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, विद्वान, महात्मा और महापुरुष यहाँ निवास कर चुके हैं। भारद्वाज ऋषि का आश्रम इसी प्रयागराज में था, जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता सहित पधारे थे। वे एक असाधारण विद्वान, आचार्य और तपस्वी ही नहीं थे, उनमें वैज्ञानिक सूझ बूझ और प्रतिभा भी थी। हाल ही में प्रकट हुआ है कि उन्होंने वायुयान निर्माण और उड्डयन पर भी एक ग्रंथ लिखा था जिसका विस्तृत उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है। संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि ऋषि का आश्रम भी प्रयाग के निकट ही था। अक्षयवट ने प्रयाग के महात्म्य-वृद्धि

में कम योग नहीं दिया। अक्षयवट के पूजन से ही मोक्ष नहीं मिलता था, लोगों का विश्वास था कि उसकी शाखाओं से कूद कर प्राण दे देने से भी मुक्ति और सद्गति प्राप्त होती है। ऐसे महत्वपूर्ण अक्षयवट का सारा इतिहास रहस्यमय बना हुआ है। प्रागैतिहासिक काल की अनेक ऐसी विभूतियाँ हैं जो यह उद्घोषित करती हैं कि तीर्थराज का जनता पर कितना अधिक प्रभाव था।

प्रयाग में और उसके आस पास अनेक ऐसे ऐतिहासिक स्थल हैं जिनके विषय में पूरी खोज की जाय तो बड़े-बड़े रहस्यों का उद्घाटन हो सकता है और प्राचीन काल के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है। कौशाम्बी में जो उत्खनन कार्य अब तक हुआ है वही यह प्रमाणित करने के लिए काफी है कि ऐतिहासिक महत्व की अमूल्य सामग्रियाँ पृथ्वी के गर्भ में छिपी पड़ी हैं। कौशाम्बी बुद्ध भगवान के समकालीन नरेश महाराज उदयन की राजधानी थी। कौशाम्बी की खुदाई से उस घोषितराम के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं जहाँ भगवान बुद्ध ने आकर महीनों निवास किया था। प्रयाग विश्वविद्यालय के योग्य इतिहासज्ञ श्री गोवर्द्धन राय शर्मा के निरीक्षण में जो खुदाई हो रही है उसे यदि सरकार द्वारा प्रोत्साहित किया जाय तो मुझे विश्वास है कि इतिहास की और भी अनेक दुर्लभ सामग्रियाँ प्राप्त हो सकती हैं।

कौशाम्बी के अतिरिक्त और भी कई प्राचीन ऐतिहासिक स्थल हैं। प्रयाग नगर से लगभग १५ मील की दूरी पर भीटा नामक एक गाँव है। इसके पास तीन बड़े टीले हैं जिनमें से दो की खुदाई भारतीय पुरातत्व विभाग की ओर से की गई है। अनेक शिलालेखों तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्रियों के अतिरिक्त एक प्राचीन नगर, गढ़ तथा राजभवनों के ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ भी अभी और खुदाई करने की आवश्यकता है ताकि पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुई वस्तुएँ सामने आ सकें और इतिहास के विद्वान उनके आधार पर महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकें। लाक्षागिरि, प्रतिष्ठानपुर (झूँसी), पातालपुरी का मन्दिर आदि के सम्बन्ध में भी पर्याप्त खोज और अनुसन्धान अपेक्षित है।

हर्ष का विषय है कि प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता श्री हरेन्द्र प्रसाद सिनहा एम० ए० रिसर्चस्कालर ने प्रयाग की महत्ता दिखाने के लिए तत्सम्बन्धी अनेक बातों का अनुसन्धान किया है। दूसरे शब्दों में प्रयाग के सम्बन्ध में एक खोजपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनका यह प्रयास निस्सन्देह बड़ा स्तुत्य है। उन्होंने प्रयाग की

प्राचीन काल की विभूतियों, स्थानों, तीर्थों और मन्दिरों का ही परिचय नहीं दिया है, वरन् उसके मध्य युग तथा आधुनिक काल की वस्तुओं पर भी प्रकाश डाला है। देश को प्रयाग की जो धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा राजनीतिक देन है उसका दिग्दर्शन कराया है। बड़े परिश्रम और अध्यवसाय के साथ उन्होंने काम किया है। उन्होंने ऐसे उपयोगी विषय पर अपनी लेखनी उठाई, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। उनके आदरणीय पिता बन्धुवर श्री बद्री प्रसाद सिनहा को भी साधुवाद है, जिन्होंने इस सद्कार्य के लिए अपने सुपुत्र को प्रेरित किया, प्रेरित ही नहीं किया बल्कि भर सहायता भी पहुँचाई। आवश्यकता है कि प्रयाग के सम्बन्ध में और भी खोज अनुसन्धान किये जायँ और एक सर्वाङ्गीण शृंखलाबद्ध इतिहास लिपिबद्ध किया जाय। आशा है कि श्री हरेन्द्र प्रताप जी स्वयं प्रयाग सम्बन्धी अपने अनुसन्धान को जारी रक्खेंगे और आगे चलकर इससे भी बड़ा ग्रन्थ हिन्दी संसार को अर्पित करेंगे जिसके लिये वे सर्वथा समर्थ हैं।

डा० कैलाशनाथ काटजू जिन्हें यह ग्रन्थ समर्पित किया जा रहा है भारतीय संस्कृति के उपासक और उन्नायक हैं। अपने व्यक्तिगत प्रभाव से तथा भारत सरकार के गृह मन्त्री के नाते वह चाहें तो प्रयागराज को बड़ा ही सुन्दर रूप दे सकते हैं, और उसका नाम स्वतन्त्र भारत में फिर चमका सकते हैं। प्रयाग की जनता उनसे आशा करती है कि वह प्रयाग की ओर समुचित ध्यान देंगे और उसके उत्कर्ष के लिए जो भी संभव होगा करेंगे।

प्रयाग सौभाग्य से अब भी एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र बना हुआ है। उसकी सांस्कृतिक परम्परा अक्षुण्ण है। अब जब अपना देश स्वतन्त्र हो गया है यह आवश्यक है कि प्रयाग जैसे प्राचीन महत्वपूर्ण स्थानों की ओर समुचित ध्यान दिया जाय और उनकी गौरव-गरिमा को पुनरुज्जीवित किया जाय। जब शताब्दियों के पराधीनता काल में भी प्रयाग अपने प्रभाव को कायम रखने में समर्थ रहा और विदेशियों का शासन उसकी धवल कीर्ति को अधिक धूमिल नहीं कर सका तो पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता के वातावरण में उसका बहुत सुधार व विकास किया जा सकता है। प्रयाग किसी समय इस प्रान्त की राजधानी थी, यद्यपि प्रान्त का नाम उस समय उत्तर प्रदेश नहीं पश्चिमोत्तर प्रदेश था। जब हारकोर्ट बटलर लेफ्टनेन्ट गवर्नर होकर आये तब उन्होंने प्रयाग की जगह लखनऊ को राजधानी बनाने का विचार किया और फलतः लखनऊ

ही राजधानी हो गया। धीरे-धीरे अनेक सरकारी कार्यालय भी यहाँ से लखनऊ भेज दिये गये। प्रयाग का महत्व कम कर दिया गया। अब जनता की अपनी सरकार है और वह चाहे तो प्रयाग के गौरव और प्रतिष्ठा को बढ़ाने का उपाय कर सकती है। मेरा सुझाव है कि विधान मंडल का एकाध अधिवेशन प्रतिवर्ष यहाँ भी किया जाय और मन्त्रिमंडल की बैठकें भी कभी कभी यहाँ बुलायी जायँ। इससे निश्चय ही प्रयाग की प्रतिष्ठा बढ़ सकती है। जो सरकारी कार्यालय अभी तक प्रयाग में ही बने हैं उन्हें स्थानान्तरित करने का विचार तो त्याग ही देना चाहिये।

मेरे अन्य सुझाव ये हैं :—देश विदेश के यात्रियों को आकर्षित करने के लिए सुचिन्तित आयोजन किया जाय। उनके लिए सब प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था की जाय। गंगा यमुना में नौका-विहार को प्रोत्साहित किया जाय। किला, अशोक-स्तम्भ, पातालपुरी के मन्दिर को आकर्षक ढंग से विज्ञापित किया जाय। खुसरूबाग, आजादपार्क और मिन्टोपार्क को अधिक रमणीक और सुसज्जित बनाया जाय, अजायबघर तथा पब्लिक लाइब्रेरी का विस्तार किया जाय। एक चिड़ियाघर भी स्थापित किया जाय। इसकी व्यवस्था आजादपार्क में ही की जा सकती है। झूँसी के क्षेत्र का विकास करने की योजना बनाई जाय। वृहत्तर प्रयाग की विशाल योजना को कार्यान्वित किया जाय। झूँसी और नैनी का पूर्णतया विकास करके और उन्हें नगर के साथ सम्बद्ध करके वृहत्तर प्रयाग का स्वप्न पूरा किया जा सकता है। उद्योग धन्धों का विकास तथा शिक्षा का विस्तार भी होना चाहिए। कौशाम्बी की खुदाई में जो अमूल्य सामग्रियाँ तथा ध्वंसावशेष मिले हैं उनका खूब प्रचार करने की आवश्यकता है ताकि दूर दूर के यात्री उधर आकर्षित हों। लंका, चीन और जापान के बौद्ध यात्री कौशाम्बी का दर्शन करने आ सकते हैं, क्योंकि इस प्राचीन नगर में भगवान बुद्ध ने आकर चतुर्मासा व्यतीत किया था। खुदाई से घोषितराम का भग्नावशेष और शिलालेख प्राप्त हो चुका है। कौशाम्बी-क्षेत्र का भी विकास करने और उसे रमणीक बनाने की आवश्यकता है। प्रयाग से कौशाम्बी जाने के लिए सुन्दर तथा प्रशस्त मार्ग का प्रबन्ध होना चाहिए। उसके किनारे-किनारे मील के पत्थर गाड़ दिये जायँ। कौशाम्बी की दिशा का निर्देश भी मोड़ के स्थानों पर होना चाहिए। इसी प्रकार लाक्षागिरि तथा भीटा की यात्रा करने की सुविधाएँ प्रस्तुत करनी चाहिए।

विश्वविद्यालय, उच्च न्यायालय, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी प्रयाग के महत्व को बढाने में सहायक हैं। एक बड़ा मेडिकल कालेज भी इस नगर में होना चाहिए। उत्तर प्रदेश की प्रथम राज्यपाल श्रीमती सरोजिनी नायडू ने इस सम्बन्ध में जो आश्वासन दिया था उसकी पूर्ति आज तक सरकार नहीं कर सकी है। आशा है कि इस नगर में एक विशाल मेडिकल कालेज की स्थापना करने में अब सरकार विलम्ब नहीं लगाएगी। किन्तु प्रयाग की महत्ता और प्रतिष्ठा को बढाने के लिए केवल सरकार पर नहीं निर्भर किया जा सकता। जनता को भी संगठित होकर अपनी आवाज उठानी होगी और आन्दोलन करना होगा।

यह बात उल्लेखनीय है कि प्रयाग में आजकल भी काफी सांस्कृतिक चेतना दिखाई पड़ती है। दर्जनों साहित्यिक तथा सांस्कृतिक गोष्ठियाँ स्थापित हैं और क्रियाशीलता दिखा रही हैं। वे चाहें तो प्रयाग के अभ्युदय और उत्कर्ष के लिए सबल आन्दोलन चला सकती हैं और शहर भर नगर-सुधार में योग दे सकती हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, गृह मन्त्री कैलाशनाथ काटजू, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टन्डन तथा पं० हृदयनाथ कुंजरू वर्तमान प्रयाग के ही जाज्वल्यमान रत्न हैं। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित जो आज संयुक्तराष्ट्रीय एसेम्बली के अध्यक्ष पद की शोभा बढ़ा रही हैं प्रयाग की ही निवासिनी हैं। पं० अयोध्यानाथ, त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, सर तेज बहादुर सप्रू, श्री सी० वाई० चिन्तामणि जैसी विभूतियाँ भी प्रयाग की ही देन हैं। उन्होंने अपने समय में दूर दूर तक प्रयाग की कीर्ति फैलाई।

मुझे विश्वास है कि श्री हरेन्द्र प्रताप सिनहा की प्रस्तुत पुस्तक का सर्वत्र स्वागत और आदर किया जायगा। वह लोगों में प्रयाग के प्रति गहरी रुचि जाग्रत करेगी और सब को इस के लिए प्रेरित करेगी कि वे तीर्थराज के अभ्युदय और उत्कर्ष में यथाशक्ति योग प्रदान करें। मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि जिस प्रकार प्रयाग का प्राचीन महान था उसी तरह उसका भविष्य भी उज्ज्वल होगा।

शंकर दयालु श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक, 'भारत'।

श्री हरेन्द्र प्रताप सिनहा एम० ए० रिसर्च स्कालर
प्रयाग

मेरी अपनी बात

अन्त में 'अमृत पत्रिका' तथा 'भारत' आदि समाचार पत्रों की फाइलों में यत्र तत्र, सजोये हुए 'यह इलाहाबाद है' शीर्षक के अंतर्गत मेरी लेखमाला के पन्नों ने, संकलित, सम्वर्द्धित एवं परिमार्जित रूप में, जुड़ बटुर कर, सुई तागे और कैंची के सहारे, एक पुस्तक का आकार धारण कर ही लिया। मित्रों के अनेक सुझाव-बुझाव की मंजिलों को पार करते कराते अन्त में इसका नामकरण संस्कार भी हो गया, 'भारत को प्रयाग की देन'। वक्रगामी पापग्रहों ने दाँत पीसे, क्रूर नक्षत्रों ने भृकुटियाँ टेढ़ी कीं, निशाकर एवं दिवाकर, हिमांशु और सहस्रांशु के प्रकाश पर सर्वग्रहण द्वारा आवरण डालने में सचेष्ट राहु केतु ने भी कुचेष्टा की। किन्तु बावजूद इन विघ्न बाधाओं के 'भारत को प्रयाग की देन' प्रकाश में आ ही गयी। प्रकाशित भी हुई और जो छुप रहा था वह बरबस छप भी गया। यह सब कैसे सम्भव हुआ? क्योंकि मुझ ऐसे अकिंचन के पास, ग्रहों और नक्षत्रों के प्रकोप से बचने के लिए उपचार स्वरूप न तो कोई यंत्र, मंत्र, तंत्र ही था, न उनसे लड़ भिड़ने के कोई अस्त्र-शस्त्र। साहित्यकारों की पंक्ति में बैठने तथा ग्रन्थकार बनने की साध ने मुझे बैठे-बैठाये 'राग ताल जानें नहीं दोनों हाथ मजीरा' की दशा में ला पटका। चिन्तना ने 'निर्बल के बल राम' का मन्त्र कान में फूँका। सचमुच मैंने अपने को निर्बल पाया और चल पड़ा एकाकी, बस फिर क्या था शर्त पूरी हो गई—यही तो त्रुटि थी, इसी भाव का तो अभाव ही था, क्योंकि—

> जब लगि गज बल आपन बरत्यो, नेकु सरयो नहि काम।
>
> निर्बल ह्वै बलराम पुकारयो, धायो आधे नाम।

हमारे देश में तो इस भाव ने सफलता के क्षेत्र में एक परम्परा प्रस्थापित कर दी है। शास्त्रकारों का कथन है कि यह भाव ही सफलता का बीजमन्त्र है और इसका अभाव ही असफलता का। 'अहं ब्रह्मास्मि' के अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित आदि शंकराचार्य ने भी दिग्विजय के अनन्तर अपनी ही शान्ति के लिये इसी भाव का आश्रय लिया था और करुण स्वर में कहा था—

"न मंत्रं नो यंत्रं तदपि च न जानेस्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जानेस्तुतिकथा
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनु शरणं क्लेश हरणं"

अर्थात्—हे भगवती मुझे अब ज्ञान हुआ कि मैंने मंत्र, तन्त्र, यंत्र, स्तुति, आवाहन, ध्यान, कथा, मुद्रा, आदि कुछ भी नहीं जाना। केवल तुम्हारी क्लेशहारिणी गोद में शरण लेना ही जाना।

यह तो हुआ देश की परम्परा और शरणागत की भावना के सम्बन्ध में, मेरा अभीष्ट तो यह बताना है कि मैंने ऐसी कठिन मंजिल को कैसे पार किया ? पथ लम्बा तथा दुरत्यय था, ध्येय आँखों से ओझल था पर इतना जानता था कि "कहीं मंजिल है प्रिय ठकुरानी की'। किम्वा कोताह 'खुदा खुदा करके कुफ्र टूटा', 'राम राम करि उतरे पारा।' किन्तु यह सब भी सहज में ही नहीं हो गया। नवजात शिशु का दर्शन का सुख भोग करने के पहले प्रसव वेदना का कष्ट भोगना ही पड़ता है। कपास को अन्त में वस्त्र का रूप धारण करने के पहिले जो कष्ट सम्भव होते हैं, वह कवि के निम्नांकित शब्दों में मुझे सब कुछ अनुभव करने ही पड़े—

आपु गड़ाय भया विरवा, परिहैं फुलिहैं अपने ऋतु सों
कौनउ सुन्दर नारि के पाले परया, तो कनाइ बुनाइ धरया शुचि सा
पानी में आगी के आंच सह्यो, धोबिया के पछाड़ सह्यो रुचि सों
इतना दुख पाइ भयो अचरा, तब क्यों न किलोल करै मुख सों।

अटूट चिन्तना, लिखना, क्रमबद्ध लेखमाला के प्रकाशनार्थ सम्पादक के यहाँ करबद्ध हाजिरबाशी, प्रकाशक की करबद्ध कराकर 'एवमस्तु' कहलाने वाली तपस्या, प्रेस में पीर, बावर्ची, भिश्ती और खर रूप में कार्य करना, यह सब क्या है ! यह सब कवि का कवित्व नहीं वरन् कठोर सत्य है। भारतीय लेखकों का यही संक्षिप्त जीवन चरित्र है। 'पढ़े फारसी बेचें तेल, यह देखो किस्मत का खेल' भारतीय चिन्तकों के जीवन का यही अन्त है। हाँ, वह अपने नवजात शिशु के सुकोमल मुख को देखकर कुछ क्षण के लिये सुख अवश्य अनुभव करता है। क्यों न हो ! तुलसीदास जी भी तो कहते हैं "निज कवित्त केहि लागि न नीका, सरस होइ अथवा अति फीका"। किन्तु मेरे भाग्य में तो इतना क्षणिक सुख भी

सदा नहीं है, क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक के जन्म का सारा श्रेय वस्तुतः सम्पादक प्रकाशक और उत्प्रेरक को ही है। मुझे तो इसी में सन्तोष है कि—

'मेरा इसमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे है मोर'॥

हाँ, इस पुस्तक के सामग्री संचय में, खोज शोध में, पूँछ ताँछ में, झिड़कियाँ और घुड़कियाँ सहने, दर दर की ठोकरें खानें, राह राह की धूल फाकने का श्रेय निस्सन्देह मुझे ही मिलना चाहिये। अपने परिश्रम के इस प्रतिफल से ही मुझे पर्याप्त सन्तोष मिलेगा। देव-दानव ने मिलकर समुद्र मन्थन किया। श्री, रम्भा, विष, वारुणी, अमृत, शख, एरावत, उच्चैश्रवा आदि चौदह रत्न निकले। देवासुर समाम हुआ। सरपच बनकर बँटवारा करते समय कथित रत्नों में शिरोमणि 'श्री' को तो श्रीपति ने स्वय ले लिया, और वज्रधारी देवेन्द्र इन्द्र को हाथी घोड़ा, रम्भा, पारिजात आदि रत्न दे दिये। किन्तु इस नाटक के सूत्रधार देवाधिदेव विश्वनाथ का क्या मिला? हलाहल विष' जिसे वह प्रसन्नतापूर्वक पान कर गये। उनकी 'कुन्द इन्दु सम देह' विष की ज्वाला से तरुण नील हो गई।

चतुर श्रीपति ने कहा 'वाह' सुकण्ठ भगवान भोलेनाथ आज नीलकण्ठ हो गये'। उपस्थित देवतागणों ने जो अमृत की थोड़ी थोड़ी 'सिन्नी' प्रसाद पाकर श्रीपति द्वारा उपकृत हो चुके थे, एक स्वर से 'नीलकण्ठ भगवान की जय' का उद्घोष कर दिया। भोलेनाथ के नाम के साथ एक 'विशेषण' और जुड़ गया। मेरे सम्बन्ध में भी इतना ही काफी होगा कि मैं भी साहित्यिकों की बिरादरी में, लेखकों की टाट में शामिल हो जाऊँ, और उनके बीच मेरा भी हुक्का पानी चालू हो जाय। हाँ, तो अमृत घट पाने के लिए देव-दानव युद्ध हुआ। युद्ध १२ दिन रात तक (मनुष्यों के बारह साल) चलता रहा। प्रथम युद्ध प्रयाग के सगम पर हुआ। इस सघर्ष में एक बुन्द अमृत का सगम पर गिर पड़ा। इसी अमृत बुन्द को प्राप्त करने के लिये हर साल विशेषतः बारहवें साल ५० लाख मानव प्रयाग में सगम पर एकत्रित होते हैं। सम्भव है आज छत्तीस साल पर महारुद्र कुम्भ के अवसर पर समाप्त मेरी इस पुस्तक में भी जिसमें प्रयाग तथा त्रिवेणी का माहात्म्य वर्णन किया गया है—शायद तथाकथित बुन्द का एकाध कण हो। पाठकगण इसमें अमिय बुन्द पाने के चाव से पढ़ें। मैं इतने ही में अपने को कृतकृत्य समझूँगा।

किन्तु जिस समय मेरी इस पुस्तक पर मेरे जाने-माने तथा समझे-बूझे लोगों की

नजर पड़ेगी, मुझ पर 'ग्रव्यवस्थित चित्तता' का दोषारोपण करेंगे। वस्तुतः उनका यह आरोप सामान्य दृष्टि से न्यायसंगत ही होगा। क्योंकि मैं प्रयाग विश्वविद्यालय का एक रिसर्च स्कालर हूँ। 'मीरा और उनका जीवन चरित्र' मेरी थिसिस का विषय है। विषय इन्द्रायण की फल की भाँति देखने में सुन्दर किन्तु वास्तव में कठोर है। मीरा के सम्बन्ध में खोज करने का मार्ग प्रशस्त नहीं वरन् कण्टकाकीर्ण है। अभी तक उनके पति और पिता का नाम असंदिग्ध नहीं, जन्म मृत्यु स्थान निस्सन्देह नहीं, जन्म मृत्यु तिथि सिद्ध प्रसिद्ध नहीं। निष्कर्ष अभी तक उनकी सही जन्म कुण्डली हो नहीं बन पाई। दर्जनों विद्वान् लेखकों ने इन तमाम सन्देहों को निस्सन्देह बनाने की चेष्टा की किन्तु परिणाम हुआ 'श्रुति पुराण बहु कह्यो उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई'।

ऐसे पथ का पथिक होकर मैं विपथ क्या हुआ? इसका केवल एक ही उत्तर है कि मैंने ऐसा करने की आज्ञा अपने श्रद्धेय एवं पूज्य गुरुजनों—डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० रामकुमार वर्मा से सहर्ष प्राप्त कर ली थी। पथ प्रदर्शक के इशारे पर चलने वाला पथिक कभी भी पथ से विपथ नहीं हो सकता, उसके आशीर्वाद से कुपथ भी सुपथ हो जाता है। एक पहुँचे हुये फकीर 'हाफिज' का कहना भी है कि—

ब मय सज्जादा रगीं कुन गरत पीरे मुगां गोयद
कि सालिक बेखबर न बुवद जे राहो रस्म मंजिलहा

अर्थात्—अगर अपने गुरु आज्ञा दें कि तू अपनी पूजा की आसनी और पँचपात्र को शराब से रंग ले, तो शिष्य को ऐसे निषिद्ध काम के करने में भी हिचकिचाना नहीं चाहिये, क्योंकि पथ प्रदर्शक सालिक मंजिल के रीति रिवाज, कायदे कानून से बेखबर नहीं है। मालूम नहीं इसमें उसकी क्या मंशा है।

हमारे अग्रणी, अग्रज लेखकों तथा साहित्यकारों ने भी एक अनरीति-रीति चला दी है कि लिखते समय अन्त में, और छपते समय पुस्तक के आदि में लेखक के 'दो शब्द' रूपी वक्तव्य लिखना जरूरी है। वक्तव्य लिखना ही है, क्योंकि यह टेव कुटेव, प्रकाशक, पाठक, क्रेता विक्रेता आदि सभी में व्याप्त हो गया है। फिर आधुनिक लेखकों में इस रीति ने परम्परा का रूप धारण कर लिया है, परम्परा हो नहीं अब तो यह साहित्य की लीक बन गई है। रीति से अनरीति, परम्परा के विपरीत तथा लीक से अलीक अथवा बेलीक चलना मेरे लिये न

श्रेयस्कर है और न सुखकर। इसके अतिरिक्त लेखक को समालोचक का भय भी हमेशा काँटे की तरह मस्तिष्क में करकता रहता है। लेखक स्ववश में नहीं, विवश होकर 'दो शब्द' का सहारा लेता है। जहाँ लेखक है, वहाँ समालोचक है जहाँ ईख है वहीं सरकडा भी है। यह बात दीगर है कि ईख सरस और सरकडा नीरस होता है।

समालोचक प्रसन्न भी होता है तब भी उसके प्रशंसात्मक शब्द आलोचनात्मक ही होते हैं। वह प्रशंसा के साथ साथ इतना अवश्य ही कह देता है कि 'सब ठीक है' किन्तु इसकी भाषा हिन्दी नहीं कही जा सकती, इस हिन्दी में चिन्दी नहीं, और चिन्दी में बिन्दी नहीं। किताब का गेटअप सुन्दर नहीं, कागज उम्दा नहीं, छपाई साफ नहीं, प्रूफ गलत पढ़ा गया इत्यादि इत्यादि।

हम और हमारी बिसात और वकात क्या? तुलसीदास जी ऐसे कवि ने भी हनुमानजी के सहारे राम चरित्र ऐसे शुद्ध वर्ण्य विषय पर लिखते समय सबसे पहिले इसी खल जीव की वन्दना की है। समालोचक शब्द तो आज गढा गया है। पहिले इस जीव को 'खल' ही कहा जाता था। तुलसीदास जी कहते हैं।

बहुरि बन्दि खल गन सतभाएँ। जे बिन काज दाहिने बाएँ।
परहित हानि लाभ जिन्हकेरे। उजरे हरष विषाद बसेरे।
हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।
जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिनके मन माखी।
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं।
बचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहस नयन पर दोष निहारा।

यह है तुलसीदासजी का समालोचक। इसी तरह की नुक्ता चीनी से तंग आकर 'गोल्डस्मिथ' ऐसे लेखक ने भी अपनी कविता को सम्बोधन करके उसकी सान्त्वना की है। वह कहते हैं "कविते! यह बकदरी का जमाना है, लोगों के चित्त को तेरी तरफ खींचना तो दूर रहा, उल्टे सब कहीं तेरी निन्दा होती है। तेरी बदौलत सभा, समाजों एवं जलसों में मुझे लज्जित होना पड़ता है। पर जब मैं अकेला होता हूँ तब तुझ पर मैं घमण्ड करता हूँ। याद रख तेरी उत्पत्ति स्वाभाविक है। जो लोग अपने नैतिक बल पर भरोसा रखते हैं, वे निर्धन रह कर भी आनन्द से रह सकते हैं।"

हमारे अग्रज लेखकों के पूर्वज भी तो कहते हैं 'उपयुक्तमनुपयुक्तं कर्तुं शक्य

नहि वचन सहस्रै" अर्थात् एक सहस्र वचन (समालोचक के) भी उचित को अनुचित नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त पश्चात्य आधुनिक चिन्तक भी तो सहारा देते हैं कि What is is, जो कुछ है सो है। किन्तु अदब व लिहाज रोकता है, और फिर 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' ऐसे आप्त वाक्य का उल्लंघन भी तो होता है। इन सबके अतिरिक्त नीति भी तो आज्ञा नहीं देती; वह कहती है कि अभी तुम साहित्यिकों और लेखकों की टाट में दर्ज भी नहीं हो पाये हो। परशुराम द्वारा भयभीत क्लीव क्षत्री-समाज की भाँति आज के साहित्यिक समाज में सन्त भेष करणी कठिन' वाले परशुधर की भाँति "कटि मुनि वसन तून दुइ बांधे। धनुसर कर कुठार कल कांधे" के वेष में पहिले पहिल प्रवेश करना नीति के विरुद्ध भी तो है।

निष्कर्ष मुझे भी 'दो शब्द' लेखक के वक्तव्य के रूप में लिखना ही पड़ेगा, बिना लिखे पिण्ड नहीं छूटता। अब प्रश्न है कि लिखूँ क्या। मुमुक्षुओं के 'क्यों, क्या और कैसे' प्रश्नों के उत्तर स्वरूप अठारह उपनिषद वजूद में आए। राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य के 'क्यों, क्या और कैसे' के प्रश्नों ने ही तो दुर्गा सप्तशती का निर्माण कराया। कुरुक्षेत्र में किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन द्वारा किये गये इन्हीं तीनों प्रश्नों का कृष्ण जी द्वारा समाधान ही तो सर्वमान्य पुस्तक भागवत गीता है। फिर मेरे 'दो शब्द' का विषय भी यही 'क्यों' क्यों न हो। मैंने यह किताब क्यों लिखी इसके पीछे एक रोचक कहानी है।

एम० ए० पास करने के बाद मैं प्रयाग विश्वविद्यालय का एक रिसर्च स्कालर हो गया। इसकी सूचना पिता जी को दी। श्रद्धेय पिता जी के मुख से अकस्मात् निकल पड़ा, "जिसको आत्मज्ञान नहीं उसे परमात्मा का ज्ञान कैसे सुलभ हो सकता है? जिसे अपने घर बार मुहल्ला और नगर का पर्याप्त ज्ञान नहीं वह मीरा ऐसी भक्त तथा देश देशान्तर के गर्भ में गड़े हुए निधियों की खोज क्या कर सकता है?" मैं चुप लगा गया। मैंने उस समय इन शब्दों का अर्थ मन ही मन यह लगाया कि पिता जी ने अभी कल तक राजनैतिक क्षेत्र में एक गर्म, स्वतन्त्र तथा मुँह पर ही दो टूक कठोर सत्य बात कहने वालों की भांति अपना सारा जीवन व्यतीत किया, और अब आजकल आपकी मनोवृत्ति अध्यात्म की ओर हो गयी है। शायद राजनीति की गर्म धार तथा अध्यात्म की शीतल धाराओं के अनमेल मेल का यह परिणाम हो। मुझे क्या मालूम था कि एक दिन यही शब्द

गगा जी के ग्रध्यात्म रूपी शीतल जल, जमुना के राजनीति रूपी गर्म जल प्रयाग मे मिलकर ज्ञानरूपी ग्रदृश्य सरस्वती की तीसरी धार मेरे मस्तिष्क से बह निकलेगी, और इस प्रकार बने हुए त्रिवेणी तट पर बसे हुए प्रयाग के महात्म्य का वर्णन मुझे करना पडेगा।

इस घटना के कुछ दिनो बाद मुझे एक कहानी के प्रकाशनार्थ श्री श्री कृष्णदास जी साहित्य सम्पादक 'अमृत पत्रिका' से मिलने का अवसर मिला। उन्होंने बात ही बात मे कह डाला कि आप जैसे रिसर्च स्कालर के लिए किस्सा कहानी के लिखने और छपवाने में समय व्यय करना वाछनीय नहीं है। आपको सूक्ष बूझ, खोज एव अनुसन्धान सम्बन्धी लेख लिखना चाहिये। उन्होंने उसी समय 'यह इलाहाबाद है' विषय पर लिखने के लिए आग्रह किया। मैंने लिखा और उन्होंने पत्र में प्रकाशित कराया। प्रशसात्मक शब्दों से अधिक लिखने के लिए उकसाया। चारा पानी दे देकर ऐसे १२ लेख मुझसे लिखवाये और प्रकाशित कराये। ६ लेख 'भारत' में भी प्रकाशित हुए। यही इस पुस्तक का आधार एव नींव है।

पुराणों में लिखा है कि प्रलय के समय विष्णु क्षीर सागर के तल में निश्चिन्त होकर सो गये। उनकी इस सुषुप्ति अवस्था म उनकी नाभि से कमल नाल निकल कर सागर की धरातल पर आया, उससे कमल फूला और उससे ससार के रचयिता ब्रह्मा उत्पन्न हो गये। ठीक इसी प्रकार से श्रद्धेय पिता जी के वे दो शब्द बीज रूप से मेरे हृदय मे जम गये, नाभि से ऊपर मेरुदण्ड के सहारे इन विचारों ने कमल नाल की भाति बढते बढते मस्तिष्क रूपी शरीर के धरातल पर कमल का रूप धारण कर लिया। श्री कृष्णदास जी के आग्रह-रूपी पवन के झकोर से कमल विकसित हो गया। तदन्तर उसी कमल से रचयिता भी उत्पन्न हो गया। इस प्रकार इस पुस्तक की रचना हो गई। कुरान शरीफ का कथन है कि सृष्टि रचना के समय खुदा ने कहा 'कुन' (हो जा) और फैकुन (ससार हो गया)। शायद खुदा की यह करामात भी इस रचना क पीछे प्रेरणा स्वरूप रही हो। किन्तु मेरी समझ में तो नैयायिकों का घुणाक्षर न्याय ही इस रचना के पक्ष में है। घुन ने तो अपनी उदरपूर्ति के लिए ही काठ को खाया था, किन्तु उसकी इस क्रिया से काठ के अन्दर कुछ टेढी मेढी लकीर बन गई, और कहीं कहीं यही लकीर सयोगवश अक्षर सी दिखने लगी। विद्वान् सद्जनो ने इन अक्षरों से शब्द बना लिया। इस प्रकार पुस्तक की रचना हो गई।

अब जब कि मेरे इस प्रकार के प्रयास द्वारा पुस्तक की रचना हो गई, तो अनायास ही मुझमें ऐसा विश्वास उत्पन्न होने लगा है कि मानव जीवन दुष्कर और दुरत्यय होते हुए भी मेरे भावी जीवन का मार्ग प्रशस्त है। क्योंकि इस पुस्तक रचना द्वारा मैं उन तीन जन्मज ऋण त्रयी से उऋण होने की दिशा में सचेष्ट हो गया हूँ, जिनसे मुक्त हो जाना ही जीवन में मुक्त होना है। हमारे स्मृतिकारों का कहना है कि मनुष्य तीन प्रकार के ऋणों को लेकर जन्म लेता है। ये तीन ऋण हैं—देवऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण। शरीर धारण करने के कारण पितृ ऋण, विद्वानों तथा वैज्ञानिकों की आविष्कृत ज्ञान राशि को सहज ही पा जाना ऋषि ऋण है। इस तरह विद्योपार्जन करके ज्ञानधारा को अग्रसर रखना कोई अनुग्रह नहीं है केवल कर्जा चुकाने का कर्त्तव्य-पालन मात्र है। इसलिये प्रत्येक भारतीय व्यक्ति से यह कम से कम आशा की गई है कि वह समाज को स्वस्थ और शिक्षित सन्तान दे, प्राचीन ज्ञान परम्परा की रक्षा करे, आगे बढ़ाये। मनुजी कहते हैं कि—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य, मनोमोक्षे निवेशयेत
अनपाकृत्य मोक्षन्तु, सेवमानो व्रजत्यधः

अर्थात् जब तक ये तीन ऋण चुका नहीं दिये जाते तब तक मनुष्य को बड़ी बात सोचने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार इस पुस्तक रचना द्वारा मैं ऋणत्रयी से मुक्त तो नहीं हो गया किन्तु संयोगवश जीवन यात्रा की आरम्भिक दशा में ही इस ओर प्रयत्नशील हो गया, यही क्या कम है! पिता जी की आज्ञा से पिता के मोक्ष स्थान, सब देवताओं के निवास स्थान तथा ऋषियों के प्रमोद स्थान, तीर्थ राज प्रयाग का महिमा गान करके मैं इन तीन ऋणों से मुक्त होने का अधिकारी बन सकता हूँ ऐसा कहा जा सकता है।

दो शब्द लिखने में मेरी कामना यह है कि पाठक गण त्रुटियों पर ध्यान न देकर भाव ही पर नजर रखें इसी में मेरा भला है। इसके लिये मैं पाठकों से विनृवत् नहीं वरन् मातृवत् व्यवहार चाहता हूँ। मैं इस तथ्य से भलाभाँति परिचित हूँ कि कर्त्ता धर्त्ता और हर्त्ता से भी बढ़कर पुत्र का सबसे हितचिन्तक पिता है। किन्तु पुत्र को सुपुत्र बनाने तथा अपने से भी बड़ा बनाने के नशे में वह कठोर अनुशासक भी होता है। वह पुत्र के प्रत्येक कमी की पूर्ति, प्रत्येक त्रुटि का सर्वथा सुधार चाहता है और देना चाहता है प्रत्येक अपराध का दण्ड।

पुत्र के हितार्थ पिता अपना सर्वस्व बलिदान कर सकता है किन्तु नहीं कर सकता उसके अपराधों को क्षमा। किन्तु उनके विरुद्ध पुत्र के एक-एक अपराध को गिन गिनकर क्षमा कर देने की क्षमता केवल माता में है तुलसीदास जी ने क्या खूब कहा है कि—

राम बिना दुख कौन हरे। बरखा बिनु सागर कौन भरे
धरती बिनु धीरज कौन धरे। माता बिनु ममता कौन करे।

अन्त में निम्नांकित श्लोक द्वारा पाठकों से क्षमा याचना करते हुए यही कहता हूँ कि 'एवं ज्ञात्वा महादेवः यथा योग्य तथा कुरु।'

पृथिव्या पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
पर तेषा मध्ये विरल तरलोऽय तव सुतः
मद योऽय त्याग. समुचितमिदंनो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत. क्वचिदपि कुमाता न भवति

अर्थात्—हे माँ इस ससार में तेरे असख्य पुत्र हैं, उनमें से मैं विरला ही एक कुपुत्र हूँ। आपको ऐसे पुत्र को भी त्याग देना उचित नहीं है। क्योंकि पुत्र तो कुपुत्र हो सकता है किन्तु माता कुमाता नहीं हो सकती।

—हरेन्द्र प्रताप सिनहा

पीली कोठी
कीटगंज
इलाहाबाद

प्रयाग महात्य

अत्र या न गति ब्रूते, गतिस्तस्य न कुत्रचित्।
अत्र काम न यो ब्रूते, तस्य कामो नकुत्रचित् ॥१॥
अत्र मोक्ष न यो ब्रूते, तस्य मोक्षो न कुत्रचित्।
वैराग्यं नात्र यो ब्रूते, तत्र तस्यास्ति कुत्रचित् ॥२॥
चतुवर्ग प्रदानेन जागरूके जगत्रये।
यदत्र नास्ति यो ब्रूते तत्र तस्यास्ति कुत्रचित ॥३॥

अर्थात्—इस तीर्थ मे गति नहीं होती जो ऐसा कहता है, उसकी गति कहीं नहीं होती। जो कहता है कि यहाँ मनोरथ सिद्धि नहीं होती, उसकी मनोरथ सिद्धि कहीं नहीं होती ॥१॥ जो कहता है यहाँ मोक्ष नहीं होता, उसका मोक्ष कहीं नहीं होता। जो कहता है कि यहाँ वैराग्य नहीं होता उसका वैराग्य कहीं नहीं होता ॥२॥ तीनों लोकों में धर्म अर्थ काम और मोक्ष देने के लिए प्रयाग सदा तैयार रहता है, इतने पर भी जो कहता है कि यहाँ अमुक वस्तु नहीं है तो समझना चाहिए कि उसके लिए वह कहीं भी नहीं है ॥३॥

प्रयाग की विशेषता

न यत्र योगा चरण प्रतीक्षा
न यत्र यज्ञेष्टि विशिष्ट दीक्षा
न तारक ज्ञान गुरोरपेक्षा
स तीर्थ राजो जयति प्रयाग.

अर्थात—तीर्थराज प्रयाग मे मोक्ष के लिये योगसाधन तथा आचरण की, पवित्रता की, प्रतीक्षा नही करनी पड़ती, और यज्ञ, इष्ट आदि की कोई खास दीक्षा भी नहीं लेनी पड़ती। तारक मन्त्र, ज्ञान तथा गुरु की भी यहाँ अपेक्षा नहीं रहती। यह तीर्थराज प्रयाग सबसे श्रेष्ठ है।

प्रयाग की ऐतिहासिकता

विश्व के प्राचीन आठ संस्कृतियों—भारतीय संस्कृति, मिश्री संस्कृति, रूसी संस्कृति, मितनी संस्कृति, सुमेरी संस्कृति, ईराकी संस्कृति, चीनी संस्कृति—में से आर्य संस्कृति का केन्द्र स्थान, पवित्र त्रिवेणी धारा से सिंचित; भारत के प्राचीन प्रसिद्ध सप्तपुरियां—अयोध्या मथुरा, माया, कांची, काशी, अवन्तिका, पुरी और द्वारावती में शिरोमणि प्रयागराज का इतिहास बहुत प्राचीन है। इस देश के इतिहास में प्रयाग का सदैव से गौरव पूर्ण स्थान रहा है। साहित्य का आदि स्रोत बाल्मीकि रामायण इसी प्रदेश के गंगा और टौंस के संगम पर करुण श्लोक के रूप में उद्गरित हुआ था। यह नगर आदि काल से ही सम्पूर्ण भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रेरणा का केन्द्र रहा है। इस देश के इतिहास के प्रायः सभी युगों के गौरवपूर्ण अवशेष यहाँ पाये जाते हैं। ऋषियों, मुनियों, महापुरुषों और सम्राटों का सदैव से यह प्रयाग आकर्षण केन्द्र रहा है। देश के स्वाधीनता संग्राम में सन् १८५७ से लेकर आज तक पराधीनता का पाश तोड़ने के लिये इस प्रदेश के वीर सेनानियों ने घोर आत्मोत्सर्ग किया है। यह वह प्रदेश है जिसने अपनी ऐतिहासिक परम्परा, अपनी प्राचीनता अपने गौरव के अनुसार देशोद्धार के किसी कार्य से अपने को विमुख नहीं किया है। राम राज्य के आदि संस्थापक मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने यहीं, दस सहस्र ब्रह्मचारियों के विश्व विद्यालय के कुलपति, हवाई जहाज निर्माण और संचालन आदि के प्रथम अनुसंधान कर्त्ता, सर्व वैज्ञानिक तन्त्रों के संकलन कर्त्ता, सर्वतंत्र संग्रह पुस्तक के रचयिता भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पधार कर इस भूमि को गौरवान्वित किया था। महाराज दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ को सफलतापूर्वक सम्पादित कराकर, राम, लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न के जन्म के कारण मुनिवर शृङ्गीऋषि का पुण्य स्थान, शृंगवेरपुर, बनगमन के समय सर्व प्रथम विश्राम देने वाला शिंशुपा वृक्ष' इसी प्रयाग के अन्तर्गत है। 'तनय ययातिहि यौवन दयऊ' की प्रसिद्धि वाले महाराज ययाति की राजधानी प्रतिष्ठानपुर (झूसी) आदि प्राचीन ऐतिहासिक स्थल

इसी प्रयाग में है। भगवान कृष्ण और भक्ति शिरोमणि सुदामा के गुरु संदीपन ऋषि का आश्रम त्रिवेणी तट से २० मील के दूरी पर संगीतीघाट पर आज भी नीबहना गाँव के पास वर्त्तमान है।

यहीं सम्राट् हर्षवर्द्धन ने अपनी समस्त भौतिक सम्पत्ति का अपूर्व 'सर्वस्वदान' करके हरिश्चन्द्र के आदर्शों की पुनरावृत्ति की थी। महाभारत में वर्णित लाक्षागृह, महाराज उदयन के वत्सराज की राजधानी कौशाम्बी जहाँ भगवान बुद्ध ने स्वयं चतुर्मासा घोषिताराम में व्यतीत किया था, इसी प्रयाग में है। यहीं सम्राट् अशोक ने, जिनका धर्मचक्र आज भी हमारी राष्ट्रध्वजा को सुशोभित कर रहा है, अपनी एक लाट इस नगर में स्थापित की थी, जो आज यहाँ के वर्तमान किले में मौजूद है जिसे सम्राट् अकबर ने इस स्थान की महत्ता को दृष्टि में रखते हुए, गंगा और यमुना के संगम पर निर्माण कराया था। बौद्धकाल का प्रसिद्ध स्थान गुप्तवंश की राजधानी 'सहजाति' (भीटा) भी इसी जन पद में पुरातत्व विभाग के खोज का महत्वपूर्ण स्थान बना हुआ है। गुरु से विश्वासघात जैसे ब्रज पाप से मुक्ति पाने के लिये यहीं त्रिवेणी तट पर तुषानल में जीवित चिताग्न्द, बौद्ध धर्म को मूलोच्छेद करने वाले प्रथम विद्वान् कुमारिल भट्ट ने आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य को बौद्धों एवं अन्य वैदिकधर्म विरोधियों पर दिग्विजय प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया था। श्री रामावत अथवा वर्त्तमान वैष्णव वैरागी सम्प्रदाय के संस्थापक श्री रामानन्द (प्रथम धार्मिक क्रान्तिकारी) ने यहीं जन्म लिया था। 'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम' एवं 'अब मरी हँसी नहीं तेरी हँसी है' कहकर भगवान को उपालम्भ देने वाले बाबा मलूकदास, और उनके गुरु श्री मद्देवमुरारी जी का जन्म स्थान यहीं प्रयाग में है। आधुनिक भारत निर्माण की पृष्ठभूमि के एक दृढ स्तम्भ, अपनी स्थावर तथा जंगम सर्व सम्पत्ति का सर्वस्व दान करके, त्रिवेणी तट पर राष्ट्र के तीन धाराओं, धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक, को एक केन्द्र बिन्दु पर मिला देने के प्रयत्न स्वरूप एक पाठशाला को संस्थापित करने वाले मुंशी काली प्रसाद कुलभास्कर, चार साल के दुधमुही कांग्रेस संस्था को कालिवन ऐसे पूतना के हाथ से बचाने वाले आधुनिक भारत के प्रथम विद्रोही नेता प० अयोध्यानाथ, भारत माता के आवाहन करने पर स्त्री, पुत्र, पुत्री, आनन्द भवन यहाँ तक कि अपने दामाद तथा अपने

आपको रणकुण्ड में बलिदान कर देने वाले भरथरी की पुनरावृत्ति करने वाले त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दोस्तान का नारा लगाकर अधोमुखी हिन्दूराष्ट्र को बचाने वाले महामना मालवीय, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति लब्ध, बापू के उत्तराधिकारी, पूरा संसार का उदीयमान सूर्य जवाहर, महामना मालवीय तथा लाला लाजपतराय के उत्तराधिकारी स्वतंत्र भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा की मान्यता दिलाने वाले राजर्षि टण्डन, कानूनी संसार के देदीप्यमान नक्षत्र, विभिन्न परिस्थितियों में भारत की सेवा करने वाले, केन्द्रीय सरकार के वर्त्तमान गृहमंत्री माननीय कैलाशनाथ काटजू, देश-विदेश में भारत की ध्वजा ऊंची करने वाली विजयलक्ष्मी आदि भारतीय नक्षत्रों, सर तेज बहादुर सप्रू ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति, सर सी० वाई चिन्तामणि ऐसे दिग्गज पत्रकार, डा० सच्चिदानन्द सिनहा ऐसे बहुमुखी शास्त्र के विद्वान्, तथा स्वतंत्र भारत के विधान परिषद के प्रथम प्रेसीडेन्ट, हरिजन उद्धारक श्री ईश्वर सरन, आजन्म भारत माता के अवैतनिक सेवक, सर्वेन्ट आफ इण्डिया सोसाइटी के प्रेसीडेन्ट हृदयनाथ कुँजरू जैसे जगमगाते नक्षत्रों, तथा शृंगवेरपुर निवासी प्रसिद्ध रसकृति कवि 'माघ' 'तोषनिधि' नागेश भट्ट, और वर्त्तमान समय में बालकृष्ण भट्ट, श्रीधर पाठक आदि जैसे साहित्य सेवियों को उत्पन्न करने का गौरव इसी जनपद को प्राप्त है।

किन्तु आज का युग विश्वव्यापी आर्थिक विषमता और राजनैतिक प्रभुत्ववाद का युग है। इसके फलस्वरूप यथार्थ जीवन की प्रतिदिन की समस्याएँ ऐसी जटिल हो गई हैं और जटिलतर होती जा रही हैं कि जनसाधारण को नोन, तेल, लकड़ी की चिन्ता से अवकाश नहीं मिलता। इन समस्याओं को सुलझाने में उनकी सारी शक्तियाँ क्षीण होती चली जा रही हैं। इस विषम परिस्थिति में किसको पड़ी है कि वह इस बात की चिन्ता करे कि प्रयाग तीर्थराज है, अथवा देश के साहित्यिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उस स्थान का कितना महत्व है। सच है, नंगी और भूखी जनता से हम ऐसी आशा भी नहीं रखते।

किन्तु अगर कोई चिन्तक बरबस इस ओर ध्यान भी देना चाहे तो न्यूयार्क, शिकागो, फिलेडेलफिया, लन्दन, पेरिस और वेनिस की बीस से अस्सी तल्ला गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ, रबर, तथा नहर की सड़कें, नगर के ऊपर अन्तरिक्ष

में तैरते हवाई जहाज, भूगर्भ में सौ सौ मील की गति से दौड़ने वाली रेलें, धरातल पर आप आप पटे पर छूटने वाली गाड़ियाँ, मोटरें, बसें और ट्रकें हमें कब सोचने देंगी कि दजला फरात के कछारों में, गंगा जमुना के पवित्र सगम पर, राइन और टाइबर के तटों पर, नील नदी के घाटी में, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु नद के मैदानों में भी कभी ऐसे महान नगर बसे थे, जहाँ आत्म और ईश्वर का जन्म हुआ था, मनु और शतरूपा ने मानव के आदि विकास के लिए एकाकी तपस्या की थी, जहाँ ज्योतिष, गणित, दर्शन आदि ज्ञान विज्ञान और विभिन्न कलाओं का जन्म और विकास हुआ था, जहाँ आज भी रोम, एथन्स, कारथेज, बेबिलोनिया, प्रयाग, मोहन जोदड़ो और हरप्पा ऐसे नगर दृश्यमान हैं, जो हजारों साल के अतीत के इतिहास को गर्भ में छिपाए गम्भीर मुद्रा से खड़े, फावड़ा कुदाल वाले पुरातत्व खोजी मजदूरों की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि उनका हृदय चीरा जाय और ससार का इतिहास उगल उठे।

यह बात सत्य है कि विश्व के ऐसे महान् नगर या तो अब ध्वस्त होकर खण्डहर हो गये हैं या अगर शेष भी रह गये हैं, तो वे अपने अतीत का गौरव खो चुके हैं, किन्तु प्रयाग तो अब भी वैसा ही महान् है जैसा पहिले था। इस नगर का महात्म्य सनातन है, यह प्रत्येक युग में, इतिहास के प्रत्येक काल में, अपना गौरव और विशिष्टता ज्यों का त्यों बनाए रहा। यह नगर इतना प्राचीन है जितना कि गगा और जमुना का सगम। इसका महत्व एक साधारण तथ्य से स्पष्ट है, कि चारों ओर से हर प्रकार की सवारियाँ रोक दी जायँ और रहने-सहने की सब सुविधाएं छीन ली जाँय, फिर भी माघ मास के अमावस्या के दिन ४० लाख नर-नारी एक समय में सगम पर स्नान कर ही लेगे।

हाँ तो इस नगर के महात्म्य और गौरवशाली अतीत की सत्यता को सिद्ध करने के लिए इतिहास के साक्ष्य की आवश्यकता है, किन्तु इतिहास हो भी, तब तो सिद्ध हो। भारत का वास्तविक इतिहास तो लुप्त प्राय है। गत दो हजार वर्षों के अन्तर्गत भारतवर्ष के अन्दर राज्य परिवर्तन और धर्म सम्बन्धी बड़े बड़े उलट फेर और क्रान्तियाँ हुई जिनके कारण हमेशा यहाँ के समाज की मनोदशा में परिवर्तन होता रहा। कई क्रान्तियाँ यहाँ पर ऐसी हुई जिनके कारण यहाँ के साहित्य और और यहाँ के सस्कृति का भी बहुत सा भाग

नष्ट हो गया। ऐसी स्थिति मे अगर यहाँ के धुरन्धर विद्वानों और पुरातत्व वेत्ताओं की निरन्तर की खोज से भी यदि यहाँ के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश नहीं पड़ पाता तो इसमें विशेष आश्चर्य की बात नहीं। यही कारण है कि हम ऐतिहासिक खोज के सम्बन्ध में जहाँ थोड़ा सा कदम आगे बढ़ाते हैं, त्योंही या तो हमारे पग अवरुद्ध हो जाते हैं, या हमें ऐसे उलझन-पूर्ण मार्ग ही मे उलझ जाना पड़ता हैं, जहाँ सचाई को ढूँढ निकालना बहुत कठिन होता है। प्राचीन नगरों के सम्बन्ध मे तो ये कठिनाइयाँ और भी भयकर रूप धारण करके आती हैं, क्योंकि इनके सम्बन्ध में समाज मे कई ऐसी दन्तकथाएँ और किम्वदन्तियाँ प्रचलित रहती हैं जिनको न तो कोई इतिहासकार उपेक्षा ही कर सकता है और न उनको तात्विक आधार के रूप में ही स्वीकार कर सकता है। ऐसी स्थिति में किसी निर्णय विशेष पर पहुँचना उसके लिये बहुत कठिन हो जाता है।

प० गौरीशकर हीराचन्द ओझा का भारतीय ऐतिहासिक अनुसन्धान ससार पर विदित है। वह लिखते हैं कि "मुसलमानो के समय में राजपूताने के सिवा हिन्दू राज्य प्राय नष्ट हो गये। अनेक प्राचीन नगर मठ आदि धर्मस्थान नष्ट कर दिये गये, और अनेक प्राचीन पुस्तकालय अग्नि की आहुति बन गए। इस प्रकार अधिकतर जो ग्रन्थ बचने पाये वे मकानो के तहखानो या दुर्गम स्थानों में छिपा कर रखे जाने लगे। जिनके पास पुस्तकें रह गई वे लोग जाति द्वेष, धर्म द्वेष और परस्पर के विरोध के कारण, चाहे वे उनके काम में भी न आवें, अथवा वे उनको समझ न सकें, तो भी उनको गुप्त रखने और दूसरों को उनके लाभ से वचित रखने में अपना गौरव समझने लगे। कई पुस्तकें कुटुम्ब की सम्पत्ति के विभाग करने में इस तरह बाँटी गई कि एक ही पुस्तक के पन्नों के दो या तीन हिस्से होकर वे अलग-अलग भाइयों की सम्पत्ति हो गई। ऐसे भी उदाहरण मिले हैं कि प्रत्येक पुस्तक को बीच मे से काट कर दो भाइयों ने प्रत्येक पन्ने का आधा २ हिस्सा किया। कितने ग्रन्थ, निरक्षर लोगों की सम्पत्ति हो जाने से रद्दी के रूप में बेंचे गये। कई विधवा स्त्रियों ने उन्हें गला कर उनकी कुट्टी से अनाज आदि भरने की हल्की टोकरियाँ बनाई"।

"पुस्तकों के अतिरिक्त भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियों ने अनेक मन्दिर, गुफाएँ, स्तूप, मठ, स्तभ, मूर्तियाँ, तालाब, बावली आदि बनवाये थे, उनमें से जो मुसल

मानों से बचने पाये, उनमें या उन पर जो लेख खुदवाये थे, वे भी इतिहास के अमूल्य धन थे; परन्तु विद्या के ह्रास के साथ प्राचीन लिपियों का पढ़ना लोग भूल गए, जिससे ईसवी सन् के दसवीं शताब्दी के पूर्व के तो बहुधा सब शिलालेख निरुपयोगी हो गये। इतना ही नहीं किन्तु कहीं-कहीं तो करामाती वस्तु समझे जाने लगे और यंत्रों में उनकी गणना होने लगी, और ये बीमारों या प्रसूत पीड़ित स्त्रियों के लिए दवा समझे जाने लगे। प्राचीन शिला लेख कुल्हाड़ियाँ घिसने, भंग व मसाला पीसने, स्नान करने समय पैर रगड़ने के काम में लाये गये और तम्बाकू आदि कूटने की ओखलियाँ बनाने के काम में लाकर नष्ट कर दिये गये अथवा उनके टुकड़े कर मकानों या मन्दिरों की सीढ़ियाँ बनाने में प्रयोग किये गये।"

किन्तु इतना सब होने पर भी भारत में अब भी इतने साधन उपलब्ध हैं कि उनके द्वारा प्राचीन इतिहास का पता लगाया जा रहा है। वे साधन इस प्रकार हैं। प्राचीन लिपियों से, सरकारी प्राचीन शोध विभाग से, संग्रह के अजायबघर, ऐतिहासिक सामग्री विभाग, देशी राज्यों में प्राचीन शोध की जागृति, पुस्तकों द्वारा—अष्टादश पुराण, रामायण, महाभारत, राजतरंगिणी, हर्षचरित, मुद्राराक्षस, नवसहसांक चरित रामचरित, कीर्ति कौमुदी, सुकृत संकीर्तन, हम्मीर मर्दन, हम्मीर महाकाव्य, प्रबन्ध चिन्तामणि आदि।

किन्तु प्रयाग ऐसे नगरों की इतिहास जानने के लिये तो "काका कालेलकर" के मत का अवलम्बन करना होगा। उनका मत ऐसा है कि "आर्य राष्ट्र आज कल की भाँति इतिहास नहीं रखते थे, वे जीवित इतिहास रखते थे। इतिहास का अर्थ है मनुष्य जाति के सम्मुख उपस्थित हुए प्रश्नों का उल्लेखन, इनमें कितने ही प्रश्न निर्णीत हो चुके हैं और कितने ही अभी अनिश्चित हैं। जिन प्रश्नों का निश्चय हो चुका है, वे अब प्रश्न नहीं रहे, उनका निराकरण तो हो चुका और वे सामाजिक जीवन में संस्कार रूप से प्रविष्ट हो गये हैं। जिस प्रकार अन्न पाचन हुआ कि उसका रस बन जाता है। उसी प्रकार वे प्रश्न राष्ट्रीय मान्यता और संस्कारों में परिणत हो गये हैं। खाना हजम हो जाने पर मनुष्य इस बात का विचार नहीं करता कि मैंने कल क्या खाया था। इसी तरह जिन प्रश्नों का उत्तर मिल गया है, उसके विषय में वह उदासीन रहता है। वे लोग परमार्थी थे अतएव वे अनिश्चित प्रश्नों को कागज पर लिख रखना नहीं चाहते थे और

ठीक भी है क्योंकि अनिश्चित प्रश्नों में मतभेद होता है। जितने मतभेद होते हैं उतने ही सम्प्रदाय हम खड़े करते हैं। वेदों के उच्चारण में मतभेद हुआ तो हमने भिन्न-भिन्न शाखाएँ खड़ी कर दीं। ज्योतिष में मतभेद हुआ तो स्मार्त और भागवत एकादशी जुदी जुदी मानी। दर्शन शास्त्र में तत्व भेद मालूम हुआ तो द्वैत और अद्वैतवाद के मार्ग हमने उत्पन्न किये। आहार और उद्योगों में मतभेद हुआ तो हमने भिन्न भिन्न जातियाँ बना लीं। जहाँ सामाजिक रीतियों में मत भेद हुआ हमने उपजातियाँ खड़ी कर दीं। हम लोग त्योहारों द्वारा महान् ऐतिहासिक और राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं के इतिहास को जाग्रति रखते हैं। इसी तरह हर एक सामाजिक हलचल के इतिहास, और उस हलचल के केन्द्र को तीर्थ रूप देकर हम लोगों ने जीवित रखा है। इस तरह इतिहास लिखने की अपेक्षा इतिहास को जीवित रखना अर्थात् जीवन में चरितार्थ कर दिखाना हमारे इतिहास की खूबी है। चीथड़े के बने हुए कागज़ों के ऊपर इतिहास का लिखना अच्छा या जीवन ही में इतिहास का संग्रह रखना अच्छा? इतिहास के इस दृष्टिकोण से प्रयाग एक प्रागैतिहासिक नगर, और धार्मिक विचार वाले व्यक्तियों के दृष्टिकोण से तीर्थराज है।

प्रयाग दर्शन

प्रयाग तीर्थराज है:—जिस प्रकार दिक्पालों के, राजा इन्द्र, रुद्रों के राजा शिव, नक्षत्रों के राजा चन्द्रमा, पर्वतों के राजा मेरु, नदियों के राजा सागर, आदित्यों के राजा विष्णु, ज्योतिषियों के राजा अश्वपति, यक्षों के राजा कुबेर, वायु के देवता मरीचि, वेदों में सामवेद, वसुओं में अग्नि, यज्ञों में जपयज्ञ, स्रोतस्विनियों में गंगा, पुरोहितों में बृहस्पति, देवर्षियों में नारद, सिद्धों में कपिल, वृक्षों में अश्वत्थ, घोड़े में उच्चैश्रवा, हाथियों में ऐरावत, शस्त्रों में वज्र, धेनुओं में कामधेनु, सर्पों में वासुकि, पक्षियों में गरुड़, पशुओं में सिंह, ऋतुओं में वसन्त आदि राजा हैं उसी प्रकार तीर्थों का राजा प्रयाग है। पुराणों में ऐसा उल्लेख है कि एक बार ब्रह्मा को संशय हुआ कि प्रयाग तीर्थराज नहीं है, इस संशय निवारण के लिए उन्होंने शेषनाग से प्रश्न किया। इसके उत्तर में शेषनाग ने कहा कि "तुला तौलने के काम में आती है, उससे शपथ लिया जाता है। तुला से सब सन्देह दूर होते हैं। धर्म निर्णय में सबके लिये तुला प्रमाण कही गई है। इस कारण जो तुला द्वारा नापा गया हो वह सर्वश्रेष्ठ होगा। उसकी सत्यता में किसी को सन्देह नहीं रहेगा। आप प्रत्यक्ष देख लें। न्यून, अधिक या बराबर इनका निर्णय तुला के द्वारा जो हो जाता है वही सत्य है"। ब्रह्मा ने तौलना आरम्भ किया। निर्मल और समतल प्रयाग के क्रोड में दो ऊँचे खम्भे गाड़े गये, ब्रह्मा ने सबसे पहिले सात पुरियों को परस्पर तौला, उनमें न तो कोई घटी न बढ़ी किन्तु बराबर हुई। तब एक ओर सातों पुरियों को रक्खा, दूसरी ओर सातों कुल पर्वतों को, पर वे बराबर न हुए। फिर सातों समुद्र तौले गये वे भी बराबर न हुए। सातों द्वीप और खण्ड भी उनके बराबर न हुए। तब सब तीर्थ, नद-नदियाँ उस पलड़े पर रखी गईं, फिर भी तुला बराबर न हुई। तब शेषनाग ने कहा कि जो आपने तौला है वह, और सप्त पुरियाँ इन सबको एक ओर रखें और दूसरी ओर प्रयाग को रखें। तुला पर प्रयाग क्षेत्र के रखते ही सप्त पुरियों आदि वाला पलड़ा ध्रुवमण्डल की ओर चला गया, फिर भी दो

अंगुल ऊँचा रहा। उस समय ब्रह्मा को तुला के द्वारा निश्चय हुआ कि प्रयाग सब तीर्थों का राजा है।

प्रयाग महात्म्यः—शेषनाग ने देवताओं से फिर कहा कि "इस प्रयाग क्षेत्र के सम्बन्ध में जो सन्देह करता है वह वेदों के विषय में भी सन्देह करता है, और जिसका निश्चय इस तीर्थ के विषय में रहता है उसका सर्वत्र निश्चय समझना चाहिए। इस तीर्थ में गति नहीं होती, जो ऐसा कहता है उसकी गति नहीं होती। जो कहता है कि यहाँ मनोरथ सिद्ध नहीं होती उसकी मनोरथ सिद्ध कहीं नहीं होती। जो कहता है यहाँ मोक्ष नहीं होती उसका मोक्ष कहीं नहीं होता। जो कहता है यहाँ वैराग्य नहीं होता, उसको वैराग्य कहीं नहीं होता, निष्कर्ष जो जिस बात के लिए यहाँ नहीं कहता है वह उसको कहीं नहीं प्राप्त होता। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ देने के लिए प्रयागराज सदैव तैयार रहते है, फिर भी जो कहता है कि यहाँ अमुक वस्तु नहीं है तो समझना चाहिए कि उसके लिए वह वस्तु कहीं भी नहीं है"।

बारह विष्णु पीठ और माधवों का स्थानः—प्रयाग विष्णु भगवान का मुख्य क्षेत्र है जो वैकुण्ठ से भी अधिक उत्तम है। यहाँ अक्षय वट पर उनका आश्रम है। वट वृक्ष के मूल में अक्षय माधव रहते हैं जिसे वट माधव या मूल माधव भी कहते हैं। इस प्रकार विष्णु तीन नाम धारण करके यहाँ रहते हैं। प्रयाग में ब्रह्मा आदि देवता भी रहते हैं। सब विघ्नों के नाश करने के लिये, भक्तों के कार्य सिद्धि के लिये माधव आठो दिशा में आठ नाम से रहते हैं। शंख माधव, चक्र माधव, गदा माधव, पद्म माधव, अनन्त माधव, बिन्दु माधव, मनोहर माधव और असि माधव ये आठ माधव हैं, भक्तों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष देने के लिये रहते हैं और सब रूपों को एकत्रित करके ब्रह्माण्ड को पेट में रखकर बालरूप धारण करके अक्षयवट पर पदांगुष्ट मुँह में लिए हुए खेलते रहते हैं। सब माधवों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है। वट के दाहिने भाग में उत्तम वैष्णव पीठ है। वहाँ मूल माधव रहते हैं। वट के उत्तर अक्षय माधव, और वट के नीचे वट माधव का निवास है। इस वट और पीठ का नाश प्रलय में भी नहीं होता। शाक्त, सौर, गाणपत्य, शैव आदि अन्य समस्त पीठ इस पीठ में निवास करते हैं। क्षेत्र के पूर्व भाग में इन्द्र के बगीचे के पास शंख माधव (छतनगा में) है। यह जीवों के माया का नाश करते हैं।

आठों सिद्धियाँ इनके पास रहती हैं। क्षेत्र के अग्निकोण में अग्नि के आश्रम के समीप चक्र माधव (अरैल) का स्थान है। यह चक्र द्वारा सब आपत्तियों से उद्धार करते हैं। चौदह महाविद्याएँ इनके समीप रहती हैं। यह विष्णु का दूसरा पीठ है। क्षेत्र के दक्षिण भाग में गदा माधव (अरैल) नामक हरि का तीसरा पीठ है। चित्त को व्याकुल करने वाले दुष्टों का नाश करते हैं। चौसठ कलाएँ इनके समीप रहती हैं। क्षेत्र के नैऋत्यकोण में पद्म माधव (बीकर देवरिया) हैं। यह विष्णु का चौथा पीठ है। योगियों को सिद्धि देने वाले हैं। इनके समीप लक्ष्मी रहती हैं। क्षेत्र के पश्चिम (देवगिरवा में) अनन्त माधव रहते हैं। सूर्यादि देवता इनके समीप रहते हैं। वरुण आश्रम के समीप यह पांचवाँ विष्णु का पीठ है। क्षेत्र के वायव्यकोण में विष्णु का छठवाँ पीठ है जहाँ वायुमण्डल के समीप विन्दु माधव (द्रौपदीघाट) रहते हैं। यहाँ पर भक्त अनेकों जन्मों में कृतकृत्य होते हैं। इनके समीप सप्तऋषि रहते हैं। क्षेत्र के उत्तर भाग में कुबेर के आश्रम के समीप सातवें वैष्णव पीठ में मनोहर माधव (सूरजकुण्ड जानसेनगंज) है। कुबेर इनके समीप रहते हैं। गन्धर्व, उर्वशी आदि देवांगनाएँ यहाँ रहती हैं। भक्त लोग यहाँ से भाग्य, पुत्र, पौत्र धन धान्य से युक्त होकर इस लोक में अनेक प्रकार के भोगों को भोग कर वैकुण्ठ में जाते हैं। क्षेत्र के ईशान भाग में शिव के आश्रम के समीप विष्णु का आठवाँ पीठ है। यहाँ असि माधव (नाग बासुकी के पास) का स्थान है। तीर्थ के उपद्रव करने वाले देवता, दानव, गन्धर्व, दैत्य, राक्षस, नाग आदि को जो अनेक प्रकार के विघ्न करते हैं उनको असि माधव शमन करते हैं। नाग और नाग कन्याएँ इनके समीप रहती हैं इसके अतिरिक्त नवें सकटहर माधव हैं जो वट वृक्ष के नीचे रहते हैं। यह भक्तों के संकट हरण करते हैं। गङ्गा जमुना के तीर मनोहर वेणी क्षेत्र में मध्य वेणी के तट पर वेणी माधव विराजते हैं। बीस धनुष के विस्तार में उनका आश्रम है। यहाँ ये त्रिवेणी लक्ष्मी के साथ निवास करते हैं। वेणी तीन वर्ण की, तीन गुण वाली, तीन आँखों वाली और त्रिविध पापों को नष्ट करने वाली हैं। यह तीन मार्गों से चलने वाली, त्रिवेणी माधव के आगे विराजती हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, अप्सराएँ, ऋद्धि, सिद्धि, चारण, चौसठ कलाएँ, विद्याएँ और सिद्धियाँ सब पीठों के अधिपति अपनी अपनी सामग्रियों को लेकर जाते हैं और प्रतिदिन वेणी माधव का पूजन करते हैं।

प्रयाग के पंचक्रोशी परिक्रमा की सीमा इस प्रकार है

दुर्वासा पूर्व भागे निवसति, बदरी खण्डनाथ प्रतीच्या
पर्णाशा याम्य भागे धनद दिशि तथा मण्डलश्च मुनीश
पचक्रोशे त्रिरण्या परित इहसदा, सन्ति सीमान्त भागे
मुक्षेत्र योजनाना शरमित मभितो मुक्ति पद्तत।

अर्थात् पूर्व भाग मे पाँच कोस पर दुर्वासा मुनि (ककरा कोटवा) रहत है। पश्चिम पाँच कोस पर बरखंडी शिव निवास करते हैं। दक्षिण पाँच कोस पर्णास मुनि (पनासा के पास) रहते हैं। और बट वृक्ष से पाँच कोस उत्तर मण्डलेश्वरनाथ (पड़िला महादेव) निवास करते हैं। यही पचक्रोशी की सीमा है।

पंचक्रोशी परिक्रमा पथचक्र—यह प्रयाग मण्डल पाँच योजन (२०कोस) म फैला हुआ है। गङ्गा, यमुना और मिश्रित धारा के ६ तट होने के कारण, इन तीन नदियों की त्रिकोण परिक्रमा होगी। त्रिवेणी में स्नान करके अक्षयवट का तथा उनके पास में बास करने वाले देवता ऋषियो की पूजा करके, यमुना नदी के किनारे किनारे ऋणकुल्या, मधुकुल्या, निरजन तीर्थ, आदित्यतीर्थ, ऋण मोचन तीर्थ, पाप मोचन तीर्थ, रामतीर्थ, सरस्वती कुण्ड, गौघट्टन तीर्थ, कामेश्वर तीर्थ (मनकामेश्वरनाथ) के दर्शन करते हुए बलुआघाट स्थित तक्षकेश्वर शिव मन्दिर पहुँच कर, वहाँ से आगे तक्षक कुण्ड, कालियाह्रदय, चक्रतीर्थ, होते हुए सिन्धु सागर तीर्थ पर पहुँचना चाहिए। मीरापुर स्थित ललितादेवी का दर्शन करते अटाले के पूरब पाण्डव कूप का दर्शन करते अतरसुइया की सीधी सड़क से गढ़ही सराय मुहल्ले में बरुणकूप क दर्शन करते हुए, उधर से सूर्यकुण्ड पर पहुँच कर आगे भारद्वाजाश्रम पर ठहरना चाहिये। उसके आगे नाग बासुकी का दर्शन करते हुए भोगवती तीर्थ होते हुए दारागज में श्री वेणीमाधव जी के दर्शन करने चाहिये। वहाँ से आगे दशाश्वमेधेश्वर शिव का दर्शन करते हुए गगा जी के किनारे लक्ष्मी तीर्थ उर्वशी तीर्थ, दत्त, सोम, दुर्वासा आदि तीर्थों का दर्शन परसन करते बट मूल में पहुँच कर त्रिवेणी स्नान करके अन्तर्वेदी की यात्रा समाप्त करनी चाहिये।

इसके बाद त्रिवेणी स्नान करके उस पार अरइल में सुधारस तीर्थ, शूल

टकेश्वर और उर्वशी आदि तीर्थों में दर्शन मार्जन करते हुए वेणीमाधव जी के मन्दिर में आना चाहिए। वहाँ से हनुमान तीर्थ, सीता कुण्ड, रामतीर्थ, वरुण तीर्थ, चक्र माधव, वीर तीर्थ आदि का दर्शन करते हुए सोमेश्वरनाथ जी के मन्दिर में पहुँचना चाहिए। फिर गंगा के किनारे-किनारे सोम तीर्थ, सूर्य तीर्थ कुबेर तीर्थ, वायु तीर्थ, आदि होते हुए नागेश्वर के सामने लवादन गाँव में पहुँचना चाहिए। वहाँ से सीधे छिवकी स्टेशन के पास कम्बलाश्वतर नागों की गैनी झील के तट पर राम सागर तालाब पर रात्रिवास करना चाहिए।

इसके बाद बीकर में यमुना जी के बीच में शिव जी का दर्शन करके यमुना जी को पार करके जलालपुर पहुँचना चाहिए। वहाँ से यमुना के किनारे ऊपर-ऊपर तारापुर गुहटी, पुरवा होते हुए करहदा गाँव के आस-पास बनखण्डी महादेव के स्थान का दर्शन करना चाहिए।

इसके बाद वेगम सराय के पास होते हुए देवगिरि से गंगा जी के किनारे पर पहुँच कर द्रौपदी घाट और वहाँ से शिवकोटी और फिर गंगा पार करके पड़िला महादेव के समीप जहाँ आजकल मनमहता का मेला लगता है, वहीं मानस तीर्थ है। वहाँ से सनौटी, बदरा होते हुए सीधे नागेश्वर शिव के समीप छतनगा में विश्राम करते हुए गंगा के किनारे किनारे मुशी के बगीचा में शंख माधव का दर्शन करके व्यासाश्रम (अकेला पाठशाला) समुद्रकूप, ऐलेश्वर (पुरानी भूसी) ऐलतर्थ, संकटहर माधव, सन्ध्यावट, हँसकूप, हँसतीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, उर्वशी तीर्थ, अरुन्धती तीर्थ और यज्ञ तीर्थ होते हुए दशाश्वमेध घाट के सामने गंगा पार करके दारागंज आ जाना चाहिये। वहाँ से फिर अक्षयवट का दर्शन करके त्रिवेणी जी की यात्रा समाप्त करनी चाहिये।

उपर्युक्त मार्ग से परिक्रमा करने से पूरे प्रयाग मण्डल और तीन अग्नि-स्वरूप प्रयाग, प्रतिष्ठानपुर (झूसी) अलर्कपुर (अरैल) की प्रदक्षिणा हो जाती है। छः तटों के कोई भी प्रधान तीर्थ नहीं छूटते। त्रिवेणी, माधव, सोम आदि प्रयाग के अष्टनायक तथा १२ माधव इनके अन्तर्गत आ जाते हैं।

पातालपुरी का मन्दिर—इन सब तीर्थों के अतिरिक्त वर्त्तमान किले के अन्दर एक मन्दिर है जिसमें इस समय बीसों की संख्या में विशाल और भव्य मूर्तियाँ हैं। इसके विषय में दो प्रकार का वर्णन मिलता है (१) प्राचीन—जब

कि इस स्थान पर किला नहीं बना था उस समय का वर्णन चीनी यात्री 'ह्वेनसांग' द्वारा जो हर्षवर्द्धन के समय में भारत आया था, इस प्रकार है।

"नगर में एक देव मन्दिर (किले के भीतर वर्तमान पातालपुरी के मन्दिर के स्थान पर) है, जो अपनी सजावट और विलक्षण चमत्कारों के लिये विख्यात है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि जो कोई यहाँ एक पैसा चढावे, उसने मानो और स्थानों (तीर्थों) में एक हजार स्वर्ण मुद्रा चढाई। और यदि यहाँ आत्मघात द्वारा अपने प्राण विसर्जन कर दें तो वह सदैव के लिये स्वर्ग चला जाता है। मन्दिर के आँगन में एक विशाल वृक्ष (अक्षयवट) है जिसकी शाखाएँ और पत्तियाँ बहुत दूर तक फैली हुई हैं। इसकी सघन छाया में दाहिने और बाएँ अस्थियों के ढेर लगे हुए हैं। ये उन यात्रियों की हड्डियाँ हैं, जिन्होंने स्वर्ग की लालसा से इस वृक्ष से गिर कर अपने प्राण दिये हैं। यहाँ एक ब्राह्मण वृक्ष पर चढ कर स्वयं आत्मघात करने को उद्यत होता है। वह बड़े ओजस्वी शब्दों में लोगों को प्राण देने को उत्तेजित करता है। परन्तु जब वह गिरता है तो उसके (साधक सिद्धक) मित्र नीचे उसको बचा लेते हैं। वह कहता है देखो, देवता मुझे स्वर्ग से बुला रहे थे। परन्तु ये लोग बाधक हो गये इत्यादि। संगम में जो इस स्थान के पूर्व है, सैकड़ों मनुष्य आ-आकर स्नान करते और उनमें से कितने वहाँ प्राण देते हैं। उनका विश्वास है कि यहाँ स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं और आत्मघात करने से वह सीधे स्वर्ग में जन्म लेंगे। जिनको ऐसा करना होता है वह सात दिन तक भोजन नहीं करते, केवल एक चावल का व्रत रखते हैं और अन्त में दोनों धाराओं के बीच में कूद कर प्राणों का विसर्जन कर देते हैं। कोई कोई बन्दर भी मनुष्यों की देखादेखी ऐसा करते हैं। कुछ लोग इस प्रकार की तपस्या करने का अभ्यास करते हैं कि नदी के बीच में एक स्तम्भ-सा खड़ा कर लेते हैं। जब सूर्य्य अस्त होने लगता है तो वह एक पाँव और एक हाथ के सहारे उस पर चढते हैं और अपनी दृष्टि सूर्य्य पर जमाये रहते हैं। जब बिलकुल अन्धेरा हो जाता है तो वह नीचे उतर आते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से वह आवागमन से मुक्त हो जाते हैं"।

(२) अब उसकी वर्त्तमान व्यवस्था इस प्रकार है। यह मन्दिर किले के आँगन में पूरब वाले फाटक की तरफ पृथ्वी के नीचे तहखाने में है। इसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम लगभग ६० फुट और चौड़ाई उत्तर दक्षिण लगभग ५० फुट।

है। ऊपर पत्थर की छत ७ फुट ऊँचे खम्भों पर ठहरी थमती हुई है। मध्य पंक्ति में दोहरे खम्भे और बाकी पंक्तियों में बारह बारह खम्भे हैं। कुल खम्भों की संख्या १०० के लगभग है। पश्चिम की तरफ मुख्य द्वार है जिसमें कुछ सीढ़ियों से नीचे उतरना पड़ता है। फिर कुछ दूर तक सीधा रास्ता पूर्व की ओर चला गया है। उसके आगे मन्दिर का मुख्य भाग मिलता है। इस रास्ते में धर्मराज आदि की विशाल मूर्तियाँ दाहिने हाथ बैठी हुई हैं। जहाँ तक बनावट का सम्बन्ध है, ये प्राचीन नहीं मालूम पड़तीं, फिर भी निश्चय नहीं किया जा सकता कि ये सब कब बनी थीं। इसी के अन्दर अन्य बहुत सी बड़ी विशाल मूर्तियाँ, श्री धर्मराज, अन्नपूर्णा, विष्णु, लक्ष्मी, गणेश, दुर्वासा ऋषि, बालमुकुन्द, प्रयागराज, कुबेर, श्यामकार्तिक, कालभैरव, नरसिंहदेव, गौरीशंकरजी, सरस्वती, वरुणदेव, सूर्य्यनारायण, सत्यनारायण, जमुनाजी, ललितादेवी, हनुमानजी, पवनदेव, वेदव्यास, वृधनाथ, शूलटंकेश्वर, गंगाजी, गुरुदत्तात्रेयी सिद्धनाथ, यमदण्डजी, मार्कण्डेय जी, अग्निदेव, वेनीमाधव, अनसुइया, गोरखनाथ, पार्वती जाम्वंत, शेषनाग, राजाइन्द्र, रामचन्द्र और यमराजजी आदि की हैं। इन विशाल मूर्तियों के बीच-बीच में कहीं कहीं शिवलिंग स्थापित हैं। सब मिलाकर कुल ४१ मूर्तियाँ हैं। उत्तर वाली दीवार में एक बड़ा ताक (आला) सा बना हुआ है उसी में पुरानी लकड़ी का एक मोटा गोल टुकड़ा रक्खा हुआ है, जो कपड़े-लत्ते से सुसज्जित रहा करता है। यही अक्षयवट बतलाया जाता है। किन्तु आजकल कुछ लोग सबल आन्दोलन कर रहे हैं और सिद्ध करने का सफल प्रयास कर रहे हैं कि यह कुन्दा अक्षयवट नहीं है बल्कि किले के उत्तर-पूर्व के कोने में वहीं पर असली अक्षयवट है, किन्तु अभी तक प्रत्यक्ष नहीं किया जा सका है। कुछ भी हो पहिले इस तहखाने में बड़ा अन्धकार रहता था। पुजारी लोग दीपक जला कर यात्रियों को दर्शन कराते थे। परन्तु अब ४५ साल से रोशनी और हवा के लिए मन्दिर के छत में कई झरोखे बना दिये गये हैं और दर्शकों के बाहर निकलने के लिए दक्षिण की ओर एक नया द्वार बना दिया गया है। मन्दिर की पश्चिम वाली दीवार में बेतिया के राजा राय गोपाल का सन् १८३२ का एक अभिलेख लगा हुआ है।

कहा जाता है कि किला के बन जाने से अक्षयवट और उसके समीप के प्राचीन देवालय पृथ्वी धरातल से नीचे पड़ गये थे, जिनकी मूर्तियों को अकबर

ने इस तहखाने में सुरक्षित रखवा दिया था, फिर पीछे जहाँगीर ने किसी समय इसके द्वार को बन्द करा दिया। इसके पश्चात् इसका फिर कैसे पता लगा और इसका द्वार कब और कैसे खुला, इसके सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

मुस्लिम राज्य के उत्कर्ष काल अथवा मुगल काल में यहाँ दो प्रसिद्ध इमारतें बनीं जो अब तक बनी हुई हैं। एक तो सगम पर किला दूसरे खुसरो बाग जिसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

गङ्गा जमुना के सगम पर स्थिति वर्त्तमान किला शाहशाह अकबर का बनवाया हुआ है जिसकी नींव १५८३ ई० म रक्खी गई थी। अबुल फजल द्वारा लिखित 'अकबरनामा' से प्रगट होता है कि यह किला ठीक सगम पर चार खण्डा म बनाया गया था। पहिला खण्ड स्वयं बादशाह के रहने के लिये जिसमें बारह आनन्द वाटिकाएँ थीं, दूसरा बेगमों और शाहजादा, तीसरा बादशाह के अन्य कुटुम्बियो और चौथा सिपाहियो और नौकरो चाकरो के रहने क लिए था। इलाहाबाद कलेक्टरी के सन् १८६० ई० क एक पुरानी मिसिल से प्रकट होता है कि इस किले की लम्बाई ३८ जरीब (६० गज का एक जरीब) और चौड़ाई २६ जरीब है और क्षेत्रफल ९८३ बीघा और घेरा १२८ जरीब है। इसके निर्माण म ६ करोड़ १७ लाख २० हजार दो सो चौदह रुपये खर्च हुये थ। इसमें तेइस महल, तीन ख्वाबगाह (शयनागार) और झरोखे, २५ दरवाजे, २३ बुर्ज, २७७ भवन, १७६ कोठरियाँ, २ खासोआम, ७७ तहखाने, ७ दालान, २० तबेले, १ बावली, ५ कुएँ और एक जमुना की नहर थी, जिसका निर्माण शाहजादा सलीम शेख, राजा टोडरमल, मारयदीवान, प्रयागदास, मुशरिफ, सईद खाँ और मुसलिम खाँ के प्रबन्ध म हुआ था। महलो क नाम इस प्रकार हैं। एमनापाद, आनन्द महल, दीन महल, महासिगार महल, अलोल महल, कलोल महल, दिलशादमहल, मशारतमहल, उदाबहिश्त महल, हँस महल, उम्मेद महल और सुखनाम महल। तीन ख्वाबगाहो का ब्योरा यह है—(१) खवाब गाह झरोखा, (२) चिहल सितून, (३) निशस्तगाह (बैठक) खासोआम। २५ दरवाजों का ब्योरा—हस्तिनापुर दरवाजा, गावघाट अन्दर बाहर, बगल दरवाजा, गुसुलखाना १, अजमेरी दरवाजा १, फसील दरवाजा १, महल दर

घाट २, बारनी दरवाजा १, मानिक चौक के दरवाजे ४, तम्न दरवाजा १, दिल्ली दरवाजा १, निगम दरवाजा १, बदरी दरवाजा २।

२१ बुर्जों का ब्योरा—शाहबुर्ज से हस्तिनापुर दरवाजे तक आबादी की ओर उत्तर तरफ ७, बारली से शाहबुर्ज तक ५, गारघाट से अजमेरी दरवाजे तक २, हस्तिनापुर की दीवार से गारघाट तक २, अजमेरी दरवाजे की दीवार से गारघाट की दीवार तक ३, हस्तिनापुर के दरवाजे के सामने दीवार के दोनों ओर ४। २७७ मकानों को लिखा है कि अजमेरी दरवाजे के सामने से बारली तक थे। खासो आम के बाग में २ इमारतें थीं। एक बड़ी और एक छोटी। १७६ कोठरियाँ खासोआम के दरवाजों की ओर, जमुना की नहर जिसका सबूत (४० खम्भा) के समीप थी।

यह किला आगरे और दिल्ली के किले की तरह लाल पत्थर का बना था। इसका विशाल सिंह द्वार और अन्दर की इमारतें देखने लायक थीं। इसके किनारे की दीवारें और बुर्ज बहुत ऊँचे थे।

किन्तु जब यह किला अंग्रेजों के कब्जे में आया तो इस महल के जो 'जनाना महल' के नाम से प्रसिद्ध था, बीच-बीच में दीवारें बनवा कर शस्त्रागार बनाया गया और उसके ऊपर और नीचे की दीवारों पर चूने का प्लास्टर करके उसके रूप को छिपा दिया गया। अठारहवीं शताब्दी में जब यह किला ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार में आया तो इसको दूसरे जंगी किलों की तरह मजबूत और सुरक्षित बनाने के लिए इसमें बहुत कुछ रद्दो-बदल किया गया। ऊँचे-ऊँची दीवारें, बुर्ज और फाटक गिरा कर नीचे कर दिये गये। भीतर की इमारतों में भी बहुत कुछ परिवर्तन किये गये और इस तरह कई नई बारिकें बनीं। इस रद्दोबदल के कारण किले का बाहरी सजधज जरूर नष्ट हो गया किन्तु यह पहिले से अधिक मजबूत हो गया। इसकी यह मरम्मत सन् १८३८ ई० में समाप्त हुई थी। अब इसमें सेना विभाग का शस्त्रागार तथा गुदाम है, और बेतार के तार का स्टेशन भी था जो अब स्वतंत्र भारत सरकार ने हटवा दिया है।

के गौरवशाली अतीत को उससे कौन छीन सकता है ? कविवर बिस्मिल के शब्दों में :—

'बढ़ा रहे हैं बहुत लखनऊ की शान मगर
'वे' गोमती को तो गंगा बना नहीं सकते' ।

वर्तमान इलाहाबाद नगर का श्रीगणेश वर्तमान कर्नेलगंज के आस-पास हुआ होगा । यहाँ भरद्वाज ऋषि का आश्रम था । देखने से ज्ञात होता है कि आजकल के भरद्वाज आश्रम के सामने पूरब दिशा की ओर दारागंज और किले तक की भूमि एक दम नीची होती गई है । इसके सामने खेता की मिट्टी अधिकांश बलुही है । यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि किसी समय भरद्वाज आश्रम से झूँसी तक बराबर गंगा का क्षेत्र था । आश्रम से दक्षिण की ओर भूमि लगभग इसी के बराबर ऊँची होती गई है । फिर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाएँ इस ऊँची भूमि का किनारा पश्चिम की ओर बढ़ता गया है । यहाँ तक कि वर्तमान चौक से पूर्व, थोड़ी ही दूर से नीची भूमि मिलने लगती है । उधर ग्रैन्ड ट्रंक रोड से दक्षिण ऊँचा मण्डी से आगे सभी मुहल्ले नीचे हैं । ऐसा समझा जा सकता है कि यहाँ किसी समय जमुना का क्षेत्र रहा होगा और गंगा जमुना का प्राचीन संगम अतरसुइया के आस पास रहा होगा, जहाँ सम्भवतः अत्रि और अनुसुइया का आश्रम था ।

शनैः शनैः इन स्थानों के पूर्व दारागंज और किले तक रेत पड़ गया, और गंगा भी झूँसी के नीचे चली गई । उधर जमुना के स्थान में भी स्वाभाविक परिवर्तन हुआ और वह दक्षिण की ओर खसक गई । जहाँ इस समय गंगा का बाँध है वहाँ की भूमि कुछ ऊँची रही होगी इसलिए उसके उत्तरी कोने पर नागवासु की ओर दक्षिण जहाँ किला है अक्षयवट आदि स्थापित हुए और इस तरह उसी के आस पास प्रयाग की कुछ बस्ती हो गई ।

सातवीं शताब्दी में ह्वेनसाँग चीनी यात्री भारत आया था । उसने प्रयाग के विषय में लिखा है कि अक्षयवट और उसके निकट का मन्दिर शहर के भीतर था । इसके बाद सोलहवीं शताब्दी में शाहंशाह अकबर ने जब नया शहर, ऊँची भूमि पर कुछ पश्चिम हट कर बसाया तो तात्कालिक बस्ती के अधिकांश निवासी उठ कर वहाँ जा बसे । किला के पश्चिम और जमुना के

पुल तक अकबरी इलाहाबाद बसा हुआ था, तारीखिक वस्तुओं के चिह्न, खण्डहर, बावली, कुएँ और पक्के घाटों के रूप में आज भी पाये जाते हैं।

अकबर के मंत्री अबुलफज़ल ने 'आईने अकबरी' में लिखा है कि यह स्थान प्राचीन काल में पयाग (प्रयाग) कहलाता था। बादशाह ने इसका नाम इलाहाबाद रक्खा और यहाँ पत्थर का एक किला बनवाया जिसमें अनेक सुन्दर महल बने हुए हैं। वही फिर "अकबर नामा" में लिखता है कि अपने राज्य के प्रत्येक विषय का ज्ञान रखने वाले सम्राट अकबर के हृदय में बहुत दिनों से यह विचार था कि कस्बा पयाग में जहाँ गंगा और जमुना एक दूसरे से मिल कर एकता का दम भरती हैं और भारत के श्रेष्ठ लोग जिसको बहुत ही पवित्र समझते हैं, एक दुर्ग बनाया जाय और कुछ दिनों वहाँ सिंहासनासीन रहें, जिससे आस-पास के सिर उठाने वाले उद्दंड लोग आधीनता स्वीकार करें। इस तरह सन १५८३ ई० में १८वीं नवम्बर दिन सोमवार को प्रयाग के किले की नींव पड़ी थी।

आजकल के इलाहाबाद का अधिकांश भाग अकबर के समय में बसा था, जिसे अकबरी इलाहाबाद कह सकते हैं। किन्तु वर्तमान अतरसुइया बड़ा प्राचीन मुहल्ला प्रतीत होता है, जो कि गंगा जमुना के प्राचीन संगम पर बसा हुआ था और जिसका नाम अत्रि ऋषि और उनकी पत्नी सती अनुसुइया के नाम पर रक्खा गया है। इस मुहल्ले में एक जोगी के यहाँ अब भी एक पत्थर की शिला है जिस पर एक चरण चिह्न बना हुआ है जो अत्रि ऋषि का बतलाया जाता है।

कहते हैं कि मुसलमानी उत्कर्ष काल में इलाहाबाद में बारह दायरे (फकीरों के आश्रम) और १८ सरायें थीं जिनमें बहादुरगंज में दायरा शाह मुहीब उल्लाह, दायरा शाह अजमल और दायरा शाह हुज्जतउल्लाह अब भी मौजूद हैं। और सरायों में सराय खुल्दाबाद, सराय मीर खाँ, गढ़ी की सराय, सराय बेगम, सराय मुलेम, सराय आलमचन्द के चिन्ह अब भी पाये जाते हैं। यद्यपि इन स्थानों पर अब मुहल्ले बस गये हैं। इन सरायों और दायरों की वजह से इलाहाबाद को फकीराबाद कहते थे। वर्तमान कचहरी के पूर्व जहाँ अब चायल की तहसीली है इस मुहल्ले को अब भी फकीराबाद कहते हैं।

- मुसलमानी राजत्वकाल के कई मुहल्ले—खुल्दाबाद, शहराराबाग, शाहगंज,

गुवेदारगंज, सिपाहगंज अब भी मौजूद हैं। खुल्दाबाद जहाँगीर का बसाया हुआ है, शहराराबाग में जहाँगीर का बनवाया हुआ बाग था, परन्तु अब उसका कोई चिह्न नहीं है। वह बाग अब घनी बस्ती के रूप में परिवर्तित हो गया है। दारागंज दाराशिकोह के नाम पर बसाया गया है।

औरंगजेब के शासन काल में वर्तमान कटरा मुहल्ला जयपुर राज्य के महाराज जयसिंह सवाई ने बसाया था। यह जगह और इसके आस-पास के स्थान उनको माफी में मिले थे। कटरे की बस्ती में अब तक ३५ एकड़ जमीन जयपुर राज्य के अधीन है। और उसके निकट के दो गाँव राजापुर और फतेहपुर बिछुआ की मालगुजारी उनको मिलती है। मुहल्ला चक मुसलमानी राज्य के अन्त में बसा है। कोई शाह अब्दुल जलील थे जो अरब से आए थे, उन्हीं को इस स्थान को भूमि माफी में मिली थी। उनकी कब्र अब तक इसी मुहल्ले में कायम है। वर्तमान रोशनबाग मुहल्ला को जो करैलाबाग वाली सड़क के पूरब नई बस्ती में है, नवाब सरबुलन्द खाँ के नायब रोशन खाँ ने बसाया था, जहाँ अब इस नाम से मुहल्ला बस गया है। उनकी कब्र अब भी पत्थर की सुन्दर दालान में मौजूद है।

वर्तमान मुहल्ला तालाब नवलराय, एक हिन्दू राजा नवलराय द्वारा जो श्रीवास्तव कायस्थ थे, बनवाया गया था। ये परगना इटावा के मौरूसी कानूनगो थे। बाद में अवध के नवाब सफदरजंग ने इनके गुणों पर मोहित होकर इनको पहले दीवान और फिर बाद में प्रयाग का आमिल नियुक्त किया। उन्होंने ही इलाहाबाद में तालाब नवलराय बनवाया और फैजाबाद में नवलगंज बसाया। इनके अतिरिक्त इस काल के बहुत से मुहल्ले हैं जैसे दरियाबाद, समदाबाद, सादियाबाद, सदियापुर, मीरापुर आदि।

हिन्दू युग में यह नगर प्रयाग कहलाता था, मुस्लिम युग से इसका नाम इलाहाबाद हो गया। अब अंग्रेजी युग में इसका नाम एलाहाबाद हो गया। अंग्रेजी युग में भी नगर में काफी परिवर्तन हुआ। मुट्ठीगंज और कीटगंज अंग्रेजी राज्य के आरम्भ में बसे थे। मि० आर० अहमुटी प्रयाग के पहले कलक्टर थे, जनरल कीड जिले के कमान्डेंट थे। इन्हीं के नाम पर इन मुहल्लों की बस्तियाँ बसी थीं। वर्तमान चौक का पुराना रूप ऐसा था कि चारों तरफ कच्चे मकान थे। कोई कोई घर पक्के और कुछ बिना प्लास्टर के

पक्की ईंट के थे। बीचों-बीच एक गड़ही थी, जिसमें इधर-उधर का गन्दा पानी बहकर एकत्रित होता था। इसे लोग लाल डिग्गी कहते थे। उसके किनारे कुछ बिसाती, तरकारी वाले, अथवा और दूसरे प्रकार के दुकानदार चबूतरों पर बैठते थे।

जहां अब कम्पनी बाग (अल्फ्रेड पार्क) है उसके दक्खिनी भाग में समदाबाद के नाम से मेवातियों का एक गांव था। सन १८५७ ई० के बलवे में उन लोगों ने अंग्रेजों के विरुद्ध खूब काम किया था, इसलिए उनका गांव उजाड़ दिया गया। वर्त्तमान गवर्नमेंट हाउस के पास भी छीतपुर के नाम से एक गांव था, वह भी कुछ गवर्नमेंट हाउस में और कुछ कम्पनी बाग में मिला दिया गया।

लोगों का कहना है कि सर विलियम म्योर प्रयाग से वैसा ही प्रेम रखते थे जैसा सर हारकोर्ट बटलर लखनऊ से मुहब्बत करते थे। उनके समय में प्रयाग की बड़ी उन्नति हुई। पुराना हाईकोर्ट, गवर्नमेंट प्रेस, रोमन कैथोलिक गिरजाघर, पत्थर का बड़ा गिरजाघर आदि प्रसिद्ध इमारतें उन्हीं के समय में यहां बनीं। किन्तु उनका सबसे महत्त्वपूर्ण स्मारक म्योर सेन्ट्रल कालेज है जो अब प्रयाग विश्वविद्यालय के आधीन है।

जहां अब जान्स्टनगंज की चौड़ी सड़क है, वहां पहिले घनी बस्ती थी। चौक से कटरे आने का पुराना रास्ता ठठेरी बजार से शाहगंज होकर था। जो इस समय लीडर रोड में मिल गया है। विलियम जान्स्टन प्रयाग के एक पुराने कलेक्टर थे, उन्होंने सन १८६४ ई० में चौक से उत्तर के स्थित मकानों को खोदवा कर कटरा तक चौड़ी सड़क (कमला नेहरू रोड) बनवाई थी। इसलिए इस सड़क के किनारे का मुहल्ला उन्हीं के नाम से जान्स्टनगंज कहलाता है।

वर्त्तमान सब्जी मंडी, चौक की पुरानी गड़ही पटवा कर सन् १८७३ ई० में कीटगंज के एक बंगाली, बाबू रमेश्वर राय चौधरी ने बनवाई थी। उक्त बाबू साहेब कमसरियट के एक प्रसिद्ध गुमाश्ता थे। उन्होंने यह बाजार बनवाकर म्युनिसिपल्टी को दे दिया था।

सन् १९०६ ई० में वर्त्तमान लूकरगंज बसाया गया। पहिले इसका नाम लाटूशगंज रखा जाने वाला था। किन्तु सर जेम्स डिग्सलाटूश एक साधु स्वभाव के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर थे। उन्होंने गवर्नमेंट प्रेस के तात्कालिक सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० एफ० लूकर के नाम इसका नाम रख दिया।

पानियर अखबार के संस्थापक सर जार्ज एलन के नाम से एलनगंज और म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन मि० ममफोर्ड के नाम से ममफोर्डगंज बसा। सन् १६०६ ई० में हिन्दोस्तानियों के लिए नया सिविल स्टेशन सोहबतिया बाग में बसा और उसका नाम जार्जटाउन रखा गया। सन् १६११ में घनी बस्ती को तोड़ कर हीवेट रोड निकाली गई, और फिर पाँच वर्ष बाद दो सड़कें दक्षिण की ओर क्रास्थवेट रोड और गिरधरगोपाललाल रोड के नाम से निकाली गई। ये दोनों महाशय म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन थे।

सन् १६२३ में सराय मीर खाँ की सड़क चौड़ी होकर उसके कोने पर चौक में इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की ओर से तीन खण्ड की ऊंची ऊंची दूकानें बनाई गई। सन् १६२७ में नया कटरा आबाद हुआ। सन् १६२६ में जीरो रोड निकाली गई। सन् १६३१ में चौक में अलायन्ड के फाटक में एक छोटा सा पार्क बनाया गया जिसका नाम मुहम्मद अली पार्क रखा गया।

सिविल लाइन्स—यह पहिले अंग्रेजों की बस्ती थी, जो लगभग डेढ़ मील लम्बी और डेढ़ मील चौड़ी है। इलाहाबाद का यह भाग बहुत ही सुन्दर है। पहिले अंग्रेजों की आबादी क़िले के पश्चिम जमुना के किनारे थी, कुछ समय के बाद कर्नलगंज के पूर्व और उत्तर सिविल स्टेशन बना। सन् १८५७ के बलवे के बाद, विद्रोहियों के कई गाँव सरकार ने जब्त कर लिये। यह वर्तमान सिविल लाइन्स तत्कालीन कमिश्नर मि० थार्नहिल के उद्योग से बसाया गया, जिसका नाम तात्कालिक वायसराय के नाम पर कैनिंग टाउन रखा गया। जिसको संक्षिप्त करके लोग कैनिंगटन कहते हैं।

कैन्टूनमेन्ट—वर्तमान कैन्टूनमेन्ट बसने के पहिले यह कटरा और कर्नलगंज के पास था। कटरे के दक्षिण दरभंगा कैसिल से लेकर पश्चिम रोमन कैथालिक गिरजाघर तक गोरों की बारिकें थीं। कटरे के उत्तर हिन्दोस्तानी पल्टन रहती थी। इस तरफ कर्नलगंज सदर बाजार था और उस तरफ कमिश्नरी के उत्तर पूर्व तोपखाना बाजार था, उसमें पश्चिम की ओर जहाँ आजकल घुड़दौड़ का मैदान है विलिंगटन बैरिक थी। उसी में तोपखाना रहता था। उसमें उत्तर रिसाला था, और उससे उत्तर गंगातट पर मेगजीन था, जो आजकल बारूद खाना मुहल्ला के नाम से प्रसिद्ध है।

गदर के बाद यहाँ से कुछ छावनी, सिवाय रिसाले के आजकल के नये

केन्टूनमेंट में चली गई है। फिर सन १६७१ के बाद रिसाला भी वहीं चला गया। यह छावनी भी खूब लम्बी चौड़ी है। इसमें मालगार्म भी है। इसके अन्तर्गत मेकफरसन बाग और झील दर्शनीय है। बलवे के बाद अंग्रेजी राज्य में इलाहाबाद की बड़ी उन्नति हुई।

सन् १८५८ ई० में प्रान्तीय सरकार की राजधानी आगरे से उठकर स्थायी रूप से फिर प्रयाग में आई। उसी के साथ गवर्नमेन्ट प्रेस भी यहाँ में आया। वर्तमान गवर्नमेन्ट प्रेस की इमारत बनने के पहिले यह पुराने पायोनियर प्रेस में रखा गया। सन १८७४ ई० में जब प्रेस का मकान बन गया तब यह उसमें आया। इस इमारत के निर्माण में तीन लाख पैंतालीस हजार रुपया लगा। राजधानी के होने पर प्रयाग में बहुत सी सरकारी संस्थाओं का जन्म हुआ।

सन १८५८ ई० में चौक की वह इमारत बनी जिसमें अब चुंगी का दफ्तर है। चायल की सदर तहसील पहिले-पहल उठकर इसी में आई थी। सन १८६३ ई० में तहसील की मौजूदा इमारत कलेक्टरी के पास बनी, तब यह उठकर उसमें गई। इसके पीछे चुंगी वाले भवन में कोतवाली कुछ दिनों तक रही। कोतवाली का पुराना स्थान वही है, जहाँ वह अब है। सन १८७४ में म्युनिसिपैल्टी ने ७५१६३ रुपये की लागत से नई कोतवाली बनाई। तब यह इमारत खाली हो गई और इसमें चुंगीघर के दफ्तर इत्यादि आ गये।

सन् १८६१ में कालविन डिस्पेन्सरी बनी। सन् १८६८ में क्लब घर (आफिसर्स ट्रेनिंग कालेज) स्थापित हुआ। गवर्नमेंट प्रेस के पश्चिम, जो चार बड़ी बड़ी ऊँची इमारतें एक ही तरह की बनी हुई हैं, इन सब इमारतों में १२ लाख रुपये की लागत लगी है। कुछ दिनों के बाद जब हाईकोर्ट में जगह की तंगी हुई तो कई बार यह प्रश्न उठा कि हाईकोर्ट का नया भवन यहाँ बने या लखनऊ में। दोनों ओर से खूब खींचा-तानी हुई और कुछ दिनों तक अखबारों में पक्ष विपक्ष में वाद-विवाद होता रहा। अन्त में हाईकोर्ट यहीं रखना निश्चय हुआ। तब उसका नया वर्तमान भवन १५ लाख रुपये की लागत से बनवाया गया और २७ नवम्बर सन् १९१६ ई० को तत्कालीन वायसराय द्वारा उसका उद्घाटन संस्कार किया गया।

सन् १८७० ई० में मटिओरालाजिकल आबज़रवेटरी अर्थात् शीतोष्ण परीक्षक वेधशाला स्थापित हुई जिसको यहाँ लोग 'हवाघर' कहते हैं।

जिले की कचहरियों में 'जजी' पहिले जमुना के पुल के पास पश्चिम की ओर थी और जिस इमारत में अब जजी है उसमें पहिले कुछ दिनों तक 'बोर्ड आफ रिवेन्यू' का दफ्तर था। सन् १८७० में जब बोर्ड उठकर वर्तमान भवन में गया तब इसमें जजी जमुना किनारे से उठकर आ गई। कलेक्टरी का पुराना स्थान वही है जहाँ वह अब है, लेकिन उसकी मौजूदा इमारत सन् १८८६ में बनी थी। उस बीच में जब यह बन रही थी, कलेक्टरी कुछ दिनों तक नार्मल स्कूल एलनगंज में थी और कुछ दिनों तक वर्तमान दीवानी वाले मकान में थी। उन दिनों दीवानी उठकर प्रयाग स्टेशन के पूर्व कक्कर वाली कोठी में चली गई थी।

कमिश्नरी पहिले वर्तमान भरद्वाजाश्रम के टीले पर थी, पीछे उठकर वर्तमान स्थान में गई। उसका पुराना बंगला बहुत दिनों तक भरद्वाज बोर्डिङ्ग हाउस के नाम से म्योर सेन्ट्रल कालेज के विद्यार्थियों का निवास स्थान रहा। अब इस जगह म्युनिसिपल्टी द्वारा जवाहर पार्क बनवा दिया गया है।

पहिले मझनपुर और फूलपूर में भी मुँसफियाँ थी किन्तु १८५७ के बलवे के बाद तोड़ दी गई।

प्रयाग प्रदर्शिनी——सन् १९११ ई० में यहाँ एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक प्रदर्शिनी हुई थी। इस प्रदर्शिनी के पहिले सन् १८६४ ई० में भी एक ऐसी ही प्रदर्शिनी का होना पाया जाता है किन्तु सन् १९११ ई० की प्रदर्शिनी, कहने को तो प्रान्तीय थी किन्तु वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय सी कही जा सकती है। यह प्रसिद्ध प्रदर्शिनी किले के पश्चिम लगभग २०० बीघा जमीन पर दिसम्बर सन् १९१० ई० से तीन महीने तक लगातार खुली रही थी। कहा जाता है कि इसको लगभग दस लाख आदमियों ने देखा और इस पर साढ़े इक्कीस लाख रुपये खर्च किये गये थे। हिन्दोस्तान में इसी अवसर पर सबसे पहिले हवाई जहाज उड़ाये गये थे। इस प्रदर्शिनी के देखने के लिये इस देश के राजा महाराजों और गण्यमान व्यक्तियों के अलावा देश देशान्तर से भी बहुत से लोग आये थे जिसमें जर्मनी के युवराज भी थे। उस समय सर जान हीवेट इस सूबे के लेफ्टनेन्ट गवर्नर थे। उन्हीं की प्रेरणा से यह सफल प्रदर्शिनी हो सकी थी। जिनके नाम से बाद में एक सड़क हीवेट रोड बनाई गई।

इस प्रदर्शिनी के प्रदर्शनार्थ वस्तुएँ बारह विभागों में बाँटी जा सकती हैं। पहला विभाग डाक और तार सम्बन्धी रोचक वस्तुओं का था। दूसरे में अनेक

प्रकार की ललित कलाओं का संग्रह था। तीसरे में लकड़ी और पत्थर की कारीगरी थी। चौथे में चमड़े और कागज तथा अनेक प्रकार की [illegible] अन्य वस्तुएँ थीं। पाँचवाँ विभाग देशी रियासतों की कारीगरी तथा वहाँ की प्राचीन वस्तुओं का था। छठें में हर प्रकार की शिक्षा सम्बन्धी वस्तुएँ तथा कुछ उत्तम हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकें थीं। सातवाँ स्त्रियों की कारीगरी का विभाग था। आठवें में स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी अस्त्र शस्त्र तथा अनेक प्रकार की अन्य वस्तुएँ थीं। नवाँ इंजीनियरिंग अर्थात् हर प्रकार के कला-कौशल का विभाग था। दसवें में हर प्रकार की बुनाई का काम होते दिखाया गया था। ग्यारहवाँ कृषि और बारहवाँ वन विभाग था। ये अन्तिम दो विभाग सबसे बड़े थे।

इस प्रदर्शिनी में कितनी अस्थाई सुन्दर सुन्दर भवन बनाये गये थे। जिनसे मानो यहाँ एक छोटा नया शहर सा बसाया गया था। बीच में एक घंटाघर था जिसकी नकल वर्तमान चौक का घंटाघर है।

इलाहाबाद का शहर लगभग २० मील में फैला हुआ है। सोलह मील म्युनिसिपल बोर्ड का क्षेत्र है और कुछ अधिक छः मील तक कैन्टूनमेन्ट के क्षेत्र में है। शहर की आबादी पहले पौने दो लाख के करीब थी किन्तु इस समय साढ़े तीन लाख है।

प्रयाग की धार्मिक देन

देश के आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक विकास में भारतवर्ष का कोई भी नगर अथवा क्षेत्र प्रयाग की समानता नहीं कर सकता। वैदिक काल में जब प्रयाग केवल वन था, यहाँ के साधु महात्माओं ने आत्मतत्व के गूढ़तम रहस्योद्घाटन में अपना सारा जीवन लगा दिया था। प्रयाग ब्रह्मा का यज्ञ स्थान, मुनियों का साधन स्थान, देवताओं का आमोद स्थान, और पुण्डरीकाक्ष भगवान का प्रियनिवास स्थान है। देव नदी गंगा, सूर्यतनया यमुना, और ध्यानागम्य सरस्वती ने यहाँ त्रिकोणात्मक भूखण्ड बनाकर मानव प्रयास की अलभ्य वस्तु मुक्ति को भी सुलभ कर दिया है। इस रहस्य का ज्ञान तो केवल सिद्ध योगी जन ही अनुभव कर सकते हैं। इतर प्राणियों को तो प्रयाग का यह दावा हास्यास्पद ही जान पड़ेगा।

त्रिवेणी की यौगिक परिभाषा—योग द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के आठ अंग है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम ये चार बहिरंग हैं और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये चार अन्तरंग हैं। बहिरंग और अन्तरंग को मिलाने वाला अंग प्रत्याहार है। जीव बाहरी और आन्तरिक इन्द्रियों में बद्ध रहता है। इसी कारण से दोनों प्रकार की इन्द्रियों से वीतराग कराने का जो अभ्यास है, उसे यम और नियम कहते हैं। यम और नियम के साधनों से साधक मुक्ति प्राप्त करने का अधिकारी होता है, इसके पश्चात योग के तृतीय अंग आसनों की साधना कर, जो संख्या में ८४ हैं, साधक अपने शरीर को मुक्ति के उपयुक्त बनाता है। चांचल्य से बन्धन और धैर्य से मुक्ति होती है। इसलिये शरीर को धैर्ययुक्त करने की शैली को आसन कहते हैं। प्राण को पूरक, कुंभक, रेचक द्वारा धैर्ययुक्त करने की शैली को प्राणायाम कहते हैं। इन साधनाओं के अनन्तर साधक को प्रयाग के अन्तरंग साधन का अधिकार प्राप्त होता है, क्योंकि मन और वायु दोनों कारण और कार्य रूप से एक ही हैं।

प्रत्याहार साधन के द्वारा साधक अपनी बाहरी दृष्टि को बाहरी संसार से हटाकर अन्तरजगत में ले जाता है। कछुआ जिस प्रकार अपने अंगों

होता है, उसी प्रकार प्रत्याहार द्वारा साधक विषयों से अपनी योग प्रवृत्ति को बाहरी संसार से खींच कर अन्तर जगत में पहुँच जाता है। अन्तर जगत में पहुँच कर सूक्ष्म अन्तर राज्य के किसी विभाग का सहारा लेकर अन्तरराज्य में ठहरे रहने को ही धारणा कहते हैं। इसके बाद साधक को अन्तरराज्य के द्रष्टा बनना या के सगुण अथवा निर्गुण रूप के ध्यान करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। उस समय ध्याता, ध्यान और ध्येय अथवा साधक साधन और साध्य की त्रिपुटी के सिवाय कुछ नहीं रहता। इसी को त्रिवेणी कहते हैं। यहीं पर स्नान करने से पापी भी मुक्त हो जाता है। इसको समाधि अवस्था कहते हैं। इसी अवस्था को प्राप्त करने के लिये महर्षियों ने मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग, इन चारों मार्गों की जो क्रिया बताई है, वे इन्हीं आठ अंगों की सहायता से निर्णीत हुई हैं। परमतत्व आत्मप्राप्ति के लिए, मनुष्य अपने अधिकार, भावना, तथा सामर्थ्य के अनुसार इन चारों में से किसी एक शैली से साधना करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है, जैसे मंत्र केवल ऋषियों, मुनियों के लिये है। नारद, गर्ग पुलस्त्य, वाल्मीकि, पतञ्जलि आदि मंत्र योग के आचार्य हैं। स्थूल बुद्धि वालों के लिए हठ योग उपयुक्त है। प्रयाग के त्रिवेणी स्नान का संबंध लय योग से है। अन्य योग क्रियाओं में जहाँ आठ अंग होते हैं, इस लय योग में नव अंग होते हैं। यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्म क्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लय क्रिया और समाधि। लय क्रिया से प्रमुख महाशक्ति प्रबुद्ध होकर ब्रह्म में लय होती है। इनकी सहायता से जीव शिवत्व को प्राप्त होता है। लय क्रिया की सिद्धि से महालय, समाधि की उपलब्धि होती है। इसी से साधक की मुक्ति होती है। प्रयाग की त्रिवेणी इसी लय योग के धारणा अंग से सम्बन्ध रखती है। त्रिवेणी स्नान करने से पहिले लय योग के पहिले छः अंगों की साधना करनी चाहिये। तब, वेणीमाधव का ध्यान करके लय क्रिया, स्नान करना चाहिये। इसमें अपने आप समाधि का अंग पूरा हो जायगा जिसके अनन्तर मुक्ति अनिवार्य रूप से प्राप्त होती है।

धारणा रूपी यह त्रिवेणी क्या है। धारणा के लिये षट्चक्र भेद करना आवश्यक है। योगशास्त्र के अनुसार षट्चक्र का वर्णन इस प्रकार है।

गुदा से दो अंगुल ऊपर और जननेन्द्रिय से दो अंगुल नीचे, चार अंगुल के विस्तार में सब नाड़ियों के मूल स्वरूप, अण्डा की तरह एक कन्द के रूप में

यह मूलाधार चक्र है। इसमें से बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकल कर सारे शरीर मे फैली हुई हैं। इन नाड़ियों मे तीन नाड़ियाँ मुख्य है। मेरुदड से बाहर बाई तरफ इड़ा है जो सूर्य्य रूपिणी है, और दाहिनी तरफ चन्द्र रूपिणी पिगला नाड़ी है। मेरुदंड के भीतर बीचो बीच, सत, रज, तम अर्थात सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि स्वरूप सुषुम्ना नाड़ी है। इड़ा तथा पिगला नाड़ी मूलाधार चक्र से उठकर ऊपर की ओर स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत और विशुद्ध आदि चक्रों को वेष्टन करके आज्ञा चक्र के अन्त तक धनुषाकार जाकर दोनों भौंहो के बीच ब्रह्मरन्ध्र मे एक हो जाती हैं और तब नासारन्ध्र में प्रवेश करती हैं। दोना भौंहो के बीच जहाँ पर इड़ा और पिगला मिलती है वहाँ पर मेरुदड व बीच से होकर ऊपर आने वाली सुषुम्ना नाड़ी भी जा मिलती है। इसलिये यह स्थान त्रिवेणी कहलाता है। इन्हीं तीनों नाड़ियों को क्रमश योग शास्त्र मे गगा, जमुना और सरस्वती कहा गया है।

इड़ा भोगवती गगा, पिंगला यमुना नदी
इड़ा पिंगलयोर्मध्ये, सुषुम्ना च सरस्वती।

अर्थात् इड़ा भोगव ी गगा, पिगला यमुना, और इन दोना के मध्य में सुषुम्ना सरस्वती है।

जिस प्रकार योगी योग बल से अपनी आत्मा का त्रिकुटी, त्रिपुटी अथवा त्रिवेणी मे स्नान करके मुक्ति प्राप्त करता है, उसी प्रकार इन तीनों नाड़ियों के विग्रह स्वरूप गगा, जमुना तथा सरस्वती के सगम स्थान त्रिवेणी में स्नान करने से मुक्त होती है। यही त्रिवेणी का यौगिक रहस्य है।

प्रयाग की विशेषता—हरि प्रयाग, कर्णप्रयाग, देवप्रयाग, नन्दप्रयाग, विष्णुप्रयाग और रुद्र प्रयाग आदि कई प्रयाग है किन्तु यह प्रयाग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। पहिले ही बताया जा चुका है कि प्रयाग का शाब्दिक अर्थ है जहाँ विशेष प्रकार व यज्ञ किये गये हो। जिस प्रकार पितरों की मुक्ति गया म श्राद्ध यज्ञ करने से होती है, ऋषि मुनियो के सम्मेलन का विशेष स्थान नैमिषारण्य है, कर्मकाण्ड के लिये काशी का महात्म्य है, और गुरुधर्म व लिये पुष्करराज है, ठीक उसी प्रकार विशेष प्रकार क यज्ञ करने का एक मात्र स्थान प्रयाग है। यही कारण है कि सर्वप्रथम प्रजापति ब्रह्मा ने यहाँ यज्ञ किया, इसके बाद शिव, इन्द्रादि

लेता है, उसी प्रकार प्रत्याहार द्वारा साधक विषयों से अपनी योग प्रवृत्ति को बाहरी संसार से हटा कर अन्तर जगत में पहुँच जाता है। अन्तर जगत में पहुँच कर सूक्ष्म अन्तर जगत के किसी विभाग का सहारा लेकर अन्तराकाश में ठहरे रहने की ही धारणा कहते हैं। इसके बाद साधक को अन्तराकाश के द्रष्टा परमात्मा के सगुण अथवा निर्गुण रूप के ध्यान करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। उस समय ध्याता, ध्यान और ध्येय अथवा साधक साधन और साध्य की त्रिपुटी के सिवाय कुछ नहीं रहता। इसी को त्रिवेणी कहते हैं। यहीं पर स्नान करने से पापी भी मुक्त हो जाता है। इसको समाधि अवस्था कहते हैं। इसी अवस्था को प्राप्त करने के लिये महर्षियों ने मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग, इन चारों योगों की जो क्रिया बताई है, वे इन्हीं आठ अंगों की सहायता से निर्णीत हुई हैं। परमात्म आत्मप्राप्ति के लिए, मनुष्य अपने अधिकार, पात्रता, तथा सामर्थ्य के अनुसार इन चारों में से किसी एक शैली से साधना करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है, जैसे मंत्र केवल ऋषियों, मुनियों के लिये है। नारद, राम पञ्चरत्न, बाल्मीकि, बृहस्पति आदि मंत्र योग के आचार्य हैं। स्थूल बुद्धि वालों के लिए हठ योग उपयुक्त है। प्रयाग के त्रिवेणी स्नान का संबंध लय योग से है। अन्य योग क्रियाओं में जहाँ आठ अंग होते हैं, इस लय योग में नव अंग होते हैं। यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्म क्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लय क्रिया और समाधि। लय क्रिया में प्रसुप्त महाशक्ति प्रबुद्ध होकर ब्रह्म में लय होती है। इसकी सहायता से जीव शिवत्व को प्राप्त होता है। लय क्रिया की सिद्धि से महालय, समाधि की उपलब्धि होती है। इसी से साधक की मुक्ति होती है। प्रयाग की त्रिवेणी इसी लय योग के धारणा अंग से सम्बन्ध रखती है। त्रिवेणी स्नान करने से पहिले लय योग के पहिले छः अंगों की साधना करनी चाहिये। तब, योगीसाधक का ध्यान करके लय क्रिया, स्नान करना चाहिये। इससे अपने आप समाधि का अंग पूरा हो जायगा जिससे अनन्तर मुक्ति अनिवार्य रूप से प्राप्त होती है।

धारणा रूपी यह त्रिवेणी क्या है। धारणा के लिये षट्चक्र भेद करना आवश्यक है। योगशास्त्र के अनुसार षट्चक्र का वर्णन इस प्रकार है।

गुदा से दो अंगुल ऊपर और जननेन्द्रिय से दो अंगुल नीचे, चार अंगुल के विस्तार में सब नाड़ियों के मूल स्कन्ध, अण्डा की तरह एक कन्द के रूप में

बौद्ध धर्म कालीन संकट

आर्य धर्म का पुनरुद्धार—बुद्ध के समय में बौद्ध धर्म केवल एक छोटे से प्रान्त में सीमाबद्ध था। जब ईसवी पूर्व ४८७ के लगभग बुद्ध भगवान का निर्वाण हुआ, तब बौद्धधर्म केवल एक छोटा सा सम्प्रदाय था। उस समय उसका प्रचार केवल गया, प्रयाग और हिमालय के बीच वाले प्रान्त में था। किन्तु अशोक के धार्मिक उत्साह के कारण वह धर्म केवल कुल भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी दूसरे देशों—चीन, जापान, लंका आदि में फैल गया। अशोक के समय से कनिष्क के समय तक अर्थात् मोट तौर पर ई० पू० २०० से सन् २०० तक बौद्ध धर्म का प्रचार बड़ी प्रबलता के साथ हो रहा था। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि इस समय हिन्दू धर्म बिल्कुल ही लुप्त हो गया था। अशोक के मृत्यु के बाद ब्राह्मणों ने दलबद्ध होकर उसके वंशधरों का विरोध करना आरम्भ किया। परन्तु वे स्वयं लड़ नहीं सकते थे, अन्त में उन्हें इस काम के लिये एक योग्य विद्वान कुमारिल भट्ट बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुए। भट्ट जी सर्व प्रथम बौद्धधर्म के त्रुटियां तथा आभ्यान्तरिक भेदों से पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिये एक प्रसिद्ध बौद्ध को अपना गुरु बनाया। तत्पश्चात् बौद्ध धर्म के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला प्रचार किया। यह प्रथम हिन्दू विद्वान थे जिन्होंने बौद्ध दर्शन के विरोध में सफल प्रदर्शन किया और वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड की महत्ता को पुनः स्थापित करने की चेष्टा की थी। वह दक्षिण भारत में चोल देश के ब्राह्मण थे। चूँकि कुमारिल भट्ट ने अपने बौद्ध गुरु से विश्वासघात किया था इसलिए इस जघन्य और अक्षम्य पाप से मुक्ति पाने के लिए प्रयाग स्थित त्रिवेणी तट पर अपने को तुषानल में जलित प्रवेश किया। इस प्रकार चितारूढ़ कुमारिल भट्ट से बौद्धों पर दिग्विजय प्राप्त करने के लिये जगद्गुरु शंकराचार्य ने उनसे आशिर्वाद चाही। वे पूज्य विद्वान चितारूढ थे, किन्तु ब्रह्मसूत्र पर शंकर भाष्य देख कर बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने आशिर्वाद दिया, भविष्यवाणी की कि 'अद्वैतवाद के प्रचार में मुझे जितनी सफलता मिली है, उससे कहीं अधिक शंकर को मिलेगी, और विजय पताका फहराते हुए देश के बहुत बड़े भाग में वेदान्तिक अद्वैतवाद की स्थापना कर सकेंगे।' अपने अन्तिम श्वास से उन्होंने यह आदेश दिया कि मेरे शिष्य मण्डन मिश्र से जो

देवताओं और ऋषियों आदि ने यहाँ यज्ञ किया, जिस देवता अथवा व्यक्ति विशेष ने यहाँ जिस स्थान विशेष पर यज्ञ किया, वे सब स्थान यहाँ आज भी पंच कोशी मंडल में उन्हीं के नाम से तीर्थ स्थान के रूप में वर्त्तमान हैं। इतिहास से पता लगता है कि प्रयाग के दशाश्वमेध घाट का ऐतिहासिक संबंध भारशिव भवनाग से ही सिद्ध होता है। यह नरेश दश अश्वमेध यज्ञ करके भागीरथी गंगा से जल से अभिषिक्त हुआ था। पचनाशी के कम्बलाश्वतर, बहुमूलक तथा कालियहृदय आदि स्थानों से यही सिद्ध होता है कि ये सब स्थान भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न समय के राजाओं द्वारा किये हुये यज्ञों के स्मारक स्वरूप तीर्थ हैं। गुप्तकालीन राजाओं द्वारा यहाँ कई स्थानों पर यज्ञ किये गये थे। समुद्रगुप्त द्वारा जीर्णोद्धार किया हुआ समुद्र कूप आज भी पुरानी झूँसी में है।

बौद्ध कालीन प्रयाग—बौद्ध काल में भी प्रयाग का प्रमुख स्थान रहा है। प्रयाग जिले के मझनपुर तहसील में कौशाम्बी का खंडहर आज भी ऊँचा सिर किये हुए पुकार रहा है कि बौद्ध धर्म के प्रचार का गढ़ यही है। कौशाम्बी के उत्खनन से एक मूल्यवान अभिलेख प्राप्त हुआ है। वह जिस स्थान पर मिला है, वहीं पर प्राचीन बौद्ध विहार घोषिताराम था। यह विहार कौशाम्बी के घोषित नामक एक नागरिक ने भगवान बुद्ध के सम्मान में, जब वे कौशाम्बी आये थे, निर्मित कराया था, बाद में भगवान बुद्ध ने इसे अपना एक प्रिय प्रचार-स्थल बना लिया था।

पाली साहित्य, चीनी यात्रियों ह्वेनसांग तथा फाहियान के ग्रन्थों से पता लगता है कि यह विहार क्रम से क्रम तीसरी शताब्दी तक एक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र बना हुआ था। अनेक संस्कृत एवं पाली ग्रन्थों के नायक महाराज उदयन जो भगवान बुद्ध के समसामयिक थे, इसी नगरी के थे। इसके तीन विहार—घोषिताराम, कुक्कुटा राम, तथा पावारीय की ख्याति दूर दूर तक थी और उन्होंने बुद्ध के जीवन काल में ही कौशाम्बी को बौद्ध धर्म का एक बड़ा गढ़ बना दिया था। इतिहास से यह भी सिद्ध है कि महान अशोक, जो बौद्ध धर्म के सबसे बड़े प्रचारक थे, अपने युवराज काल में कौशाम्बी के सूबेदार थे। अशोक स्तम्भ आज भी इलाहाबाद के किले में उनके स्मारक स्वरूप खड़ा है।

बौद्ध धर्म कालीन संकट

आर्य धर्म का पुनरुद्धार—बुद्ध के समय में बौद्ध धर्म केवल एक छोटे से प्रान्त में सीमाबद्ध था। जब ईसवी पूर्व ४८७ के लगभग बुद्ध भगवान का निर्वाण हुआ, तब बौद्धधर्म केवल एक छोटा सा सम्प्रदाय था। उस समय उसका प्रचार केवल गया, प्रयाग और हिमालय के बीच वाले प्रान्त में था। किन्तु अशोक के धार्मिक उत्साह के कारण वह धर्म केवल कुल भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी दूसरे देशों—चीन, जापान, लंका आदि में फैल गया। अशोक के समय से कनिष्क के समय तक अर्थात् मोटे तौर पर ई० पू० २०० से सन् २०० तक बौद्ध धर्म का प्रचार बड़ी प्रबलता के साथ हो रहा था। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि इस समय हिन्दू धर्म बिल्कुल ही लुप्त हो गया था। अशोक के मृत्यु के बाद ब्राह्मणों ने दलबद्ध होकर उसके वंशधरों का विरोध करना आरम्भ किया। परन्तु वे स्वयं लड़ नहीं सकते थे, अन्त में उन्हें इस काम के लिये एक योग्य विद्वान कुमारिल भट्ट बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुए। भट्ट जी सर्व प्रथम बौद्धधर्म के त्रुटियों तथा आभ्यान्तरिक भेदों से पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिये एक प्रसिद्ध बौद्ध को अपना गुरु बनाया। तत्पश्चात् बौद्ध धर्म के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला प्रचार किया। यह प्रथम हिन्दू विद्वान थे जिन्होंने बौद्ध दर्शन के विरोध में सफल प्रदर्शन किया और वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड की महत्ता को पुनः स्थापित करने की चेष्टा की था। वह दक्षिण भारत में चोल देश के ब्राह्मण थे। चूँकि कुमारिल भट्ट ने अपने बौद्ध गुरु से विश्वासघात किया था इसलिए इस जघन्य और असम्य पाप से मुक्त पाने के लिए प्रयाग स्थित त्रिवेणी तट पर अपने को तुषानल में जाग्रित प्रवेश किया। इस प्रकार चितारुढ़ कुमारिल भट्ट से बौद्धों पर दिग्विजय प्राप्त करने के लिये जगद्गुरु शंकराचार्य्य ने उनसे आशिर्वाद चाही। वे पूज्य विद्वान चितारुढ़ थे, किन्तु ब्रह्मसूत्र पर शंकर भाष्य देख कर बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने आशिर्वाद दिया, भविष्यवाणी की कि 'अद्वैतवाद के प्रचार में मुझे जितनी सफलता मिली है, उससे कहीं अधिक शंकर को मिलेगी, और विजय पताका फहराते हुए देश के बहुत बड़े भाग में वेदान्तिक अद्वैतवाद की स्थापना कर सकेंगे।' अपने अन्तिम श्वास से उन्होंने यह आदेश दिया कि मेरे शिष्य मण्डन मिश्र से जो

मेरा ही दिग्विजय स्तम्भ है शास्त्रार्थ करो, यदि उसे तुम पराजित कर सके तो तुम्हारा दिग्विजय ध्रुव निश्चय हो जायगा। शंकराचार्य ने ऐसा ही किया, मण्डन मिश्र से लगातार १८ दिन तक उनकी ही स्त्री सरस्वती देवी को निर्णायक के पद पर प्रतिष्ठित कर कर शास्त्रार्थ किया। अन्त में उन्हें और बाद में उनकी पत्नी को शास्त्रार्थ में पराजित किया।

इस विजय के पश्चात शंकर ने बौद्धमत, जैनमत, तंत्रवाद तथा अद्वैतवाद-विरोधी प्रत्येक मतों के समर्थकों को पराजित किया। तत्पश्चात् उन्होंने सर्व प्रथम दक्षिण में शृंगगिरि पर शृंगेरीमठ की स्थापना किया, और पराजित मण्डन मिश्र सुरेश्वराचार्य के नाम से शृंगेरीमठ के अधिकारी हुए। इसके अतिरिक्त पूर्व में जगन्नाथ जी, पश्चिम में द्वारिका और उत्तर में बद्रिकाश्रम में मठ स्थापित किये। इस प्रकार वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक शंकर दिग्विजय का श्रेय प्रधानतः प्रयागस्थ त्रिवेणी तट पर चितारूढ़ कुमारिल भट्ट को है।

शंकर के पहिले भारत में मठ अथवा अखाड़े नहीं थे। हाँ बौद्धों ने विहार और मठ स्थापित किये थे। उन्हीं के नकल में इन्होंने भी भिन्न भिन्न स्थानों पर मठ स्थापित किये। इनके उद्देश्यों को सफल बनाने के लिए उनके बाद उनके अनुयायियों ने बौद्ध धर्म का उन्मूलन करने के लिए प्रयाग में छः दशनामी अखाड़े स्थापित किये, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

अखाड़ा महानिर्वाणी—यह अखाड़ा अगहन शुक्ल दशमी बृहस्पतिवार सं० ८०५ वि० को बिहार के अन्तर्गत झारखण्ड बैद्यनाथ धाम की ओर स्थापित हुआ। इस अखाड़े के इष्टदेव सगर पुत्रों के भस्म करने वाले कपिल महामुनि जी हैं। इसमें लगभग नियम बद्ध नागों की १००० मूर्तियों की संख्या होगी। केन्द्र प्रयाग राज है। इसके अतिरिक्त कनखल, ओंकार, काशी, त्र्यम्बक, उज्जैन आदि में भी शाखायें हैं। इस अखाड़े में अनेक महापुरुष ऐसे हो गये हैं जिनके कारण अखाड़ों में इसका स्थान प्रथम गिना जाता है।

अखाड़ा निरंजनी—यह अखाड़ा कच्छ माण्डवी में सोमवार को सम्वत् ९६० वि० में स्थापित किया गया। इसके इष्टदेव कार्तिक स्वामी हैं। इसमें भी लगभग नियमबद्ध नागों की पाँच सौ महापुरुषों की संख्या होगी। केन्द्र प्रयाग है और हरिद्वार काशी, त्र्यम्बक, ओंकार, उज्जैन, उदयपुर, ज्वालामुखी आदि में शाखाएँ हैं।

अखाड़ा जूना—(भैरव अखाड़ा) यह अखाड़ा कार्तिक शुक्ल १० सं० १२०२ वि० को कर्ण प्रयाग में भैरव अखाड़ा के नाम से स्थापित किया गया। इसके इष्ट देव रुद्रावतार दत्तात्रेयी महाराज हैं। जूना अखाड़ा प्रभाव एवं सम्पत्ति में तीसरे नम्बर पर आता है। नियम बद्ध नागाओं की सख्या लगभग ३०० मूर्तियाँ होंगी। इसमें विशेषता यह है कि इसके नीचे अवधूतिनियो साधुनियों का भी सगठन है। इसका केन्द्र काशी है। प्रयाग, हरिद्वार, ओंकार, त्र्यम्बक, उज्जैन आदि में शाखाएँ है।

अखाड़ा अटल—मार्ग शीर्ष शुक्ल चतुर्थी सं० ७०३ वि० को गोंडवाना में यह अखाड़ा स्थापित किया गया। इसके इष्टदेव गजानन गणेश जी हैं। इसमें नागो की सख्या १०० है। इसका विशेष सम्बन्ध निर्वाणी अखाड़े से है। केन्द्र स्थान काशी है। प्रयाग, बड़ोदा, हरिद्वार, त्र्यम्बक, उज्जैन आदि में शाखाएँ हैं।

अखाड़ा आवाहन—इस अखाड़े का जन्म ज्येष्ठ कृष्ण ६ शुक्रवार को सं० ६०३ वि० को हुआ था। इष्टदेव दत्तात्रेय और गजानन हैं। यह जूना अखाड़े के साथ रहता है। इसमें लगभग १०० नागे हैं। केन्द्र स्थान काशी है। हरिद्वार आदि में शाखायें हैं।

अखाड़ा आनन्द—यह ज्येष्ठ चतुर्थी रविवार को सं० ६१२ वि० में स्थापित हुआ। इनके इष्टदेव अग्निदेव हैं। यह निरजनी के साथ रहता है। इनके अतिरिक्त सातवाँ अखाड़ा अग्नि का भी नाम आता है। किन्तु इसमें नागा सन्यासी नहीं हैं। इसमें चारों पीठो के ब्रह्मचारियों का सगठन मात्र रह गया है। केन्द्र स्थान काशी है। इष्टदेव सर्वसहारक अग्नि हैं।

अखाड़ो के नागाओं की उक्त सख्या का प्रयोजन यह है कि इनके नागा साधुओं का अखाड़े के सचालन में सदा सहयोग रहता है। वैसे तो समय समय पर इनके अनुयायियों की सख्या हजारों तक पहुँच जाती है।

इनमें मढियाँ और दावे भी होते हैं, यथा—सन्यासी के दशनाम तीर्थ, आश्रम, सरस्वती, भारती, गिरि, पुरी, बन, पर्वत, अरण्य और सागर। ये अखाड़ो के स्थापना के पहिले से ही चले आते थे। इनमें पहिले चार नाम वाले दण्डी सन्यासी भी मिलते हैं। दण्डी सन्यासी सिर्फ ब्राह्मणों के लिए रिजर्व है। एक अखाड़े में आठ दावे होते हैं, जिनको गिरि, पुरी के दावों के रूप में दो भागों में बाँटा गया है। पर्वत, सागर को लेते हुये गिरिदावे चार हैं।

यवन कालीन संकट (पूर्वार्द्ध)

जगद्गुरु शंकराचार्य ने कर्म प्रधान बौद्ध धर्म पर अपने ज्ञान प्रधान अद्वैत सिद्धान्त द्वारा पूर्ण विजय प्राप्त कर लिया। और वेदान्त को स्थाई रूप देने के लिये एक विरक्त मंडल की संस्थापना भी किया। किन्तु उनके बाद उनके उत्तराधिकारियों ने नीरस और शुष्क अद्वैतवाद का प्रचार किया। इनके श्लाघनीय त्याग की प्रधानता में आर्य राष्ट्र तथा धर्म के मुख्य गुण शौर्य तथा वीरता का अवहेलना होगई। इसके अतिरिक्त इस मतवाद से मान तो का अपमान भी हो रहा था। इस सिद्धान्त के अनुसार इस विश्व तथा इस लोक के मनुष्य माया और मिथ्या सिद्ध किये गये। इसके अतिरिक्त यह मार्ग केवल ब्राह्मण जाति के लिये ही खुला था। इतर जातियों का प्रवेश उसमें नहीं हो सकता था। परिणाम हुआ ढाक के वही तीन पात।

विभिन्न कालों तथा परिस्थितियों में कतिपय वैष्णव आचार्यों – श्रीरामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, माधवाचार्य वल्लभाचार्य तथा रामानन्दाचार्य ने इस आवश्यकता का अनुभव किया। और इस अद्वैतवाद के विरुद्ध विशिष्टाद्वैत, अद्वैताद्वैत, पुष्टिमार्ग तथा शुद्धाद्वैतवाद का खुला प्रचार किया। इन मतवादों के प्रचार ने शैव जगत को क्षुब्ध कर दिया और फलतः उनमें प्रतिकार की भावना आगई। निष्कर्ष शैव और वैष्णव दो स्पष्ट धार्मिक धारायें भारत में उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर बहने लगी। दोनों विरोधी धारायें एक दूसरे से टकरा गई।

शैवों और वैष्णवों का पारस्परिक साघातिक संघर्ष चल ही रहा था कि विदेशियों के आक्रमण भारत पर आरम्भ हो गये। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने दोनों दलों की खबर लेनी शुरू कर दी। तात्कालिक यवनों ने हिन्दुओं पर अवर्णनीय अत्याचार और अन्याय किया। ऐसे ही समय में वैष्णव मतावलम्बियों का पुनः सगठन किया गया जिसमें स्वामी रामानन्द का प्रमुख हाथ था।

स्वामी रामानन्द––इनका जन्म कान्य कुब्ज ब्राह्मण कुल में माघ कृष्ण सप्तमी, भृगुवार सम्वत १३२६ में प्रयाग में हुआ। इनके माता का नाम सुशीला

तथा पिता का नाम पुण्य सदन था। वे पढ़ने के लिये काशी गये थे, जहाँ पर शंकराद्वैत मत के प्रभाव में शिक्षा प्राप्त कर अन्त में प्रसिद्ध विशिष्टाद्वैतवादी स्वामी राघवानन्द के शिष्य हो गये। परन्तु कहीं से तीर्थयात्रा करके लौटने पर, खान-पान के आचार सम्बन्धी कुछ मतभेदों के उत्पन्न हो जाने के कारण, उन्होंने अपने गुरु से अलग होकर एक नवीन मत का प्रवर्त्तन किया जो 'रामावत सम्प्रदाय' कहलाता है। स्वामी रामानन्द एक स्वाधीन चेता महापुरुष थे और इनके चरित्रबल एवं असाधारण व्यक्तित्व के कारण, एक नवीन जागृति दीख पड़ने लगी।

कहा जाता है कि मुसलमानों के धार्मिक अत्याचारों से ऊब कर काशी के कुछ विशिष्ट हिन्दू व्यक्तियों ने इसके निराकरण के लिये उनसे प्रार्थना की। दूसरे दिन इनके तपस्या के प्रभाव से इनका शंख बजते ही अज़ान के समय मुल्लाओं के कंठ अवरुद्ध होने लगे। इनन्नूर तथा मीर तकी ने कबीर को अपने साथ लेकर इनसे ऐसा न करने के लिये प्रार्थना की। इन्होंने १२ शर्तें रखीं। सुना जाता है कि तात्कालिक मुस्लिम सुलतान ने इन सब शर्तों को स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् मुसलमानों का अजान और नमाज का कार्य्य पुन पूर्ववत चलने लगा।

इसी प्रकार एक दूसरे प्रसंग में अयोध्या से श्री गजसिंह देव स्वामी जी के आश्रम पर आये और निवेदन किया कि महाराज मैं अयोध्यापति हरीसिंह देव का भतीजा हूँ और सूर्य्यवंशी हूँ। मेरे चाचा वैशाख शुक्ल दशमी सोमवार सं० १३८१ को जूनाखां तुगलक के भय से तराई में भगवद् भजन के बहाने भाग गये थे। तब से अयोध्या का सिंहासन रिक्त पड़ा है। जूनाखां बीसों हजार प्राणियों का धर्म भ्रष्ट कर चुका है। गत पचास वर्षों के अन्दर धर्मभ्रष्टों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई है। मैं भी म्लेच्छ-स्पर्श से भ्रष्ट हो गया हूँ। प्रायश्चित का कोई मार्ग प्रशस्त नहीं है। आपसे अपने उद्धार की याचना करता हूँ। स्वामी जी अपने शिष्य मण्डली के साथ अयोध्या गये और सरयू के किनारे ले जाकर उन सबको शुद्ध किया।

स्वामी जी ने आचार्य श्रीरामानुज स्वामी के श्री सम्प्रदाय से अपना पूर्व सम्बन्ध विच्छेद कर स्वतन्त्र रूप से 'रामावत सम्प्रदाय' को जन्म दिया था और अपने नवीन मत के प्रचार द्वारा तत्कालीन सुधार आन्दोलनों में सक्रिय भाग

लिया था। उन्होंने एक ऐसे इष्टदेव की कल्पना की जो सर्वसाधारण के लिये भी कल्याणकारी प्रतीत हो सके, और एक ऐसी उपासना चलाई जिसके अधिकारी मनुष्य मात्र समझे जा सकें। इनके इस विशेषता को ही आधार रूप ठहरा कर इन्हीं के शिष्य परम्परा में आगे गो० तुलसीदास ने अपने अपूर्व ग्रन्थ रामायण की रचना की, जो कम से कम हिन्दू जाति के पारिवारिक जीवन का पथ प्रदर्शक बन गया। क्योंकि इस ग्रन्थ द्वारा दो विरोधी दलों के इष्ट देवों का—शैव दल तथा वैष्णव दल का अपूर्व सामजस्य किया है। 'हरि' और 'हर' को एक करके 'हरिहर' कर दिया।

स्वामी रामानन्द का स्थान उत्तरी भारत के सन्त परम्परा के इतिहास मे बहुत उच्च है। उस युग के प्राय प्रत्येक विशिष्ट सुधारक, कबीर एवं रैदास आदि को इनका किसी न किसी प्रकार से आभारी होना आज तक स्वीकार किया जाता है। वास्तव में जिस भक्ति साधना का प्रचार हम आज उत्तरी भारत म देख रहे हैं उसके प्रधान प्रवर्त्तक स्वामी रामानन्द ही थे और इन्हीं के प्रेरणा से उसे वर्त्तमान रूप मिला है। हरिभजन के आधार पर जाति व वर्ण सम्बन्धी कई नियमों को शिथिल कर सब साधारण का भी कुलीनवत अपनाने की प्रथा चली। इन्होंने मनुष्य मात्र की वास्तविक एकता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। सबकी समझ और सुभीते के विचार से इन्होंने धर्म प्रचार के लिये संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी भाषा को अधिक उपयुक्त ठहराया तथा लोक संग्रह की दृष्टि से जनता के बीच कार्य करने वाले संयमशील साधुओं की एक टोली संगठित की और वैरागी वा अवधूत नाम देकर उन्हें सर्वत्र भ्रमण करते रहने के लिये प्रेरित किया।

परम्परा से प्रसिद्ध है कि स्वामी रामानन्द के ५०० शिष्य थे, जिनमें १३ बहुत प्रसिद्ध हुये। इन तेरह में पाँच अर्थात् सेन नाई, कबीर साहेब, पीपा जी, रमादास (रैदास) एव धन्ना के साथ 'पद्मावती' नामकी एक शिष्या को भी सम्मिलित करके 'रहस्यत्रयी' के टीकाकार ने उन्हें छ मान लिया है और 'जितेन्द्रिया' भी कहा है। शेष सात म अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, योगानन्द, सुखानन्द, गालवानन्द एव भवानन्द को गिना कर उन्हें 'नन्दना' बतलाया है। इस प्रकार वस्तुत तरह जान पड़ने वाले व्यक्तियों का 'सार्द्ध द्वादश शिष्या' भी कहा है। भक्ति सुधा बिन्दु स्वाद (रूप कला जी पृ० २१४) में लिखा है—

स्वामी रामानन्द

राघवानन्द एतस्य रामानन्दस्तोऽभवत । साद्वद्वादश शिष्या स्यु रामानन्दस्य सद्गुणे

द्वादशादित्य सकाशा ससार तिमिरापा । श्रीमदनन्तानन्दस्तु सुरसुरानदनस्तथा नरहर्यानदस्तु योगानदस्तथैव च । सुखाभावागालवाच्च सप्तैते नाम नदना कबीरश्च रमादास सेना पीपा धनास्तथा । पद्मावती तदर्द्धश्च पठेते च जितेन्द्रिया

उनके शिष्या को सख्या ५०० से अधिक है । उस शिष्य समूह म बारह

शिष्य गुरु के विशेष कृपापात्र थे। (१) अनन्तानन्द (२) सुखानन्द (३) सुरसुरानन्द (४) नरहरियानन्द (५) योगानन्द (ब्राह्मण) (६) पीपा जी (क्षत्री राजा) (७) कबीर (जुलाहा) (८) सेन (नाई) (९) धना (जाट) (१०) रैदास (चमार) (११) पद्मावती (१२) सुरसरि (स्त्रियाँ)।

यह पहिले व्यक्ति थे जिन्होंने उस समय गुरु होने का उच्चस्थान प्राप्त करके भी ब्राह्मणों की भाँति इतर जाति के लोगों को भी 'तारक मन्त्र' की दीक्षा दी। इस सम्प्रदाय को श्री सम्प्रदाय अथवा वैरागी सम्प्रदाय कहते हैं। इसके मुख्य मन्त्र को 'रामतारक' कहते हैं। इस मंत्र की दीक्षा गुरु, शिष्य के कान में फूंक देता है।

इन्हीं के परम्परा में श्रीबालानन्द जी की नेतृत्व में, शैवों तथा गोसाइयों को जो वैष्णवों के उन्मूलन पर तुले हुये थे, पराजित करने के लिये वैरागियों ने अखाड़े संगठित किये गये। इन संगठनों का मुख्य स्थान आजकल अयोध्या में हनुमान गढ़ी है। इन अखाड़ों के साधु—अखाड़ मल्ल, नागा, अतीत, आदि नामों से पहिचाने जाते हैं। अखाड़े क्यों संगठित किये गये इसके पीछे एक रोचक कहानी है।

वैष्णव बावन द्वारे—कहा जाता है कि स्वामी रामानन्द जी के पूर्व उत्तर भारत में वैष्णव धर्मावलम्बी सुखपूर्वक अपना धर्म पालन नहीं कर सकते थे। शैव धर्मावलम्बी दशनामियों का सफल मुकाबिला करने के लिये, वैष्णव नेता श्रीअभयानन्द तथा श्री बालानन्द जी ने चारों वैष्णव सम्प्रदायों को वृन्दाबन के लसकरी कुंज सिद्धाश्रम पर संगठित किया। चारों सम्प्रदायों की सम्मति से बावन शर्तें निश्चित की गईं। और चारों सम्प्रदाय इन्हीं बावन द्वारों के अन्तर्गत समझे जाने लगे। इन बावन द्वारों में ३६ द्वारे श्री रामानन्दी सम्प्रदाय के, दस निम्बार्क सम्प्रदाय के, तीन तीन विष्णु स्वामी तथा माध्व सम्प्रदाय के हैं।

चूणामणि शक्ति तंत्र में लिखा है कि भगवती शक्ति के तेज से बावन सिद्ध पीठ शिव जी ने स्थापित किये थे, इन्हीं पीठों में दशनामी सन्यासियों ने बावन मढ़ियाँ स्थापित की थीं। वैष्णवों ने जब दलबद्ध होकर इन शैवों को पराजित किया तो इन्हीं बावन मढ़ियों पर उन्होंने बावन द्वारे स्थापित किये। इन बावन मढ़ियों से दशनामी लोग वैष्णवों की मूलोच्छेदन करने का साधना करते थे। इसीलिये श्री बालानन्द जी वैरागी ने वैष्णवों के प्राण रक्षा के लिये

धामद्वेन, ५च संस्कार, द्वारे, द्वार, अखाड़ा, सम्प्रदाय नाम निशेप, वेप, भूपा आदि सकेत बनाए, जो बिना शिष्य साधक के ये वस्तुएँ नही बताई जातीं।

इन बावन द्वारों में श्री महेवमुरारी जी द्वारा सस्थापित दारागज में 'तनु तुलसीदास का बड़ा स्थान' प्रयाग में है। यह स्थान बावन द्वारों से भी पहिले स्थापित किया जा चुका था। इससे पहिले प्रयाग में वैष्णवों का कोई स्थान नहीं था। सम्वत् १७२६ में श्री बालानन्द जी ने द्वारा अखाड़ों की स्थापना की थी।

वैष्णवों का बड़ा स्थान दारागंज—इस स्थान के सस्थापक श्री महेवमुरारी जी थे, जो वैष्णवों मे अब भी सब से बड़ा स्थान समझा जाता है। उस समय प्रयाग के दशनामी साधु वैष्णवो के विरुद्ध कार्य कर रहे थे। यह कार्य बहुत दिनों तक गुप्त रीति से चलता रहा। झूसी के गुफाओं में सिद्धनाथ, कपिलनाथ, अजबनाथ आदि कई सिद्ध औघड़ रहते थे। इन्होंने वैष्णवो का आना जाना, स्नानादि तक बन्द कर दिया था। श्री तनु तुलसीदास जी ने अपने शिष्य श्री देवमुरारी जी को इस कार्य के लिये प्रयाग भेजा। मुरारी जी शिष्य मण्डली के साथ प्रयाग आकर, गगा के पूर्वी तट झूसी में जहाँ औघड़ रहते थे, उन्ही के ठीक मार्ग मे फूस की कुटिया बनाकर रहने लगे। संघर्ष हुआ और अन्त में उन्होंने औघड़ों से प्रयाग खाली करा लिया। 'सन्त मजरी' नामक पुस्तक मे लिखा है कि मुरारी जी ने प्रयाग में निम्नांकित काम किये।

देव प्रगट धनु बाँधडा, औघड़ धाड़ा दीन।
तुलस्या गगा घालि गढ, अचल साधडा कीन॥

अर्थात् मुरारी जी प्रकट हुए, किले का बाँध धनुषाकार टेढा करा दिया, औघडो को (धाड़ा) हटा दिया, पातालपुरी के मन्दिर की देवमूर्तियाँ प्रकट की, तुलसी चन्दन गगा म (घालि) रख कर गढ (वर्त्तमान किला) अचढ और अचल कर दिया। किला बनने के पूर्व जब फाफामऊ से बाँध बँधने लगा तो मुरारी जी का यह वर्त्तमान स्थान बाँध के सीमा के मध्य मे पड़ गया। यवन कर्मचारियों के मनमाने प्रयत्न करने पर भी कुटिया न हटी। अकबर ने विवश होकर बाँध को नागवासुकि मे तीन सौ धनुष पूर्व बाँधने की आज्ञा दे दी। वर्त्तमान बाँध आज भी उतना ही टेढा बना हुआ है।

बाँध बंध जाने के पश्चात् किला का निर्माण आरम्भ हुआ। इसमें दस हजार मजदूर काम करते थे। सुना जाता है कि आठ महीने में किले का जितना भाग बनता था वह चार महीने वर्षा ऋतु में गंगा जमुना के बहाव से कट जाता था। इस प्रकार यह किला चार बार बना और टूट गया। इस विघ्न के निराकरण के लिये अकबर ने अपने एक दीवान आमेर नरेश को स्वामी जी की सेवा में भेजा। स्वामी जी ने सवा हाथ का तुलसी का डण्डा और एक पासा श्वेत चन्दन का देकर कहा जाओ "गंगा जमुना से कह दो कि जब तक हमारे वंश के श्री वैष्णव कण्ठ में कण्ठी एवं माथे में तिलक धारण करेंगे तब तक अपने गर्भ में तुम्हें किला को सुरक्षित रखना पड़ेगा। ऐसा कह कर तुलसी, तिलक संगम में छोड़ दो।" कहा जाता है कि ऐसा ही किया गया और किला निर्विघ्न बनकर तैयार होगया।

सुना जाता है कि पातालपुरी के मन्दिर की वर्त्तमान मूर्तियों के प्रकट कराने का श्रेय इन्हीं स्वामी जी को ही है। मुसलमान तो किले के अन्दर आ जा सकते थे किन्तु हिन्दुओं के लिये निषेध था। स्वामी जी ने किले के तात्कालिक मैनेजर श्री कमला प्रसाद श्रीवास्तव को जो उनके शिष्य भी थे बुलाकर कहा कि किले के आँगन में देव मूर्तियाँ गड़ी पड़ी हैं, इन्हें प्रगट करा दो तो हिन्दुओं को भी किले के भीतर आने जाने की सुविधा हो जाय। उक्त मुंशी जी ने अकबर से आज्ञा लेकर खुदवा कर मूर्तियों को आज के रूप में प्रतिष्ठित कराया।

वैष्णवों की दूसरी प्रसिद्ध गद्दी तहसील सिराथू के अन्तर्गत कस्बा कड़ा में बाबा मलूकदास का है।

सन्त मलूकदास—सन्त मलूकदास का जन्म वैशाख वदी ५ सं० १६३१ को इलाहाबाद जिले के कड़ा नामक कस्बा में हुआ था। इनके पूर्वज खत्री जाति के कक्कड़ थे और इनके प्यार का नाम 'मल्लू' था। मल्लू अपने बचपन से ही कोमल हृदय के व्यक्ति थे, और खेलते समय मार्ग या गली में काटा अथवा कंकड़ पा लेने पर उसे दूसरों को कष्ट से बचाने के उद्देश्य से कहीं दूसरी ओर डाल दिया करते थे। साधु सेवा की लगन इन्हें इतनी थी कि किसी अतिथि के घर पर आजाने पर उसके लिये सभी प्रकार से उद्यत हो जाते थे। इनके माता पिता ने इन्हें कुछ बड़े होने पर कम्बल बेचने का काम सौंपा और ये प्रत्येक आठवें दिन बाजार जाने लगे। एक दिन जब ये बचे हुए कम्बल वहाँ से वापस लाने लगे तो

भारी होने के कारण अपनी गट्ठर इन्होंने किसी अपरिचित मजदूर को दे दी, यह मजदूर इनसे कुछ अधिक तेज चलकर इनके घर पहिले ही पहुँच गया। किन्तु इनकी माता को उस पर सन्देह जान पड़ा, जिस कारण उन्होंने खिलाने के बहाने उसको एक कमरे में बन्द कर दिया। मलूक के आने पर जब कम्बल सहेजने के लिए कमरा खोला तो मजदूर को उसमें नहीं पाया, वह आश्चर्य में पड़ गई। इधर मलूक पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने मजदूर को स्वयं भगवान समझ लिया, तथा पड़ी हुई रोटी को भी उसका प्रसाद स्वरूप मानकर उसे ग्रहण करते हुये भगवद्दर्शनों की लालसा में अपने को निरन्तर तीन दिनों तक बन्द रखा। तीसरे दिन वह मलूकदास ही होकर निकले।

मलूकदास ने फिर श्रीमद्देवमुरारी दारागंज से दीक्षा ग्रहण की और चारों ओर देशाटन करते हुए सत्संग में लगे रहे। कुछ विद्वानों की राय है कि इनके गुरु विट्ठलदास थे। ये अपने अन्त समय तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते रहे और १०८ वर्ष की आयु पाकर चोला छोड़ा। इनकी एक कन्या थी। थोड़ी ही अवस्था में स्त्री और पुत्री दोनों का देहान्त होगया। शरीर छोड़ने के पहिले ही इन्होंने अपनी मृत्यु का ठीक-ठीक समय अपने चेलों को बता दिया था। मलूकदास के पन्थ की मुख्य गद्दियाँ कड़ा (प्रयाग) जयपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, कलापुर, नैपाल, और काबुल में हैं। जगन्नाथपुरी में भी इनका स्थान है, जहाँ इनके नाम का टुकड़ा अबतक मिलता है। इनकी शिक्षा के विषय में कुछ भी पता नहीं, किन्तु इनकी रचनाओं की संख्या ६ बतलाई जाती है जो सभी प्रकाशित नहीं हैं। इनके फुटकर बानियों का एक संग्रह 'मलूकदास की बानी' के नाम से प्रयागस्थ एक प्रेस द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इनकी रचनाओं में इनके अटल विश्वास, प्रगाढ भक्ति एवं विश्व प्रेम की झलक सर्वत्र लक्षित होती है। इनके प्रत्येक कथन के पीछे स्वानुभूति व निर्द्वन्द्वता की शक्ति काम करती हुई जान पड़ती है। ये स्वभावतः निर्भीक तथा निश्चिन्त समझ पड़ते हैं। इनकी भाषा में क्लिष्ट शब्दों का अभाव सा है। और इनकी वर्णन शैली में ओज एवं प्रसाद का अच्छा समावेश पाया जाता है। इनकी कविता के कुछ नमूने ये हैं —

दीनदयाल सुनी जब से, तब से हिय में कुछ ऐसी बसी है
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ मैं, तेरे हित की पट खैंच कसी है

तेरो ही एक भरोस मलूक को, तेरो समान न दूनो जसी है
ये हा मुरारि पुकारि कहीं, अब मेरी हँसी नहीं तेरी हँसी है

भील कब करी थी भलाई जिय आप जान, फील कब हुआ था मुरीद कहु किसका। गीध कब ज्ञान की किताब का किनारा छुआ, व्याध और बधिक निसाफ कहु तिसका। नाग कब लैके बन्दगी करी थीं बैठ, मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका। ऐसे बदराहों की बदी करी थी माफ जन मलूक अजाती पर ऐतो करो रिसका।

माला जपौं न कर जपौं, जिभ्या कहे न राम
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पायो बिसराम।

मथुरादास—इनका जन्म सम्वत् १६४० है। यह कायस्थ साधु थे और इलाहाबाद के निवासी थे। यह बाबा मलूकदास के शिष्य थे, और उन्हीं के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। इन्होंने मलूकदास की जीवनी 'मलूक परिचय' के नाम से लिखी थी। इनके अनुसार मलूकदास का जन्म सन् १५७४ ई० में और मृत्यु १६८२ ई० म हुआ था।

मध्य कालीन मुस्लिम संकट

उदासीनाचार्य गुरु श्रीचन्द्रजी

इस काल में श्रीचन्द्र जी ने अपने तप तेज और प्रभाव से हिन्दुओं की रक्षा की थी। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

उदासीन सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री श्रीचन्द्रजी महाराज का जन्म सं० १५५१ भाद्रपद शु० ९ को तलवडी नामक गाँव में, जो लाहौर से तीस कोस पश्चिम है, तथा आज कल जिसको नानकाना साहिब कहते हैं, क्षत्रिय कुलभूषण श्रीनानकदेवजी की धर्मपत्नी श्री सुलक्षणा देवी के गर्भ से हुआ था।

यथा समय आपका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो गया और आप विद्याध्ययन के लिये कश्मीर भेज दिये गये। वहाँ आपने अल्प काल में ही वेद वेदाङ्गों का विधिवत् अध्ययन कर लिया और जब आप ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करते हुए सकल शास्त्र निष्णात हो गये, तब सं० १५७५ की अषाढी पूर्णिमा को कश्मीर में ही आपने सद्गुरु स्वामी श्री अविनाशिराम जी से उदासीन सम्प्रदायानुसार दीक्षा ले ली। तत्पश्चात् कुछ दिनों तक गुरुदेव की ही सेवा में रहकर आप उनके उपदेशामृत का पान करते रहे। जब आपने धर्मोद्धार का समय देखा, तब भारत भ्रमण के लिये निकल पड़े। उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत के प्राय समस्त तीर्थों का आपने परिभ्रमण किया और अपने उपदेशों द्वारा धार्मिक जगत् मे एक नवीन जागृति फैला दी। फिर अन्य स्थानों में भी जा जाकर आपने कितने पाप परायण जीवों का उद्धार किया, इसकी कोई गणना नहीं की जा सकती।

कुछ समय के अनन्तर आप फिर कश्मीर की ओर चले गये और वहाँ जाकर आपने वेद भाष्यों की रचना की। तत्पश्चात् आपका पदार्पण पेशावर तथा काबुल की ओर हुआ। उधर के यत्किञ्चित् हिन्दुओं का जीवन, विधर्मियों के दबाव से संकटमय था अतः आपने कई स्थानों पर अपनी योग शक्ति व प्रभाव से हिंदुओं की रक्षा की। जहाँ-जहाँ आपने हिंदुओं की रक्षा की, वहाँ-वहाँ पर प्राय

आजकल महन्त परमदास जी, विशेश्वरदास जी, गोपालदास जी, सन्तशरण जी, सुम्मनदास जी, किशोरदास जी, आदि महन्त इस संस्था के प्रधान संचालक हैं।

उदासीन नया अखाड़ा—सं० १६०२ में उदासीन महात्माओं में आपस के वैमनस्य से कई महन्तों ने मिलकर प्रयागराज बाँध के महात्मा सूरदास जी की नेतृत्व में अलग जमात बाँधी और इसका नाम उदासीन नया अखाड़ा रख दिया गया। तब से पहिले वाले अखाड़े का नाम उदासीन पचायती बड़ा अखाड़ा पुकारा जाने लगा। नये अखाड़े का मुख्य स्थान हरिद्वार, प्रयाग, गया, काशी, कुरुक्षेत्र आदि में है। इसके नियम विधान, उद्देश्य सब बड़े अखाड़े के सदृश ही रखे गये हैं। इसमें केवल श्री सगत साहेब जी की पद्धति के ही साधु सम्मिलित हैं तथा बड़े में उदासीन मात्र।

यह अखाड़ा ६ जून सन् १६१३ ई० को सरकार में रजिस्टर्ड हुआ जिसमें ८ महन्तों ने दस्तखत किया। इसकी भी जमात पैदल समस्त भारतवर्ष में भ्रमण करती रहती है। अपनी एक ही पद्धति (गुरु सगत साहेब) में ४ महन्त बनाते हैं। हाथी, घोड़े, ऊँट सब वही बड़े अखाड़े का नमूना रखते हैं कोई भेद भाव नहीं है।

कुम्भ आदि अवसरों पर दोनों अखाड़ों की शाही निकलती है। उपरोक्त उदासीन भेष के दोनों अखाड़े समस्त उदासीन भेष के प्रतिनिधि हैं।

मुस्लिम कालीन संकट (उत्तरार्द्ध)

श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा

जिस प्रकार से मुस्लिम कालीन संकट के पूर्वार्द्ध मे श्री रामानन्दी वैष्णव सम्प्रदाय ने, और मध्यकाल में उदासीन साधुओं ने हिन्दू धर्म की रक्षा की थी, ठीक उसी प्रकार से इस संकट के अन्तिम काल में निर्मल सम्प्रदाय ने अपने निर्मल साधुओं का एक अखाड़ा संगठित करने की आवश्यकता अनुभव किया। इसी उद्देश्य से सम्वत् १८१६ में हरिद्वार के कुम्भ पर सन्त सरोवर स्थान पर निर्मल साधुओं की एक महती सभा इस प्रस्ताव पर विचार करने के लिये उपस्थित हुई। सम्वत् १८६४ में हरिद्वार का कुम्भ बड़े समारोह के साथ कनखल स्थित डेरा बाबा दरगाह सिंह में मनाया गया। इस अवसर पर पंजाब केसरी महाराजा रजीतसिंह जी भी आये थे। इस समारोह से प्रभावित होकर उन्होंने निर्मल साधुओं के संगठनार्थ पर्याप्त धन दिया। सम्वत् १६१२ मे हरिद्वार में फिर कुम्भ का अवसर आया। इस अवसर पर पटियाला नरेश महाराज नरेन्द्र सिंह ने ५०००) दान दिया, और आगामी कुरुक्षेत्र के सूर्यग्रहण पर बाबा महताब सिंह को आमन्त्रित किया। इसी कुम्भ के अवसर पर बाबा महताब सिंह के नेतृत्व में निर्मल अखाड़ा स्थापित करने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। सूर्यग्रहण के मेले में पटियाला नरेश ने ५०००) का दान देकर बाबा जी को अपनी राजधानी मे पधारने की प्रार्थना की। फल्गु के मेले के अवसर पर पटियाला तथा सिंगरोर नरेशों ने १० हजार रुपये का दान दिया। तत्पश्चात् पटियाला नरेश सकुटुम्ब बाबा महताब सिंह के शिष्य हो गये और गुरु मत के प्रचारार्थ निर्मल साधुओं को संगठित करने की प्रार्थना गुरु जी से की। इस उद्देश्य से पटियाला नरेश ने निर्मल सम्प्रदाय के प्राय: सभी महात्माओं और संगरूर, नाभा नरेशों के प्रधान धर्मचारियों को चनारथलिया वाली हवेली (धर्मध्वजा) में आमन्त्रित कर सम्वत् १६१८ भाद्र सुदी द्वादशी को निर्मल अखाड़ा की स्थापना किया। पटियाला नरेश ने अखाड़े को बीस बरस की आमदनी सहित दो गाँव, मकान सरिस्ते

नक़द, जिन्स, प्रत्येक मेले के समिति, विविध प्रकार के शाही सामान दिया। कपूर्थला नरेश ने २०००) प्रति वर्ष देने का वादा किया। इनके अतिरिक्त उपस्थित सज्जनों ने पर्याप्त धन दिया और इस प्रकार अखाड़ा स्थापित हो गया। पटियाला नरेश के प्रस्ताव द्वारा बाबा महताब सिंह अखाड़े के सर्व प्रथम श्री महन्त चुने गये। इस समय इस अखाड़ा का प्रधान कार्यालय कनखल हरिद्वार में है, और श्री महन्त सुचासिंह जी इस संगठन के श्री महन्त हैं जिन्होंने इन अखाड़ों का समोन्नति को पहुँचाया। इस संस्था की शाखायें काशी, प्रयाग, त्र्यम्बक, छुछरौली, उज्जैन, ऋषिकेश, कुरुक्षेत्र, मौड़ ग्राम में हैं। इस अखाड़े के मुख्य उद्देश्य तथा नियम, नियमानुकूल रजिस्टर्ड हैं।

बांध के हनुमान जी—प्रयाग में १६ वीं शताब्दी में एक सिद्ध महात्मा रहते थे जिन्हें सब लोग बाघम्बरी बाबा कहते थे। इनका यह नाम पड़ने का कारण यह था कि उनके साथ एक बाघ हमेशा ही रहता था और सदा बाघम्बर ही ओढ़ते विख्यात थे। उनके नाम से दारागंज में आज भी बाघम्बरी गद्दी है। किले के पूर्वोत्तर सिरे पर जहाँ बाँध जाकर मिलता है, नीचे जो 'बधवा' के प्रसिद्ध हनुमान जी हैं, उनकी पूजा और अर्चना का प्रबन्ध इसी गद्दी की ओर से होता चला आ रहा है।

बाघम्बरी बाबा शैव मतावलम्बी सिद्ध पुरुष थे और किले के उत्तरी पूर्वी कोने में स्थित शाहबुर्ज नामक गुमटी में रहा करते थे। जब औरंगजेब बादशाह हुआ तब उसने बाघंबरी बाबा को शाहबुर्ज से जबर्दस्ती निकाल दिया। बाबाजी शाहबुर्ज से उठकर उस बाग में चले गये जहाँ आज कल बाघंबरी गद्दी का अखाड़ा है। बाबाजी का शाहबुर्ज से हटना था कि किले में उत्पात होने लगे और ऐसे उत्पात होने लगे कि जिनका प्रतिकार मानवीय शक्ति के बाहर प्रतीत हुआ। मुल्लाओं ने बादशाह से कहा कि जब तक बाघंबरी बाबा सन्तुष्ट नहीं होंगे, उपद्रव शान्त नहीं हो सकता। अन्त में औरंगजेब बाघंबरी बाबा की सेवा में उपस्थित हुआ। बाबा उस समय ज्वर से पीड़ित थे। किन्तु बादशाह से मिलना भी आवश्यक ही था, उन्होंने ज्वर को बाघंबर पर उतार दिया और स्वस्थ होकर औरंगजेब से बातचीत किया। बादशाह ने देखा कि निर्जीव बाघंबर में थरथराहट और कम्पन है। बादशाह के पूछने पर बाबा जी ने बताया कि आपके आने से पहिले मैं ज्वर से पीड़ित था, जिसे इस पर उतार कर आपसे

भेंट कर रहा हूँ। बादशाह को बहुत ही आश्चर्य हुआ, किन्तु उसने कहा कि जब आप में दुशाल उतार कर बाघवर पर चढ़ा देने की शक्ति है तो आप सदा के लिए क्यों नहा इसे उतार देते। बाबा जी ने हँसकर कहा कि कर्म का भोग भोगना ही है। इसे उतार कर क्या में दूसरा जन्म इस भोग के लिये लूँ। अभी शक्ति है अवश्यम्भावी दुख इसी जन्म में भोग लेना चाहिये। इसको हटाने के लिए कोशिश नहीं करनी चाहिए। बादशाह बहुत ही प्रभावित हुआ और उसी समय तेरह गाँव माफी लगा दिये जिनका मुआफी नामा अब तक अखाड़े में मौजूद है। बादशाह के हस्ताक्षर और मुहर इस पर हैं। हठ करने पर भी बाबा जी ने शाहबुर्ज पर रहना स्वीकार नहीं किया और बंधवा के महावीर के स्थान पर रहने लगे।

किले के नीचे जिन हनुमान जी के दिव्य दर्शन होते हैं, वे पड़े हुये हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि वैष्णवा के बड़े स्थान दारागज के महन्त श्री मोहनदास जी के शिष्य श्री महावीर दास श्री हनुमान जी का अनुष्ठान करते थे। अनुष्ठान करते हुए उन्हें १२ वष बीत गये। चित्त कुछ विक्षिप्त हो गया और मौन हो गये। वे बाघ पर मैदान म एक भारी पीपल के वृक्ष के नीचे झोपड़ी में पड़े रहते थे। ये महात्मा जहाँ रहते थे, उस वृक्ष के नीचे आज भी एक पक्का मन्दिर बना हुआ है। शनिवार और मगल के दिन भक्तों की भीड़ अधिक लगती थी। गगा यमुना का सगम किले के नीचे ही था। कानपुर के एक भक्त सेठ ने काशी में हनुमान जी की यह मूर्ति बनवाई था। मूर्ति पुष्य नक्षत्र में ही गढ़ी जाती थी। इस तरह इसे तैयार होने म १२ वर्ष लग गये। इसके पश्चात् नौका द्वारा उसे गगा ही गगा वह कानपुर लिए जा रहा था। जब वह नौका प्रयाग आयी तो भक्त की इच्छा हनुमान जी को त्रिवेणी स्नान कराने की हुई। मूर्ति भारी होने के कारण स्नान नहा करा सका, तब श्री महावीरदास जी ने आवाज दी कि कानपुर जाकर क्या करोगे? प्रयाग ही म रह जाइये। यहाँ सदा त्रिवेणी स्नान होता रहेगा। कहते हैं कि उक्त सेठ को रात में स्वप्न हुआ कि "जहाँ हम हैं, वहीं रहेंगे।' उधर भक्त ने प्रातःकाल जब नौका चलाने का प्रयत्न किया तब नौका नहा चली। उस भक्त ने तीन दिन अनेक यत्न किये, लोहे की साँकल द्वारा हाथियों से भी हनुमान जी की मूर्ति खिंचाई गई किन्तु हनुमान जी की नौका तिल भर भी नहीं खिसकी। तब महावीर दास जी ने कहा कि महाराज

अब इन हनुमान जी को यहीं रहने दो। वह भक्त आठ दिन बिना अन्न जल के रह गया। तब हनुमान जी ने उसे स्वप्न दिया कि हम यहीं रहेंगे। तब से ये हनुमान जी यहीं पर रह गए। एक बार किले के अंग्रेजी अफसरों ने हुक्म दिया कि इस मूर्ति को हटाओ। ज्योंही उठाने का प्रयत्न किया गया त्योंही वे और भी नीचे धस गये। तीन-चार बार उठाने का प्रयत्न किया तो और भी नीचे चले गये। किसी के भी उठाये न उठे। हार मान कर सरकार ने छोड़ दिया। प्रथम हनुमान जी के चारों ओर चौड़ा तालाब ऐसा गहरा गड्ढा था। प्रयाग के लाला बंशीधर भार्गव कोठीवाल की इच्छा पूरी होने पर उन्होंने पक्का कुंड बनवा दिया और सीढ़ियाँ लगवा दीं। यह कहा जाता है कि उन्होंने १२५ मन लड्डुओं का भोग लगवाया था। लड्डुओं से कुंड भर दिया था। इस समय यह मूर्ति जमीन से १२ फुट नीचे है। इनकी पूजा उक्त महात्मा जी का एक ब्रह्मचारी शिष्य करता था। कार्यवश श्री बाघम्बरी बाबा को पूजा सौंप दी। तब से यह स्थान उक्त स्थान के प्रबन्ध में है।

विविध धार्मिक संस्थाएँ

आर्य समाज की संस्थाएँ—अन्य धार्मिक संस्थाओं में चौक का आर्य्य समाज मन्दिर सबसे पुराना है जो सन १८८० ई० में स्थापित हुआ था। इसके आधीन एक कन्या पाठशाला है जिसकी स्थापना सन् १९०४ ई० में हुई। दूसरा समाज कटरा और तीसरा रानीमंडी में है। इसके अन्तर्गत भी एक आदर्श कन्या पाठशाला है।

यहाँ एक थियासोफिकल सोसाइटी है।

ईसाइयों की संस्थाएँ—ईसाइयों के कई मिशन हैं। अमेरिकन प्रेस्बिटेरियन मिशन, जिसके अन्तर्गत, ईविंग क्रिश्चियन कालेज जमुना मिशन हाई स्कूल, मेरी वानमेकर गर्ल्स हाई स्कूल, काल्विन फ्री स्कूल, एग्रीकलचरल इन्स्टीट्यूट नैनी, वाई. एम. सी. ए, खैराती दवाखाना, कोढ़ी खाना, हालैंडहाल नामक होस्टल है।

इसके अतिरिक्त चर्च मिशनरी सोसाइटी, मेथोडिस्ट इपिस्कोपल मिशन, चर्च आफ इंगलैंड, वीमन्स यूनियन मिशन, मेट्रोपालिटन चर्च एसोसियशन, वनिंङ्ग बुश मिशन, सालवेशन आर्मी, चर्च आफ रोम आदि मुख्य ईसाइयों की संस्थाएँ हैं।

मुसलमानों के दायरे—इलाहाबाद में 'चिश्तिया सम्प्रदाय' के सूफियों के कई दायरे हैं। ये एक प्रकार के मठ हैं, जो मुसलमानी राज्य काल के विभिन्न समयों में स्थापित हुए थे। इनमें से कुछ दायरों में उसी समय की कुछ माफियाँ भी लगी हुई हैं। और कुछ भेंट चढ़ावा में आता है। इनके महन्त सज्जादा नशीन, अथवा पीर या गुरु कहलाते हैं। जो लोगों को दीक्षा देकर मुरीद अथवा चेला करते हैं। चूंकि प्रयाग सदा से हिन्दुओं का प्रसिद्ध स्थान रहा है, और प्रत्येक ऐतिहासिक काल में धार्मिक संसार में एक विशिष्ट स्थान रखता चला आ रहा है, इसीलिए मुसलमानी मत का प्रचार और गैर मुस्लिम धर्मवालों को मुसलमान धर्म में दीक्षित करने का पका पकाया, जमा जमाया हिन्दुओं का समूह अनायास ही मिल जाने की आशा से मुस्लिम धर्म प्रचारकों का यहाँ अड्डा बना रहता था। यह लोग जहाँ रहते थे वहीं इनके चेला चापड़ भी इकट्ठे हो जाते थे। इस प्रकार से यहाँ बारह दायरे बन गये जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

(१) दायरा शाह मुनव्वर—मुहल्ला हिम्मत गञ्ज, यह कादरिया परम्परा के एक मुस्लिम मौलाना थे। आपकी कब्र अब तक इसी दायरा में मौजूद है।

(२) दायरा शाह जानमुहम्मद—यह दायरा बदीयाबाद में था। इस वक्त न तो दायरा के मालिक का कुछ हाल मालूम है और न इस मुहल्ले का ही कोई अस्तित्व शेष रह गया है।

(३) दायरा शाह उस्मान मसीहा—यह दायरा मुहल्ला बावली अमीर खुसरो में था। इसका भी अब कुछ पता नहीं है।

(४) दायरा शाहजहाँ—मुहल्ला मीरापुर में था, जहाँ अब भी इस दायरे के शाहों के कब्र मौजूद हैं। किन्तु अब यह दायरा नहीं रह गया है।

(५) मुहल्ला दायरा शाह मुहम्मद अजमल—मुहल्ला कोइलहन टोला में है। यह दायरा सदा से विद्या प्रदान करने का केन्द्र रहा है। शाह मुहम्मद अजमल कादरिया परम्परा से सम्बन्धित थे, इनके वंश वाले आज भी मौजूद हैं जिनमें मौलाना मुहम्मद शाहिद फाखरी एम० एल० ए० हैं। जो आज भी दायरे के क्रम को यथावत कायम किये हुए हैं।

(६) दायरा शाह गुलामअली—मुहल्ला कोइलहन टोला में स्थित है। यह नक्शबन्दिया मत के सूफी थे। उनके बाद यह दायरा मुल्ला मुहम्मदी शाह

साहेब' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आप सिद्धान्त से निजामिया मत के सूफी थे। जिनका मजार इसी दायरे में अब भी है। इस गद्दी पर आज कल शाह अब्दुल रऊफ साहब हैं।

(७) दायरा शाह तैमूर—मुहल्ला अतरसुइया में था जिसका अब कोई पता निशान शेष नहीं रहा।

(८) दायरा शाह अब्दुल रहमान—मुहल्ला शाहगंज में है। यह दायरा बाद में शाह मुहम्मद अहमद साहेब के नाम से प्रसिद्ध हुआ और आजकल मौलाना गुलाम इमाम शहीद के नाम से स्मरण किया जाता है, जो कि बहुत उच्च कोटि के कवि थे। इनके वंशवाले अब भी मौजूद हैं।

(९) दायरा शाह अब्दुल जलील--मुहल्ला चक पर है। आपका मजार अब तक इस स्थान पर मौजूद है। आप की औलाद अब तक मौजूद है जो सिद्धान्त से साबरिया मत के हैं।

(१०) दायरा शाह जैनुद्दीन साहेब—मुहल्ला खुशरोबाग में था, जहाँ आपका मजार अब तक मौजूद है। आजकल भी इस स्थान पर रजब महीने की पच्चीसवीं तारीख को आपका जन्मोत्सव मनाया जाता है।

(११) दायरा शेख मुहीबुल्लाह—मुहल्ला कीटगंज में है। मौलाना के पूर्वज सब से पहिले सदरपुर से आकर कीटगंज ही में रहने लगे थे। इनके वंशज कीटगंज छोड़कर आजकल बहादुरगंज में रहते हैं।

(१२) दायरा शाह हुज्जतुल्लाह—यह वह जगह है जहाँ शेख मुहीबुल्लाह इलाहाबादी के वंशज आकर ठहरे। बाद में यह भाग दायरा हुज्जतउल्लाह का नाम प्राप्त कर लिया। शेख साहेब की औलाद अब तक मौजूद है। इस वंश में शाह मुहम्मद हुसेन साहेब बड़े करामाती सन्त हो गये हैं। कहा जाता है कि अजमेर शरीफ में कव्वाली के एक कविता पर वह समाधिस्थ हो गये और अन्त में वहीं मर गये। शेर इस प्रकार है।

गुफ्त कुद्दूसे फकीरे दर फना व दर बका
खुद बखुद आजाद बूदी खुद गिरफ्तार आमदी

अर्थात्—कुद्दूस फकीर का कहना है कि ऐ मनुष्य तू तो आवागमन के

चक्कर से बिल्कुल आज़ाद था, यह तो तू खुद है जिसने अपने को आवागमन, तथा मरने-जीने के चक्कर में गिरफ़्तार कर लिया।

इनके लड़के मौलाना विलायत हुसैन बहुत ही प्रसिद्ध हो गये हैं। अब उनके दो लड़के हैं जिनमें मौलाना मुहम्मद फारुकी फाजिल मिश्री इलाहाबादी बहुत ही मशहूर व्यक्ति हैं। यह आजकल इण्डियन पार्लियामेन्ट के मेम्बर हैं और सिद्धान्त से कांग्रेसी हैं।

प्रयाग की राजनैतिक देन

प्रथम राज्य क्रान्ति—भारत इतिहास के उदयकाल से ही एक धर्म प्रधान देश रहा है, और इसके निवासी धार्मिक। इसके जीवन के अंग प्रत्यंग सभी धार्मिक भावनाओं और परम्पराओं से ओत प्रोत थे। इस देश में आज की भाषा में सोची समझी जाने वाली कूटनीति प्रधान राजनीति का प्रसार नहीं था। यहाँ राजनीति राक्षसों की, और धर्मनीति देवताओं की नीति समझी जाती थी। जब कभी भी इस देश में राजनीति की प्रधानता हुई, तब तब यहाँ के मनस्वी नेतागण इस नीति को राक्षसी नीति घोषित करके प्राण प्रण से इसका विरोध किया। हमारे पिछले इतिहास के साक्ष्य से प्रमाणित है कि इस प्रकार के राजनीति का अनुसरण करने वाले हिरण्यकश्यप, रावण, कंस, दुर्योधन तथा अंग्रेज आदि चक्रवर्ती राजाओं का विरोध धर्मनीति से ही किया गया। इस धर्ममय देश का वातावरण जब कभी भी आक्रान्त हुआ, देश में क्रान्ति हुई, युद्ध हुआ, तब तब इन सभी उथल पुथल करने वाली प्रगतियों में धार्मिक भावनाओं से ही प्रेरणा प्राप्त हुई।

हाँ भारत में विदेशियों के प्रवेश के साथ साथ यहाँ कूटनीति का भी प्रवेश हुआ। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व कूटनीति का प्रयोग यहाँ के शासकों, उनके आमात्यों तथा मन्त्रियों के प्रशासनीय गति प्रगति के इर्द गिर्द ही सीमित थी। जनसाधारण में इसका व्यापक प्रचार नहीं था। अंग्रेजों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये इस देश ने दो प्रबल प्रयत्न किये—सन् १८५७ की जन क्रान्ति तथा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस आन्दोलन।

प्रयाग में प्रथम राज्य क्रान्ति—बलवा के समय में इलाहाबाद के जिले में अंग्रेजी सेना बिलकुल नहीं थी। केवल एक हिन्दोस्तानी फौज न० ६ कर्नल सिमसन के नायकत्व में थी। इस पलटन के अतिरिक्त कुछ हिन्दोस्तानी तोपची भी थे। प्रयाग स्थित अधिकारियों को जब दूसरे शहरों में बलवा होने का समाचार मालूम हुआ तो उन्होंने सतर्कता के लिये तोपखाने

के ६० अंग्रेजी सैनिका और २०० सिक्खों को बाहर से बुलाकर यहाँ के किले में ठहरा दिया।

गाय और सुअर की चरबी से बने हुये कारतूस की खबर इलाहाबाद के लोगो में फैली, उसी समय से शहर में खलबली मच गई। रोज रोज हर तरह के अफवाहें उड़ने लगीं। खाने पीने की चीजों का दर भी ऊँचा हो गया। बलवाइयों ने अगुआगण अपने पिछलगुओं को उकसाने में सलग्न थे। एक दिन ऐसा हुआ कि कुछ नावें अनाज से लदी हुई जमुना में जारही थीं। किनारे पर उन्होंने लगर डाल दिया। कलेक्टर ने नाव वालों से कहा कि नावों का सब माल नगर के व्यापारियों के हाथ बेंच दें। बस यही घटना आन्दोलन का तत्कालिक कारण हो गया। सारा बाजार बन्द हो गया, अब धीरे धीरे यह शक होने लगा कि यहाँ भी जल्दी ही बलवा मचना चाहता है। यहाँ के लड़ाकुओं को सिपाहियो के उपद्रव का हाल मालूम न था, क्योंकि यहाँ के अधिकारियों ने इस खबर को छिपा रखने का समुचित प्रबन्ध कर रखा था। किन्तु एक दिन पलटन न० ६ के सिपाहियों ने दो मेवातियों को जो लाइन में सन्देह के कारण पकड़ कर रखे गये थे किसी कारणवश छोड़ दिये गये। कहा जाता है कि उन्हीं दो मेवातियों ने शहरवालों को बलवा करने के लिये भड़काया।

प्रतापगढ़ के कुछ सवार यहाँ के अधिकारियों की सहायता के लिये सर हेनरी लारेंस ने भेजे। ये लोग जेल तथा खजाना की रक्षा के लिये तैनात किये गये। उस समय यहाँ के खजाना में लगभग तीस लाख रुपये थे। इस रकम को किले में भेजने के लिये कुछ गाड़ियाँ मँगवाई गई। किन्तु अधिकारियों को उसके लुट जाने का काफी भय था। इधर हिन्दुस्तानी सैनिकों की सरक्षता मे रुपया भेजना उचित न समझा गया। इधर यह भी सन्देह था कि इतना रुपया देखकर किले के सिक्ख सिपाहियों की नीयत न डोल जाय। सर हेनरी लारेन्स का इतने म एक तार आया कि सिक्ख सिपाहियों का भी विश्वास न किया जाय, केवल गोरों की सेना से किले की रक्षा की जाय। इधर तीस लाख रुपया जहाँ का तहाँ रखा रह गया, कहीं नहीं भेजा गया।

इधर कानपुर से अंग्रेजी सेनानायक का तार आया कि सब अंग्रेज किले में रक्खे जायें। पलटन न० ६ के सिपाहियों के सिवाय वे सब किले में चले आये। कुछ अंग्रेज दूकानदार किले के बाहर ही रह गये। अंग्रेजी अधिकारियों को

पहिले पलटन नं० ६ के सिपाहियों पर बहुत विश्वास था, लेकिन ४ जून १८५७ ई० को जब यह खबर इलाहाबाद में पहुँची कि बनारस के सिक्ख रेजीमेंट नं०११ के कुछ सिपाही बिगड़ कर इधर आ रहे हैं तो यहाँ की पलटन की हालत भी डाँवाडोल हो गई। ६ जून को सिपाहियों के परेड में गवर्नर जनरल की एक चिट्ठी पढ़कर सुनाई गई, जिसमें इनके चालचलन की प्रशंसा की गई थी। उसको सुनकर सिपाहियों में प्रसन्नता की लहर सी दौड़ गई। उसी दिन शाम को इस पलटन की एक कम्पनी लेफ्टेनेन्ट हिक्स और हारवर्ड के नायकत्व में, दो तोपों के साथ दारागंज में नाव के पुल की रक्षा के लिये भेजी गई। क्योंकि बनारस के बलवाइयों के आने का समाचार यहाँ पहले ही पहुँच चुका था।

कुछ रात बीते जैसे ही तोप की आवाज हुई, इन सिपाहियों ने आतशबाजी का बान छोड़ा। उसके जवाब में उसी समय वैसा ही बान छावनी से छूटा। बस उसी वक्त से बलवा शुरू हो गया। दारागंज से दोनों तोपें लेकर वे लोग छावनी की ओर चल पड़े। बलवाइयों ने दो अंग्रेजी सिपाहियों के सहित लेफ्टेनेन्ट हिक्स को पकड़ लिया। किन्तु वे लोग किसी तरह भाग कर किले में पहुँच गये। लेफ्टेनेन्ट हारवर्ड घोड़े पर सवार अलोपीबाग पहुँचे, जहाँ लेफ्टेनेन्ट अपनी सेना लिये पड़े थे। उनके सिपाही भी बिगड़ गये और अन्त में वे मारे गये। हावर्ड किसी तरह किले में पहुँच गये। यहाँ इस खबर के पाते ही सिक्खों को एक अलग बैरिक में बन्द कर दिया गया। उसके बाद डरा धमका कर नं० ६ पलटन के सिपाहियों से हथियार रखवा लिये गये। और किले से बाहर निकाल दिये गये।

उसी रात को चाथम लाइन की छावनी में कुछ अंग्रेज अफसर खाने को बैठे थे कि पलटन में बिगुल बजा। बिगुल सुनकर ये लोग दौड़ पड़े परन्तु वहाँ पहुँचने पर मारे गये। इनमें केवल तीन अंग्रेज किसी तरह भाग कर किले में पहुँच गये। इसके बाद कई अंग्रेज अफसर मारे गये। बलवाइयों ने खजाना लूट लिया और गंगा पार करके फाफामऊ पहुँचे। उस समय उसके पश्चिम शाहाबपुर में एक छोटा सा किला था। सग्राम सिंह वहाँ का जमीन्दार था। उसने बलवाइयों से खजाने का रुपया लेकर रसीद दे दी। और उन लोगों को अपने यहाँ नौकर रख लिया।

इधर शहर में दौलतपुर और समदाबाद के मेवातियों के अगुआई में बलवाइयों

ने उपद्रव शुरू कर दिया। पहले उन्होंने जेल का फाटक तोड़कर लगभग तीन हजार कैदियों को निकाल कर भगा दिया। इन लोगों ने सिविल स्टेशन, छावनी और शहर को खूब लूटा और फूँका, अँग्रेजों के साथ साथ बंगालियों और दूसरे धनीमानी रईसों को भी लूट लिया। दूसरे दिन पुलिस भी बलवाइयों के साथ हो गई। अब क्या था कोतवाली पर विद्रोहियों का हरा झंडा लहराने लगा। परगना चायल के अन्तर्गत मेंहगाँव के मौलवी लियाकत अली ने बलवाइयों का नेतृत्व किया। वह बलवाइयों को लेकर खुसरो बाग पहुंचे और अपने को दिल्ली के बादशाह का सूबेदार घोषित किया। निष्कर्ष जिधर जिसकी सींग समाई उसी ओर वह नेता बन कर मारकाट और लूटपाट किया। कुछ दिनों तक यही हालत रही।

ऐसी ही अवस्था में कर्नल नील बनारस से कुछ गोरी सेना लेकर आये और आते ही उन्होंने दारागंज पर कब्जा कर लिया।

१३ जून को भूँसी में बलवा शुरू हो गया, जिसके दमन के लिए तात्कालिक ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट मिस्टर बिलक कुछ सिक्ख और गोरे सिपाही लेकर वहाँ गये। कीटगंज को भी उसी दिन सिक्ख और वालंटियरों ने अपने अधिकार में कर लिया। दूसरे दिन कीटगंज और मुट्ठीगंज अंगरेजों के काबू में आ गये। और मौलवी लियाकत अली तोप और बहुत सामान छोड़कर भाग गये।

१७ जून को कलेक्टर मि० कोर्ट ने कोतवाली ले ली और १८ जून को दरियाबाद, रसूलपुर, सदियापुर और सिविल स्टेशन पर भी अधिकार हो गया। शहर तो इस प्रकार अंग्रेजों के कब्जे में आ गया लेकिन जिले के देहातों में अब भी आग दहक रही थी।

गङ्गापार में सबसे अधिक उपद्रव हुआ। वहाँ पर विद्रोहियों के कई केन्द्र थे। बांदा के कलेक्टर मि० मेन यहाँ के उपद्रव शान्त करने के लिये तैनात किये गये। वह सिक्खों की पैदल सेना और कुछ सवारों के साथ इस काम में पिल पडे। पहिले वह हनुमानगंज गये, वहाँ से फिर फूलपुर गये। विद्रोहियों से वहाँ उन्हें मोर्चा लेना पड़ा। जनवरी सन् १८५८ ई० में ब्रिगेडियर केम्बल ने मनसइता नदी पर सलोन के नायब-नाजिम को पराजित किया। इस पर उनके साथियों ने आकर सोरांव पर अधिकार कर लिया और फाफामऊ तक पहुँच गये। इधर जनरल फ्रैंक जौनपुर से कुछ सेना लेकर आ गये और नसरतपुर में

इन लोगों पर हमला कर दिया और उन्हें उत्तर की ओर भगा दिया। इतने में मि० नेन मोरांर पहुँचे और उस पर उन्होंने अधिकार कर लिया। द्वावा में ग्रैन्डट्रंक रोड के किनारे के जमीन्दार और परगना अथरवन में डिहागल के एक जमीन्दार ने खूब बलवा किया। उस समय मुँसिफी मभनपुर में थी। श्री प्यारे मोहन बनर्जी यहाँ के मुंसिफ थे। उन्होंने बलवाइयों का भरपूर सामना किया और परास्त किया। इस वजह से उन को लोग 'फाइटिंग मुंसिफ' अर्थात् लड़ाकू मुंसिफ कहा करते थे। जमुनापार में भी इसी प्रकार छुटपुट बलवा जारी था, किन्तु अन्त में देहात भी शान्त हो गया।

बलवाइयों पर काबू पाते ही अंग्रेजों ने उनको दण्ड भी खूब दिया। नगर और देहातों में खूब धर पकड़ हुई। बलवाइयों को फाँसी की सजाएँ दी गईं और उनकी जायदादें छीन ली गईं। शहर के चौक में वह नीम का पेड़ अब भी मौजूद है जिस पर हजारों की तादाद में लोग फाँसी पर चढ़ाये गये थे। गाँव और शहर के भले आदमियों के लिये यह समय प्रलय का समय था। लोग कितने बेगुनाह, फाँसी पर चढ़ाये गये और कितने मौका पाकर घरबार छोड़ बाल बच्चों को लेकर इधर-उधर तितर बितर हो गये। और कुछ दिन रात भयभीत होकर खेतों, कछारों और नालों में छिपे रहते थे। इसके बाद विद्रोहियों के मुकदमें सुनने के लिए एक कमीशन बैठा, और अपराधियों को उचित सजायें दी गईं और जायदाद तो बहुतों की छीन ली गई।

ऐसे समय में भी ऐसे सरकारी कर्मचारियों, रईसों की कमी यहाँ न थी जो अपना जान माल जोखिम में डालकर अंग्रेजों की सहायता न की हो। इनमें बहुतों ने अंग्रेजों के बाल बच्चों और स्त्रियों को अपने घर में छिपाकर उनकी रक्षा किया। अंग्रेजी पलटनों और रिसालों को खाना पीना और रसद पहुँचाया और जगह जगह देहात के तहसीलों के खजानों की रक्षा किया। पीछे अंग्रेजों ने भी उनकी इन सेवाओं का उचित इनाम दिया। उस समय धोकरी के माल शिवलाल सिंह, फूलपूर के राय मानिक चन्द, दारागंज के राय राधारमण बड़ी कोठी वाले, लाला बाबूलाल कलवार शाहगंज, खत्रियों में लाला मनोहरदास, शाहपुर के ठाकुर नाथनसिंह, सराय अकिल के ठाकुर जालिम सिंह, बीरपुर के ठाकुर अयोध्या बख्श सिंह, उदहिन के पांडे शिवसहाय, आनापुर के बाबू शिवशंकर सिंह, मऊआइमा के शेख नसीरुद्दीन, तारडीह के ठाकुर

आसापाल सिह आदि को इलाका, जिमीन्दारी और रायसाहेबी की पदवियाँ भी अंग्रेजो से खैरख्वाही में मिली। इनके अतिरिक्त शङ्करगढ के तात्कालिक लाल साहेब वनस्पति सिंह को ५०००) और डैया के लाल तेजबल सिह को ३०००) सालाना मालगुजारी के इलाका और आजन्म 'राजा' की पदवी मिली।

सवा साल के इस प्रकार के बलवा के बाद इलाहाबाद शान्त हुआ और इस प्रकार यहाँ देश मे ईस्ट इन्डिया कम्पनी के राज्याधिकार का भी अन्त हो गया। सन् १८५८ ई० की पहिली नवम्बर को किले के पश्चिम मिन्टो पार्क में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग ने महारानी विक्टोरिया का प्रसिद्ध घोषणा पत्र पढ कर सुनाया। इस प्रकार इलाहाबाद का सीधा सम्बन्ध अगरेजी नरेशो के साथ स्थापित हो गया। लार्ड केनिंग के नाम एक बड़ी सड़क केनिग रोड बनवायी गयी और सिविल लाइन का नाम केनिग टाउन रखा गया जिसे आजकल केनिंगटन कहते हैं।

राजनैतिक चेतना की पृष्ठभूमि—राष्ट्रीय चेतना तथा किसी भी सस्था के जन्म के पीछे एक पृष्ठभूमि रहा करती है, उसके जन्म के पूर्व एक ऐसा वातावरण उत्पन्न हो जाता है जो उस सस्था के लिये क्षेत्र तैयार कर देता है। हमारी राष्ट्रीय महासभा जैसी देश को स्वतन्त्र कराने वाली सस्था का जन्म भी यो ही अचानक नहीं हो गया था। इसके लिये भारत के राष्ट्रीय वातावरण में एक प्रकार की उष्णता पूर्व ही पैदा हो रही थी और बढ रही थी। कांग्रेस का जन्म उसी का परिणाम था।

सन् सत्तावन का सशस्त्र विद्रोह अंग्रेजो के शस्त्र से दबा अवश्य दिया गया था, किन्तु भारतीयो के हृदय मे विद्रोह के अगार जीवित ही रहे। इतना जरूर था कि वह ब्रिटिश शक्ति के राख के नीचे छिपा था, और ठण्डा सा दीख पड़ता था। अनुकूल हवा पाकर सुलगने और फैलने की ताकत उसमे ज्यो की त्यो थी। हाँ इतना था कि लोगो मे अखिल भारतीय पैमाने पर किसी बात को सोचने का कोई डौल न बैठा सका था, किन्तु तब भी लोगो के भीतर एक बुलबुलाहट फैल रही थी। फलस्वरूप लोग समय समय पर यत्र तत्र सार्वजनिक सस्थाओं की प्रतिष्ठा कर रहे थे। धार्मिक क्षेत्र मे राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, एव स्वामी विवेकानन्द आदि

कतिपय नेताओं का नाम इस सम्बन्ध में श्रद्धा के साथ गिनाया जाता है। राजनैतिक क्षेत्र में बंगाल में श्री रामगोपाल घोष और डाक्टर राजेन्द्र लाल के नेतृत्व में ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन नामक संस्था काम कर रही थी। बंगाल में राजनीति में रुचि रखने वाले लोगों को मिलने जुलने तथा सोचने का श्रीगणेश इसी संस्था से होता है। बम्बई में दादाभाई नौरोजी, जगन्नाथ शंकर सेट द्वारा स्थापित बम्बई एसोसियेशन ने राजनैतिक कार्यों का प्रारम्भ किया था। इस संस्था का नाम पीछे चलकर ईस्ट इण्डिया एसोसियेशन हो गया था। सर मंगलदास नाथूभाई और श्री नौरोजी फरदजी ने इस संस्था के कार्य को खूब फैलाया था। मद्रास में 'हिन्दू' अखबार द्वा। सार्वजनिक कार्यों का प्रारम्भ हो चुका था। एम. बी राघवाचार्य, श्री मुकुन्द नाथ ऐयर, श्री एन सुब्बाराव पन्तुलू आदि इसके प्रवर्त्तक म से थ। श्री चिपलूणकर एवं राव बहादुर कनूलकर आदि प्रमुख व्यक्तियों की देख रेख में 'पूना सार्वजनिक सभा' की स्थापना हुई थी। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के अगुवाई में बंगाल में एक दूसरी संस्था 'इण्डियन एसोसियेशन, के नाम से स्थापित हुई। मद्रास में 'मद्रास महाजन सभा' नाम की एक और संस्था की स्थापना हो गई।

पृष्ठभूमि में प्रयाग का भाग—कवीन्द्र रवीन्द्र के कथनानुसार आरम्भ के पूर्व भी आरम्भ होता है। सध्यादीप जलाने की क्रिया सन्ध्या को सम्पन्न होती है किन्तु दीप की बाती पहिले से ही सजाई जाती है। जिस समय देश के विभिन्न भागों में राजनैतिक एवं धार्मिक चेतना स्पन्दित हो रही थी, उस समय प्रयाग में भी मुंशी कालीप्रसाद कुलभास्कर दीप की बत्ती सजोने में सचेष्ट थे। धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक तीनों दिशाओं में एक साथ सुधार पैदा करने के लिये इन्होंने अपनी स्थावर एवं जंगम सर्वस्व सम्पत्ति लगाकर एक पाठशाला सन् १८७२ ई० में प्रयाग में स्थापित किया, जिसमें अंग्रेजी शिक्षा के साथ साथ संस्कृत भाषा तथा धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर दिया गया था। महामना मालवीय जी तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी आदि देश के प्रमुख नेता इसी पाठशाला के उपज हैं। मुंशी जी का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

मुंशी कालीप्रसाद कुलभास्कर—मुंशी कालीप्रसाद का जन्म सन्

१७४० ई० की तीसरी दिसम्बर को जौनपुर में हुआ। वहाँ इनके पिता मुन्शी दीनदयाल सरकारी नौकरी करते थे। इलाहाबाद जिले के शहजादपुर गाँव में इनका पुश्तैनी घर था।

५ बरस की अवस्था में ये एक मौलवी साहब के पास फारसी पढने के लिये बैठाये गये। बारह वर्ष में इनकी फारसी की शिक्षा समाप्त हो गई और इस भाषा का इन्हें पूरा ज्ञान हो गया। यह अपने सहपाठियों से बड़ा स्नेह और सहानुभूति रखते थे।
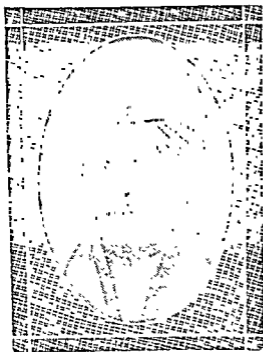
मुशी कालीप्रसाद कुलभास्कर

१८५४ ई० में आप शहजादपुर गये। वहाँ इन्होंने एक पंडित से संस्कृत भाषा पढ़ी। उस मधुर भाषा से आप को बड़ा प्रेम हो गया। रामायण और श्री मद्भागवत की कथा सुनने के लिये आप पण्डितों के पास जाया करते थे। केवल दो वर्ष में आपने संस्कृत में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

१८५६ ई० में मुन्शी जी बनारस गये और बनारस कालेज में पढने लगे। उसी समय सिपाही-विद्रोह का आरम्भ हो रहा था। और इसी कारण वर्ष के भीतर ही इनको कालेज छोड़ कर लौटना पड़ा। जब तक शान्ति नहीं हुई घर ही पर रहे।

१८५८ ई० में अट्ठारह वर्ष की अवस्था में यह स्कूलों के सब डिप्टी इन्सपेक्टर नियुक्त हुये। किन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण इस पद पर बहुत

दिनों तक नहीं रह सके। ईश्वर की कृपा से कई महीनों के बाद ये फिर अच्छे हो गये।

१८५६ से १८६४ ई० तक प्रतापगढ, रायबरेली, उन्नाव और सुलतानपुर के जिलों में इन्होंने बन्दोबस्त विभाग में मुनसरिम का काम किया। १८६५ में ये "असिस्टेण्ट कमिश्नरशिप" परीक्षा में गये और उसमें इन्होंने सबसे प्रथम स्थान पाया। इसी साल इन्होंने वकालत की परीक्षा दी और सौभाग्य वश उसमें भी उत्तीर्ण हो गये। उसी साल इन्होंने लखनऊ में वकालत करनी प्रारम्भ की। वकालत इनकी खूब हो चली। अन्त समय तक ये वहीं की रहे।

१८७२ ई० में प्रयाग में इन्होंने कायस्थ-पाठशाला (Kayasth-Pathshala) की नींव डाली। पहले तो यह केवल एक मामूली पाठशाला था, किन्तु १८८२ ई० में इन्ट्रेन्स मिडिल श्रेणी तक और १८८८ में कलकत्ता विश्वविद्यालय का एन्ट्रेन्स श्रेणी तक पहुँच गया।

१८६४ ई० में यह पाठशाला प्रयाग विश्वविद्यालय की शाखा बनाई गई। सन् १८६२ ई० में इन्टरमीडियट परीक्षा के लिये भी इसकी मंजूरी हो गई और इसी वर्ष जुलाई में प्रथम वार्षिक श्रेणी खोली गई, तथा दूसरे साल द्वितीय वार्षिक वर्ग भी खुला। मुन्शी जी ने अपनी पाँच लाख की सम्पत्ति इस कायस्थ पाठशाला को दे दिया।

ये बड़े विद्या प्रेमी थे। पुस्तकों के संग्रह करने में इन्होंने बहुत सा धन व्यय किया और संगृहीत पुस्तकों का आपने भलीभाँति अध्ययन भी किया। आपने धर्म शिक्षा को आवश्यकता समझ अपनी पाठशाला में संस्कृत जारी की और एक छात्रावास बनवा कर पाठशाला में लगा दिया।

१८७२ ई० में ये 'कायस्थ-समाचार' नामक पत्र निकालने लगे। लखनऊ में आपने 'कायस्थ व्यापारिक कम्पनी' स्थापित की। आपने अपने रुपये से कैनिंग कालेज प्राच स्कूल का प्रबन्ध किया। लखनऊ इन्स्टीच्यूट सभा के सभापति व आप ही अग्रसर थे। आप 'कृषि व्यापार उन्नति समाज' के सभासद थे, तथा १८७६ से १८८१ ई० तक लखनऊ के 'अपर इण्डिया पेपर मिल्स कम्पनी' के मन्त्री थे और आप ही ने उसके नियम भी बनाये थे।

१८८५ ई० के अन्त तक आप कम्पनी के प्रबन्धक थे। १८८६ ई० की ६ वीं नवम्बर को आप की मृत्यु देहली में हुई। जब आप मरे हैं तब आपके सम्बन्धी या मित्र लोग जो कि वहाँ थे उन्होंने कायस्थ पाठशाला के प्रेसीडेन्ट के पास तार भेजा। क्योंकि उनके पास कुछ भी नहीं रह गया था जिसके खर्चे से उनकी मिट्टी उठती। यहाँ से जब खर्च वहाँ गया है तब आपकी मिट्टी उठी है।

उनके द्वारा सस्थापित पाठशाला सन् १८७२ से आज तक एक ट्रस्ट के प्रबन्ध मे भली भाँति जारी है। इस ट्रस्ट का अधिनायक एक प्रेसीडेन्ट होता है जो कायस्थ समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति होता है। मुशी हनुमान प्रसाद, मुशी रामप्रसाद, गोविन्द प्रसाद, माननीय जस्टिस गोकुल प्रसाद, डा० मेजर रजातसिह, हरनन्दन प्रसाद, ईश्वर सरन, अम्बिका प्रसाद इस पद को सुशोभित कर चुके हैं। आजकल रायसाहेब डा० प्यारे लाल श्रीवास्तव इस ट्रस्ट के प्रेसीडेन्ट है। इस ट्रस्ट के अन्तर्गत दो और ट्रस्ट हैं। (१) चौधरी महादेव प्रसाद ट्रस्ट जिसकी आमदनी लगभग दो लाख रुपये है। यह कुल रुपया, कुल खर्च निकालने के बाद गरीब, दीन और निस्सहाय विद्यार्थिया को छात्रवृत्ति अथवा कर्ज के रूप मे दिया जाता है। इस ट्रस्ट के वर्तमान मेम्बर इन्चार्ज राय चौधरी साहेब के नाती चौधरी ठाकुर शिवनाथ सिंह बी. ए. एल. एल. बी हैं। (२) ठाकुर विश्वेश्वर बख्श सिह ट्रस्ट है जिसकी आमदनी लगभग बीस हजार सालाना है। इस ट्रस्ट के मेम्बर इन्चार्ज चौधरी साहेब के बडे नाती ठाकुर विश्वनाथ सिह के ज्येष्ठ सुपुत्र चौधरी नौनिहाल सिह हैं।

रायसाहेब डा० प्यारेलाल श्रीवास्तव—का जन्म ११ फरवरी १८९८ ई० को हथगॉव जिला फतेहपुर मे हुआ। आपका विद्यार्थी जीवन बहुत ह प्रतिभाशाली था। इन्ट्रेन्स के परीक्षा से लेकर एम० ए० तक बराबर आप प्रथम श्रेणी म सब परीक्षायें पास की। बी० एस० सी० म प्रथम आने के कारण आपको प्रयाग विश्वविद्यालय से 'हामर शाम काक्स का स्वर्ण पदक' प्राप्त हुआ। एम० ए० में आप को दो साल के कुल उत्तीर्ण परीक्षार्थियों म प्रथम आने क कारण 'महारानी विक्टोरिया जुबली पदक'— प्राप्त हुआ। वहाँ के उपकुलपति के सिफारिश के कारण आप डिप्टी कलेक्टर मनोनीत हुये किन्तु आपने इस

पद से इनकार कर दिया । आप प्रयाग विश्वविद्यालय में पहिली अगस्त सन् १६२२ ई० से लेक्चरार नियुक्त हुये । आप की प्रतिभा से प्रभावित होकर उत्तर प्रदेशीय सरकार ने सरकारी छात्रवृत्ति देकर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से डाक्ट्रेट की डिग्री प्राप्त करने के लिए भेजा । आप डाक्टर पद से विभूषित होकर १६२७ में भारत आये और सन् १६२६ में आप विश्वविद्यालय के रीडर नियुक्त हुए । आजकल आप गणित विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हैं । आपका सार्वजनिक जीवन बहुत उन्नतिशील रहा । सन् १६३४ से ४३ तक आप यू० पी० इन्टर मिडियट बोर्ड के चुने हुए सदस्य थ, आजकल फिर

डा० प्यारेलाल श्रीवास्तव

सन् १६५२ से इस बोर्ड के सदस्य हैं । सन् १६४१-४४ तक आप इलाहाबाद नगरपालिका के मम्बर थ । आप अखिल भारतीय नेचरल इन्स्टीट्यूट के फलो तथा नेशनल एकेडमी आफ साइन्स के मम्बर हैं । आगरा विश्वविद्यालय व सिनेट के मम्बर तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के कार्यकारिणी समिति, कोर्ट तथा एकेडमिक कौंसिल के मम्बर हैं । आजकल आप लेजिस्लेटिव कौंसिल यू० पी के मेम्बर, डी० ए० वी० कालेज प्रयाग तथा कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद के प्रेसीडेन्ट हैं ।

कांग्रेस की पृष्ठभूमि—कॉंग्रेस का जन्म यद्यपि १८८५ ई० में बम्बई में श्री ओ० एल० ह्यूम के प्रयत्नों से हुआ था तथापि उसकी चर्चा एक साल पहिले १८८४ ईस्वी में मद्रास में दीवान बहादुर रघुनाथ राव के निवास स्थान पर हुई

थी। इस चर्चा में जो १७ व्यक्ति शामिल हुए थे उनमें चार उत्तर प्रदेश के थे और इनमें भी एक श्री हरिश्चन्द्र प्रयाग के निवासी थे। श्री हरिश्चन्द्र ने कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन १८८५ में सक्रिय योग दिया था।

चौधरी ठाकुर शिवनाथ सिंह

कांग्रेस ने भारत को स्वाधीन बनाया, परन्तु स्वाधीनता की कल्पना नयी नहीं थी। कांग्रेस से पहले राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द जी ने समाज सुधार की दिशा में मुख्य रूप से प्रयत्न करते हुये भी जनता को यह संकेत किया कि स्वतन्त्रता किसी भी राष्ट्र के लिये कितनी मूल्यवान है। १८५७ ईस्वी में स्वतन्त्रता के लिये जोरदार सामूहिक प्रयत्न पहिली बार देशवासियों के सामने आया सही परन्तु इससे पूर्व एक शताब्दी तक १७५७ से १८५७ तक कितने ही छोटे-मोटे प्रयत्न किये गये जिन्हें अंग्रेज शासकों ने पशुबल से कुचल दिया। १७५७ में कम्पनी का साम्राज्यवाद बिल्कुल प्रकट रूप में सामने आ गया था और उसने तत्कालीन भारतीय शक्तियों को चौकन्ना कर दिया था। १७६३ और १७६६ के सन्यासी विद्रोहों का उल्लेख हेस्टिंग्स ने किया है। १७७२ में बंगाल में ५० हजार किसानों ने विद्रोह किया और धान के खेतों को लूट लिया। अगले साल एक अन्य विद्रोह का दमन करने के लिए अंग्रेजों को चार बटालियनों से काम लेना पड़ा। १७८३ में तीन हजार लोगों ने एकत्र होकर जैसोर में सरकारी खजाने को लूट लिया। वीरभूमि और बाकुड़ा के जिलों में भी कई बार विद्रोह हुआ। इन विद्रोहियों के सम्बन्ध में लार्ड मिन्टो ने १८१० में लिखा था—"विद्रोही नेताओं ने वैसा ही आतंकपूर्ण वातावरण पैदा कर दिया
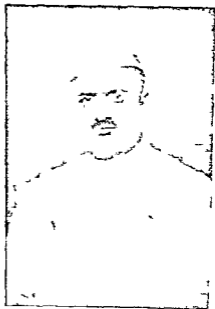
जैसा फ्रांसीसी प्रजातन्त्र की स्थापना के समय फ्रांस में था। लोग उनको सरकार अथवा हाकिम मानने लगे थे"। इसी तरह १८२८ में लार्ड मेटकाफ ने देशव्यापी असंतोष के सम्बन्ध में लिखा था—"भारत हमारी तबाही का इन्तजार कर रहा है। यदि हमारा अन्त हुआ तो भारत को इससे बड़ी खुशी होगी। १८५७ की क्रान्ति इसी आग की लपट मात्र थी। १८५७ के बाद १८६१ १८७० और १८७४ में वहाबियों, मयालों और किसानों ने भी उत्तर पूर्व और दक्षिण में विद्रोह किया था।

श्री ह्यूम ने इस असन्तोष और उसके परिणामों को समझा और उन्होंने उसके प्रदर्शन के लिए काग्रेस के रूप में वैध मच की स्थापना की।

मि० ह्यूम बड़े भारी राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने भारतीय राष्ट्र के क्षितिज के पास आकाश का कुछ कुछ धूलमय देखा। वे ताड़ गये कि भविष्य के गर्भ में छिपे भयङ्कर तूफान की यह अग्रिम सूचना है। उन्होंने सोचा कि यदि समय रहते इसके लिए उचित उपाय न किया गया तो वह तूफान ब्रिटिश शासन को छिन्न भिन्न कर देगा। एक बार इसकी उपेक्षा का परिणाम सन् ५७ का गदर हो चुका है, जिसने ब्रिटिश शासन की नींव ही हिला दी थी। फिर इस बार भारतीयों में फैलने वाला असन्तोष और राजनीतिक चेष्टा की उपेक्षा *ब्रिटिश* शासन को ही ले बैठेगी। इसलिए उन्होंने विचार किया कि किसी ऐसे मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये जिससे भारतीयों के हृदय में सुलगने वाली *विद्रोहाग्नि* की गर्मी निकलती रहे और उसकी मात्रा का सही ज्ञान शासक वर्ग को मिलता रहे। फिर तो जब जैसा उचित समझा जायगा, वैसी कारवाई करके इन लोगों को शान्त रखा जायेगा। वे नहीं चाहते थे कि भारतीय गुप्त रीति से ब्रिटिश शासन के विरुद्ध कुछ सोचें या करें। ऐसा होने देने से उनके विचार से भयंकर विस्फोट होने का भय था। इसलिए उन्होंने सोचा कि देश के विभिन्न भागों के प्रमुख राजनीतिज्ञों का एक *अखिल भारतीय संगठन हो, जहाँ देश भर के सभी प्रमुख* लोग वर्ष में एक बार मिलकर आपस में विचार विनिमय कर लिया करें। उनका यह भी विचार था कि *अखिल भारतीय संगठन केवल देश के सामाजिक मामलों* को ही हाथ में ले और सामाजिक दृष्टि से देश का उत्थान कार्य पूरा करे। राज*नीतिक समस्याओं को विभिन्न प्रान्तों में संगठित भिन्न भिन्न संस्थाएँ ही अपने हाथ* में लें और शासन की त्रुटियों को दिखलाया करें ताकि उचित सुधार *किया जा*

सके। इस प्रकार वे चाहते थे कि देश का ध्यान सामाजिक मामलो मे ही लग जाय और राजनीति गौण हो जाय।

उनका यह भी विचार था कि भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञों का सम्मेलन जब जिस प्रान्त मे हो, उस प्रान्त का गवर्नर ही उसका सभापतित्व करे। इससे एक लाभ तो उन्होंने यह सोचा था कि सरकारी कर्मचारी एव गैर सरकारी लोगों में एक अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। दूसरी बात थी कि सम्मेलन के प्रधान के पद पर अग्रेज गवर्नर के रहते हुए लोगो पर एक ऐसा प्रभाव रहेगा जो ब्रिटिश शासन के लिए हितकर सिद्ध होगा। वह इस मामले को लेकर १८८५ ई० में तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन से भी मिले थे।

लार्ड डफरिन ने मि० ह्यूम से शर्त करा ली थी कि जब तक मैं इस मुल्क में हूँ तब तक इस सलाह-मसविदा की बात गुप्त रखी जाय और मि० ह्यूम ने पूर्णरूपेण इसको निवाहा भी।

पहला अधिवेशन—१८८५ ई० के २८ दिसम्बर को बम्बई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज के भवन मे श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में हुआ। यह हमारी कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन था। इसमें कुल ७८ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे जिनमे गंगाप्रसाद वर्मा, दादा भाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, सर दीनशा वाचा, राघवाचार्य, बहरामजी मालावारी, श्री आनन्द चार्लू और प्रयाग के हरिश्चन्द्र आदि प्रमुख थे।

भारत में होने वाले राजनीतिक विस्फोट को रोककर ब्रिटिश शासन को यहाँ दृढ करना था। यही कांग्रेस स्थापना की पृष्ठभूमि है।

ह्यूम कालीन कांग्रेस (१८८५-१९१८)—इस काल में प्रयाग मे दो प्रसिद्ध नेता हुये—पं० अयोध्यानाथ तथा पं० मदनमोहन मालवीय। सन् १८८६ ई० में कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कलकत्ता मे हुई। प्रयाग से प० मदनमोहन मालवीय अपने गुरु श्री आदित्यराम जी भट्टाचार्य के साथ इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। गुरु की आज्ञा लेकर मालवीय जी 'व्यवस्थापक सभाओं में सुधार' पर व्याख्यान दिया। ऐसी महत्वपूर्ण एव चुने हुये विद्वानों और सेवकों की सभा में बोलने का उनका यह पहला ही अवसर था, किन्तु उनके इस पहले व्याख्यान

ने ही उन्हें सेवरा की पहिली पंक्ति में बैठने का अधिकारी बना दिया। इस प्रकार दूसरे ही अधिवेशन में प्रयाग का मस्तक भारत में गर्व से ऊँचा उठ गया। कलकत्ता कांग्रेस की रिपोर्ट में मि० ह्यूम प्रधान मंत्री ने लिखा है "जिस व्याख्यान के लिये कांग्रेस पण्डाल में कई बार करतलध्वनि हुई थी और जिस व्याख्यान को जनता ने बड़ी उत्सुकता से सुना था वह प० मदनमोहन मालवीय का व्याख्यान था।" तब से मालवीय जी मृत्युपर्यन्त सन् १९४५ तक देश के प्रमुख नेता बने रहे।

सन् १८८८ से सन् १८९२ ई० तक कांग्रेस की पहिली पंक्ति के नेता प० अयोध्यानाथ जी थे। इनका जीवन चरित्र ही इस काल के कांग्रेस का इतिहास समझा जाता है। यह भारत के प्रथम विद्रोही नेता थे। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

देशभक्त पं० अयोध्यानाथ—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निर्माण-कर्ताओं में स्वर्गीय पंडित अयोध्यानाथ का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। पंडित अयोध्यानाथ ने कांग्रेस की उस समय रक्षा की थी जब तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन और उत्तर प्रदेश के गवर्नर सर आकलैंड कालविन ने कांग्रेस पर गहरा प्रहार करने का दृढ निश्चय कर लिया था।

पं० अयोध्यानाथ

प० अयोध्यानाथ का जन्म ८ अप्रैल सन् १८४० ई० को आगरा नगर में हुआ था। आप काश्मीरी ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम पंडित केदारनाथ था। वे बड़े विद्वान् थे। वे पहिले नवाब जावरा के। यहाँ दीवान रहे, बाद में कई कारणों से नौकरी छोड़ कर आगरे में ही रह कर
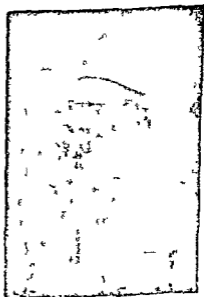
कुछ व्यापार करने लगे। आपने व्यापार में भी काफी उन्नति की। आपका ध्यान अपने प्रिय पुत्र अयोध्यानाथ पर अधिक था। पं० अयोध्यानाथ जी बाल्यकाल से ही बुद्धिमान, परिश्रमी और होनहार थे। पढ लिखकर अरबी और फारसी के प्रकाण्ड विद्वान् हो गये। इन्होंने अंग्रेजी भाषा में भी विद्वता प्राप्त करके सन् १८६२ ई० में कालेज छोड़ा।

उस समय प्रान्त की राजधानी आगरा थी। अयोध्यानाथ जी ने वहीं से हाईकोर्ट की वकालत प्रारम्भ कर दी। सब से पहिले इन्होंने विक्टोरिया कालेज की स्थापना की। राजधानी बदलने पर आप प्रयाग आये और जीवन के अन्तिम क्षण तक यहीं रहे।

सन् १८६६ ई० में आगरा कालेज के ला प्रोफेसर नियुक्त हुए। प्रयाग आने पर वकालत में खूब आमदनी होने लगी। धनीमान होकर भी पंडित जी ने अपने कर्त्तव्य और परोपकार व्रत का परित्याग नहीं किया।

सन् १८७६ में आपने 'इंडियन हेरेल्ड' नामक एक अंग्रेजी दैनिक पत्र निकाला, जो तीन साल तक चल कर बन्द हो गया। दूसरा पत्र १८६० ई० में 'इंडियन यूनियन' निकाला। उस समय पंडित जी प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर और कलकत्ता तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालयों के फेलो थे।

पंडित जी के जीवन का सर्वोत्तम काम यह था कि आपने तन, मन, धन से कांग्रेस की सेवा की। कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन (कलकत्ता) से ही वह प्रमुख भाग लेने लगे। चौथी बार सन् १८८८ ई० में कांग्रेस की बैठक प्रयाग में हुई। इस समय अंग्रेजी नौकरशाही के उच्च से उच्च अधिकारियों, समाज के बड़े बड़े नामधारी व्यक्तियों, तत्कालिक वायसराय लार्ड डफरिन, तत्कालिक प्रान्तीय लाट सर आकलैंड काल्विन, सर सैयद अहमद खाँ, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द सरीखे बड़े-बड़े नेताओं ने कांग्रेस का गला घोंट देने के लिये ऐंड़ी चोटी का पसीना एक कर दिया। किन्तु पंडित जी ने कांग्रेस का अधिवेशन सफलता पूर्वक प्रयाग में कराया। उस समय जब कि कांग्रेस के अधिकारी साल में केवल दो दिन काम करते थे पंडित जी निरन्तर पूरे साल भर चन्दा इकट्ठा करने और व्याख्यान देने का काम करते थे।

जिस समय प्रयाग में कांग्रेस की बैठक हुई थी, उस समय सभामंडप बनाने के लिये कोई जगह नहीं मिली। तब उन्होंने अपना मकान खोद कर सभा

मंडप बनाने का निश्चय किया था। कहा जाता है कि सबसे पहिले कांग्रेस अधिवेशन के लिए खुसरूबाग दिया गया था, लेकिन थोड़े दिनों के बाद वह आज्ञा रद्द कर दी गयी। फिर किले के पास की वीरान जगह दी गयी लेकिन उसे भी बाद में देने से सरकार ने इन्कार कर दिया। इसके बाद पायोनियर प्रेस के करीब दोस्तों के कुछ मकानात किराये पर टीक लिये गये, किन्तु केन्टूमेन्ट अधिकारियों के एतराज के कारण यह भी छीन लिये गये।

अन्त में उक्त पंडित जी ने अपने व्यक्तिगत प्रभाव से महाराजा दरभंगा से प्रयाग स्थित 'दरभंगा कैसिल' में अधिवेशन करने की आज्ञा प्राप्त कर ली।

इन सब विरोधों का परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस में नवीन स्फूर्ति आ गई और उस साल सब से ज्यादा अर्थात् ५००० प्रतिनिधि कांग्रेस में शामिल हुए। इसके बाद वह कांग्रेस के एक महान् व्यक्ति समझे जाने लगे। लोगों ने इन्हें अगले नागपुर कांग्रेस का अध्यक्ष मनोनीत किया किन्तु इन्होंने अपनी तरफ से मद्रासी सज्जन श्री आनन्द चार्लू को प्रेसीडेन्ट बनाया, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने सभापति के भाषण में बहुत ही कृतज्ञता के साथ किया था। इसी नागपुर वाली सभा से लौटने के तुरन्त बाद ही आपको ज्वर हो आया और ११ जनवरी सन् १८६२ ई० को आप इस मृत्युलोक से विदा हो गये। आपके मरने पर पंडित बालकृष्ण भट्ट ने कहा था—"तुम तो सिधारे परलोकहि अयोध्यानाथ, भारत प्रजा का प्रतिपाल कौन करिहै।"

कांग्रेस के चतुर्थ अधिवेशन को प्रयाग में सफलतापूर्वक सम्पादित करा देने का श्रेय तो पंडित जी को निर्विवाद रूप से है ही किन्तु उससे भी अधिक महत्व निम्नांकित प्रस्ताव का है जो उन्होंने इस अधिवेशन में पारित कराया। इस अधिवेशन का महत्व कांग्रेस इतिहास में उतना ही है जितना कि सन् १६०७, १६२०, और १६२६ के अधिवेशनों को प्राप्त है। इस अधिवेशन की विशेष बातें इस प्रकार हैं :—

इस अधिवेशन में पिछले और कई अगले अधिवेशनों से अधिक प्रतिनिधि ५००० की संख्या में एकत्रित हुए थे। सरकारी कांग्रेस की कलई इसी अधिवेशन में खुल गई थी। इसी अधिवेशन से सर सैयद अहमद खां ने, जो पहिले कांग्रेस के बड़े हामी थे, खुल्लमखुल्ला विद्रोह किया, किन्तु लाला लाजपत राय ने, जो पहिले पहल कांग्रेस में शामिल हुए थे, इनके पिछले लेखों तथा व्याख्यानों के

सारे इनका मुँहतोड़ जवाब दिया था, इसके अतिरिक्त लखनऊ के शिया सम्प्रदाय के धार्मिक नेता शेख रजा हुसेन ने तत्कालिक छोटे लाट सर आक्लैंड के यह कहने पर कि भारत का कोई मुसलमान कांग्रेस में शामिल नहीं है, उत्तर दिया था "मुसलमान नहीं, बल्कि इनके सरकारी मालिक कांग्रेस के विरुद्ध हैं।" ऐसा ओजस्वी फतवा आगे चल कर सन् १९२१ में मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने खिलाफत आन्दोलन के समय भी दिया था।

इसी अधिवेशन से अंग्रेजों ने हिन्दू मुसलमानों को लड़ाने वाली नीति आरंभ की थी और कांग्रेस विरोधी एक कमेटी बनाई गई थी। जिसमें सर सैयद अहमद खाँ, तथा राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द प्रधान थे।

इनके अतिरिक्त गवर्नर जनरल की कौंसिल सम्बन्धी वृद्धि और सुधार करने, पब्लिक सर्विस, कानूनी, पुलिस, सैनिक मद्यनिषेध, टैक्स, शिक्षा सम्बन्धी सुधार के लिए कई कड़े प्रस्ताव पास किए गये थे। सब से अधिक विशेष बात यह थी कि इसी अधिवेशन ने सब से पहिले नमक कर वृद्धि का विरोध किया था।

कांग्रेस के इस चतुर्थ अधिवेशन में हमारे नेताओं का ध्यान सबसे पहिले देश में फैली हुई कतिपय विशेष सामाजिक बुराइयों की ओर आकृष्ट हुआ। कांग्रेस के प्रयाग अधिवेशन में इस सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास हुए और जो १९०२ तक बार बार दुहराए जाते रहे थे प्रस्ताव आबकारी नीति और छावनियों में शासन परिचालित वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में थे।

पंडित अयोध्यानाथ ने आजादी के जिस बिरवे को झुलसने से बचाया था वह आज वृक्ष बढ कर फल लाया है। शायद उन कठिन और भयानक दिनों में, सरकारी विरोधों से क्षुब्ध होकर उनके मन में यह भावना उठी होगी—

"जो नख्ल हमने सींचा है खूने जिगर से, वह होगा कभी बारवर देख लेना।"

कांग्रेस का आठवाँ अधिवेशन—पं० अयोध्यानाथ के प्रयत्नों के फलस्वरूप कांग्रेस का आठवाँ अधिवेशन प्रयाग में होना निश्चय हुआ, किन्तु अधिवेशन के कुछ ही दिन पूर्व उनका स्वर्गवास हो जाने के कारण पं० विश्वम्भरनाथ काश्मीरी स्वागताध्यक्ष चुने गये। इसी साल दादा भाई नौरोजी

मध्य फिन्सबरी निर्वाचन क्षेत्र से इंगलैंड के पार्लियामेन्ट के सदस्य चुने गये। इसी साल प्रयाग का लाउदर कैसिल महाराजा दरभंगा के अधिकार में आगया जिसे वह उसी साल के लिये नहीं बल्कि जब कभी भी कांग्रेस इलाहाबाद में हो, कांग्रेस के लिये सुरक्षित कर दिया। कहा जाता है कि महाराजा साहेब कांग्रेस के भक्त हो गये और कांग्रेस को कई हजार रुपया सालाना कांग्रेस आन्दोलन के लिये देने लगे थे।

प्रयाग के चौथे कांग्रेस अधिवेशन में पास किये हुए प्रस्ताव नं० १ और नं० २ अंग्रेजी शासन द्वारा कार्य्यान्वित किये गये। प्रस्ताव नं० १ का माँग था गवरनर जनरल के इण्डिया कौंसिल में हिन्दोस्तानी सदस्यों की संख्या की वृद्धि। इस माँग के फलस्वरूप तत्कालिक प्रधान मंत्री मि० ग्लेडस्टन ने संख्या तो बढा दो किन्तु उन सदस्यों के चुनाव का अधिकार जनता को नहीं दा। प्रस्ताव नं० २ की माँग थी, आई० सी० एस की परीक्षा इंगलैंड और भारत में एक साथ हो, और यह परीक्षा खुले प्रतियोगिता द्वारा हो। इस माँग के फलस्वरूप 'पब्लिक सर्विस कमीशन कमेटी की नियुक्ति की गई।

मालवीय कालीन कांग्रेस—कांग्रेस के इतिहास में यह एक बड़ी अद्भुत घटना है कि कांग्रेस के प्रगति ने जब कभी भी नवीन मोड़ लिया, तब तब कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ और उसका सभापति प्रयाग निवासी कोई न कोई व्यक्ति रहा। सूरत के १९०७ के तूफानी अधिवेशन में भी नरम दल वालों के विजय का श्रेय सम्पूर्णत प्रयाग के पंडितद्वय—मालवीय तथा मोती लाल नेहरू को ही है। सन् १९०८ के अधिवेशन में भी यही दशा रही। सन् १९०५ के बंगभंग तथा सन् १९०७ के तूफानी अधिवेशन के बाद जब कांग्रेस के गति प्रगति ने प्रथम मोड़ लिया तब भी वह कांग्रेस लाहौर म हुआ और प्रयाग निवासी महामना मालवीय उसके सभापति मनोनीत हुए। जलियावाला बाग के खूनी घटनाओं तथा काले कानून रौलेट एक्ट के बाद जब कांग्रेस ने दूसरा उल्लेखनीय मोड़ लिया तब भी कांग्रेस का अधिवेशन त्यागमूर्ति पं डत मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में सन् १९१९ में लाहौर में सम्पादित हुआ। असहयोग आन्दोलन के बाद परिवर्त्तन अपरिवर्त्तन वादियों के बीच तनातनी, स्वराज्य दल तथा हिन्दू सभाइयों के पारस्परिक विरोध, हिन्दू मुस्लिम के भयानक झगड़े तथा साइमन कमीशन के बायकॉट के बाद जब कांग्रेस ने तीसरा मोड़ लिया तब

भी काग्रेस का अधिवेशन सन् १६२६ में लाहौर में काटे के ताज से सुसज्जित प० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में हुआ। और अबकी तो भारत तथा अंग्रेजों के मध्य रण भेरी ही फूंक दी गई। ऐसा कहना उचित ही होगा कि काग्रेस के प्रत्येक उल्लेखनीय मोड़ पर सारथि का कार्य्य प्रयाग ने किया और मोड़-बिन्दु का कार्य्य लाहौर ने किया।

चौबीसवाँ तथा पचीसवाँ अधिवेशन—इस साल सन् १६०६ में नरमदल के तीन दृढ स्तम्भो—लार्ड रिपन, लालमोहन घोष तथा रमेशचन्द्र दत्त की मृत्यु हो गई। मालवीय जी इस अधिवेशन के सभापति मनोनीत हुए। मालवीय जी ने अपना सभापति का भाषण बिना किसी पूर्व तैयारी (Extempore Presidential Address) के मौखिक रूप में दिया। काग्रेस के मंच से गरमदल वालो को बाहर रखने के लिये जो नया विधान बनाया गया था, उसके अनुसार अधिवेशन के कार्य्य सचालन सम्बन्धी जो नियम बनाए गये थे, इसी काग्रेस अधिवेशन में स्वीकार किये गये थे। इसी काग्रेस से प्रयाग के दो और विभूतियाँ सर तेजबहादुर सप्रू तथा सर सी० वाई चिन्तामणि के रूप में प्रकाश मे आई।

दिसम्बर सन् १६१० मे काग्रेस का पच्चीसवाँ अधिवेशन मि० वेडर्बर्न की सभापतित्व तथा इलाहाबाद हाईकोर्ट के तत्कालिक सबसे प्रसिद्ध वकील सर सुन्दर लाल के स्वागताध्यक्षत्व मे प्रयाग में सम्पन्न हुआ। इस साल सरकार ने अड़गीनीति छोड़कर काग्रेस कराने में सहयोग दिया था, स्यात इस सहयोग का श्रेय प० सुन्दर लाल जी को ही है। बादशाह एडवर्ड सप्तम के मृत्यु पर शोक, जार्ज पचम के बादशाह होने पर राजभक्ति, तथा लार्ड हार्डिज के वायसराय नियुक्ति पर बधाई के प्रस्ताव पास हुए। साम्प्रदायिकता के विरुद्ध सर्वप्रथम इसी अधिवेशन मे मि० जिन्ना, मजहरुलहक तथा हसन इमाम द्वारा प्रस्ताव रखा गया और सर्वसम्मति से पास हुआ था।

काग्रेस के जीवन काल में सन् १६१५ का समय बहुत ही खिच का समय समझा जाता है। इसी साल १६ फरवरी को महामना गोखले की मृत्यु हो गई। सर फिरोजशाह मेहता इससे पहिले ही मर चुके थे। सर ईदल शा वाचा, सर नारायण चन्द्रावरकर, हेरम्बचन्द्र मित्रा, मुधोलकर; सुब्बाराव पन्तुलू आदि असमर्थ हो चुके थे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी समय की गति के साथ चल नहीं

सकते थे। श्री निवास शास्त्री आगे बढ़ना नहीं चाहते थे। ऐसे विरुद्ध समय मालमना मालवीय ने ही कांग्रेस में नरमदलीय और गरम दल के मेलमेल प्रस्तावित करने में समर्थ सिद्ध हुए। उधर तिलक की गरम दल वाला की प्रगुवाई बड़े जोरों से कर रहे थे।

संयुक्त कांग्रेस—सन १६१६ का लखनऊ अधिवेशन राजनीति में भारतीय स्वाधीनता की नींव समझा जाता है। इसी अधिवेशन में पहिले पहिल गरम नरम दल एक हुये। मालवीय, जिन्ना, तिलक, खापर्डे, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रासबिहारी घोष, राजा महमूदाबाद, परस्पर विरोधी शक्तियाँ एक साथ बैठ कर अपनी प्रोग्राम पर परामर्श कर सकीं। इस अधिवेशन की सबसे बड़ी घटना थी, गांधी जी का सर्वप्रथम भारतीय कांग्रेस में शामिल होना तथा हिन्दू मुस्लिम एकता। इसी एकता के आधार पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने मिल कर भावी भारतीय शासन के लिये एक ऐसा विधान बनाया जो हिन्दू मुस्लिम दोनों को ही मान्य हो गया था। निष्कर्ष सन् १६०६ ई० में जो दुर्नीति लार्ड मिण्टो ने चलाई थी, उसे इस एकता ने पूर्णतः समाप्त कर दिया। पाठकों को जान कर प्रसन्नता होगी कि इन सारे उल्लिखित बातों की बुनियाद इलाहाबाद ही में पड़ी। इस एकता की प्रारम्भिक बैठक तथा इससे पहिले इन सब बातों के सम्बन्ध में बातचीत इलाहाबाद में प० मोतीलाल जी नेहरू के आनन्द भवन में २२,२३,२४ अप्रैल १६१६ को हुई जहाँ एकता का मसविदा तैयार किया गया।

सत्याग्रह की पहली आवाज—होमरूल लीग के कारण देश भर में सगभग का दृश्य उपस्थित कर दिया। १५ जून १६१७ में श्रीमती बिसेन्ट, अरुन्डेल और वाडिया पकड़ कर नजर बन्द कर दिए गये। लोग सत्याग्रह करने को तैयार हो गये। सारे प्रान्तीय कांग्रेसों ने एक स्वर से सत्याग्रह का समर्थन किया, किन्तु कांग्रेस और लीग ने संयुक्त अधिवेशन ने जो ६ अक्टूबर सन् १६१७ ई० में इलाहाबाद में हुआ सत्याग्रह का समर्थन मना किया, क्योंकि उसी समय मान्टेगू ने ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की ओर से एलान किया कि 'अब अधिक से अधिक हिन्दोस्तानी सरकारी विभागों में लिये जायेंगे, साथ ही स्वशासन की संस्थाओं की उन्नति करने का हर एक मौका दिया जायगा।

होमरूल आन्दोलन के समय होमरूल की एक शाखा प्रयाग मे खुली जिसके सभापति प० मोतीलाल नेहरू थे। सर सपरू, चिन्तामणि, प० जवाहरलाल नेहरू जी इसमें शामिल थे। प्रयाग म इस लीग ने खूब जोर पकड़ा। गोरे अखबार 'पायोनियर ने व्यंग करते हुए 'होमरूल लीग के जनरल ब्रिगेडियर' के नाम से प० मोतीलाल नेहरू का उल्लेख किया। सन् १९१७ ई० में कांग्रेस का विशेष प्रान्तीय सम्मेलन प्रयाग में प मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में सम्पादित हुआ।

सन् १९१८ का अधिवेशन—इस अधिवेशन के सभापतित्व का भार प्रयाग को ही सभालना पड़ा अर्थात् मालवीय जी इस अधिवेशन के सभापति मनोनीत हुए। इस प्रकार भारत के इस साल की राजनैतिक गति प्रगति का श्रेय प्रयाग को ही है। इस साल की सारी राजनीति 'मार्ले मिण्टो सुधार' के ही इर्द गिर्द चक्कर लगा रही थी जिसकी घोषणा वायसराय ने जून सन् १९१८ ई० मे किया था। इस घोषित सुधार का विरोध अथवा पुनः विचार करने के लिए प्रयाग में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन किया जाने वाला था किन्तु कुछ कारण वश सफल न हो सका

दिसम्बर सन् १९१८ ई० में कांग्रेस का साधारण अधिवेशन मालवीय जी की अध्यक्षता में दिल्ली में हुई, जिसमें डिफेन्स आफ इण्डिया एक्ट, प्रेस एक्ट, सेडिशस मीटिंग एक्ट, क्रिमिनल ला अमेन्डमेन्ट एक्ट को सरकार द्वारा रद कर देने के प्रस्ताव किये गये और मार्ले मिण्टो सुधार के सम्बन्ध म पिछले विशेष अधिवेशन का प्रस्ताव ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया।

पाठकों को यहाँ यह बता देने की पुन आवश्यकता मालूम होती है कि जहाँ तक देश में राजनीति का सम्बन्ध है यह काल (सन् १९०९ से १९१८ तक) मालवीय काल कहलाता है। इस काल में प्रयाग ने बडे बडे धुरन्धर [illegible] भारत को दिये यथा—सर सुन्दरलाल, सच्चिदानन्द सिनहा, सर तेज बहादुर सपरू, सर चिन्तामणि, प हृदयनाथ कुंजरू, ईश्वर सरन, मेजर डा० रजीन सिंह, प० विशम्भरनाथ काशमीरी, श्री सतीशचन्द्र बनर्जी आदि। जानकारी के लिये कुछ नेताओं का उपलब्ध संक्षित जीवन कथा दिया जाता है।

प० मदनमोहन मालवीय—आपका जन्म जिस कुल म हुआ था वह पहले बुन्देलखण्ड में झाँसी से थोड़ी दूर, एक गाँव मे बसा था। वहीं से

अयोध्यानाथ मुंशक द्वारा संस्थापित अंग्रेजी दैनिक 'इण्डियन यूनियन' के सम्पादक हुए। सन् १६०८ ई० में इन्होंने प्रयाग से हिन्दी साप्ताहिक 'अभ्युदय' निकाला, प्रयाग में स्वतन्त्र विचार के एक अंग्रेजी दैनिक की आवश्यकता थी। इसलिये कुछ दिनों बाद मित्रों की सहायता से 'लीडर' निकाला। सन् १६१० ई० में प्रयाग से मर्यादा नामक मासिक पत्रिका निकाली।

'हिन्दुस्तान' के सम्पादन कार्य के बाद ही कई मित्रों तथा गुरुजनों के आग्रह से मालवीय जी ने वकालत पढ़ना शुरू किया। और पास करने के बाद वकालत शुरू कर दिया। उस समय प्रयाग विश्वविद्यालय में बाहर से पढ़ने के लिये आने वाले हिन्दू विद्यार्थियों के रहने का बड़ा कष्ट था। मालवीय जी ने उत्तर प्रदेश में दौरा करके धन इकट्ठा किया। थोड़े ही दिनों में मेक्डानेल हिन्दू बोर्डिंग हाउस बनकर तैयार हो गया जिसमें २५० विद्यार्थी रह सकते हैं। मालवीय जी ने ज्ञान प्रचार के लिये भारती भवन नामक एक पुस्तकालय भी एक स्त्री रईस को उभाड़ कर प्रयाग में खोलवाया। इलाहाबाद मिण्टोपार्क भी जो महारानी विक्टोरिया की घोषणा का स्मारक है मालवीय जी के ही प्रयत्न का फल है।

उत्तर प्रदेश के अदालतों में पहिले उर्दू का ही बोल-बाला था, हिन्दी का प्रचलन बिल्कुल ही नहीं था। इन्होंने तत्कालिक छोटे लाट श्री एण्टनी मैक्डानेल को समझाकर सरकार द्वारा १६०० ई० में यह कानून प्रचारित कराया कि अदालतों का काम हिन्दी या उर्दू अथवा दोनों भाषाओं में हो सकता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान की रट लगानेवाले आधुनिक युग में वही प्रथम व्यक्ति थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम सभापति मालवीय जी ही चुने गये थे।

कलकत्ता की दूसरी कांग्रेस में मालवीय जी के शरीक होने की बात हम पहिले लिख चुके हैं तब से मालवीय जी बराबर कांग्रेस में सम्मिलित होते रहे। उनके ओजस्वी भाषण उस समय के कांग्रेस मंच की जान थे। सन् १६०६ ई० में नरम दल के शिरमौर सर फिरोजशाह महता कांग्रेस के सभापति चुने गये थे, किन्तु न जाने क्यों छः रोज पहिले इस पद से उन्होंने स्तीफा दे दिया। मालवीय जी २ सभा के सभापति चुन लिये गये। उस समय जो भाषण उन्होंने दिया उसे सुनकर उपस्थित प्रतिनिधि अवाक् रह गये। भाषण मौलिक था, पहिले से तैयार [illegible] हुआ नहीं था। पर मालवीय जी की वाग्धारा बड़े वेग से निकल रही थी। इसमें

मार्ले मिण्टो सुधारों की आलोचना की गई थी। लगभग तीन घण्टे तक वह धारा प्रवाह व्याख्यान देते रहे।

इसके बाद सन् १९१८ ई० में लोकमान्य तिलक भी कांग्रेस के सभापति चुने गये थे किन्तु सर वैलंटाइन शिरोल नामक अंग्रेज के ऊपर मानहानि का मुकदमा जो इन्होंने विलायत में चलाया था उस सिलसिले में उन्हें उसी समय, अंग्रेजों के कुचक्र के फलस्वरूप लन्दन जाना पड़ा। और इस प्रकार मालवीय जी फिर १९१८ के अधिवेशन के सभापति बना दिए गये। सन् १९३२ तथा सन् १९३३ ई० में गांधी द्वारा चलाये हुए सत्याग्रह आन्दोलन में जब कांग्रेस गैर कानूनी घोषित कर दिया गया और सब कांग्रेसमैन जेल के अन्दर ठुसे हुए थे, तब भी यह कांग्रेस के अध्यक्ष हो गये।

पंजाब हत्याकाण्ड के समय मालवीय जी ने बड़ा परिश्रम किया। कांग्रेस का कार्यक्रम से मालवीय जी का कई बार मतभेद हुआ है। सन् १९२० से १९३० तक तो वह कांग्रेस कार्यक्रम के विरोधी थे।

बहुत दिनों तक मालवीय जी इलाहाबाद के म्युनिसिपल बोर्ड के मेम्बर और वायस चेयरमैन रहे। इन्होंने नए-नए मुहल्ले बसाए। प्रयाग का लूकरगंज इन्हीं के प्रयत्नों का फल है।

सन् १९०१ ई० में सरकार ने मालवीय को प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा का सदस्य नियुक्त किया। उस समय उसमें केवल बारह सदस्य होते थे और सब सरकार द्वारा ही चुने जाते थे।

सन् १९०६ ई० तक वायसराय की केन्द्रीय कौंसिल के मेम्बर प्रान्तीय सरकार द्वारा चुने जाते थे। १९०६ ई० में पहिली बार यह नियम बना कि प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा दो प्रतिनिधि चुनकर वहाँ भेज सकती है। तब एक प्रतिनिधि मालवीय जी चुने गये और वर्षों लगातार भेजे जाते रहे।

मालवीय जी की कीर्ति एवं कृतित्व का जो सबसे बड़ा और सबसे स्थाई चिन्ह है वह है काशी का हिन्दू विश्वविद्यालय। भारत देश में ही नहीं, वरन् विश्व के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में उसकी गणना की जाती है। भारत के पुरातन शिक्षा पीठ के रूप में विख्यात पुनीत काशी नगरी में ४ फरवरी सन् १९१५ ई० को शुभ मुहूर्त में शास्त्रोक्त रीति से इस प्रस्तावित विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

तत्कालिन वायसराय लार्ड हार्डिंज ने इसकी नींव रखी। उसी साल इसकी पहिलो परीक्षा हुई।

जब देश में स्वदेशी का भाव जन्मा न था और थोड़े ही व्यक्तियों के विचार में था, तब से मालवीय जी इस दिशा में प्रयत्नशील थे। सन् १८८१ ई० में ही इलाहाबाद में एक देशी तिजारत कम्पनी खोली गई थी। मालवीय जी इसके प्रधान स्तम्भ थे। अखिल भारतीय स्वदेशी मच इन्हीं के परिश्रम का फल था। भारत के प्रायः सभी प्रधान नगरों में इसकी शाखाएँ थीं। स्वदेशी के अतिरिक्त औद्योगिक शिक्षा एवं आन्दोलन के मालवीय जी दृढ़ समर्थक थे। सन् १९०५ में काशी में जो भारतीय औद्योगिक सम्मेलन हुआ था और सन् १९०७ में इलाहाबाद में उत्तर प्रदेश औद्योगिक सघ खुला उसके पीछे मालवीय जी का बड़ा हाथ था। प्रयाग शुगर कम्पनी की स्थापना में भी इन्हीं की प्रमुखता थी।

समस्त हिन्दू जाति का सगठन करने के उद्देश्य से असहयोग आन्दोलन की शिथिलता के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने हिन्दू सगठन का आन्दोलन चलाया देखते-देखते सारे देश में यह आन्दोलन फैल गया और फलस्वरूप हिन्दू महासभा की स्थापना हुई। और विधर्मियों को हिन्दू बनाने के लिये 'शुद्धि आन्दोलन' चलाया। स्वयं सेवकों का महावीर दल बना।

मालवीय जी का दिल गरम किन्तु दिमाग नरम था। माण्ट फोर्ड सुधार का महात्मा गाधी और समस्त भारत ने विरोध किया, किन्तु मालवीय जी ने इसका खुल्लमखुल्ला समर्थन किया। प्रिंस आफ वेल्स (युवराज) के सन् १९२१ ई० में भारत आगमन पर देश ने बहिष्कार किया जिसमें ५० हजार भारतीयों को जेल जाना पड़ा, प० मोतीलाल, जवाहिर लाल नेहरू, देशबन्धु दास, मौलाना आजाद, लाला जी ने जेल यात्रा की पर मालवीय जी बाहर रह गये। इतना ही नहीं इन्होंने विद्यार्थियों के धरना धरने पर भी हिन्दू विश्वविद्यालय में युवराज का स्वागत किया। कांग्रेस ने कौंसिल और एसेम्बली का पूर्ण बहिष्कार किया, किन्तु मालवीय जी सन् १९२१ से सन् ३० तक एसेम्बली में बने रहे। साइमन कमीशन के बहिष्कार में इन्होंने कांग्रेस का साथ दिया। १२ नवम्बर सन् १९४६ को मालवीय जी ने 'मुक्ति की खानि' काशी में अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया।

डाक्टर सर सुन्दर लाल जी—वे नागर ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज पं० दयाराम जी सत्रहवीं शताब्दी में गुजरात से इधर आये। इनके प्रपौत्र प०

श्याम जी दवे थे जो सिक्खों के राजत्व काल में जम्मू काश्मीर के उच्च सेना नायक थे। डाक्टर सर सुन्दर लाल जी के पितामह कुन्दन जी दवे जम्मू से अपने भाई कृष्णचन्द्र जी दवे के साथ इधर अनूपशहर में आये और बाद में आगरे के गोकुल पुरा में रहने लगे जहाँ उनका पुराना मकान आज भी देखा जा सकता है। श्री कृष्णचन्द्र जी दवे संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे और काशी-नरेश महाराजा चेत सिंह के दरबार में इनकी अच्छी पहुँच थी।

डाक्टर सर सुन्दर लाल जी

डाक्टर सर सुन्दरलाल जी के पिता प० गोविन्दराम दवे आगरे में किले के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। आगरे से जब राजधानी उठकर इलाहाबाद में आयी तो गोविन्द राम जी दवे भी सपरिवार यहाँ आ गये और यहीं रहने लगे। डाक्टर सर सुन्दर लाल जी का जन्म नैनीताल जिले के जसपुर गाँव में १८५७ ईसवीं में २१ मई को हुआ था। उनके तीन अन्य भाई भी थे—रायबहादुर बलदेव राम दवे, रायबहादुर जस्टिस कन्हैया लाल और प० लक्ष्मीचन्द दवे। सभी भाइयों ने अपनी विद्या और सरलता से जैसी कीर्ति कमायी, वैसा कम परिवारों में देखा जाता है।

सर सुन्दरलाल जी की शिक्षा म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहाबाद में सम्पन्न हुई। जब ये पढते थे, तभी उन्होंने वकालत की परीक्षा पास की और १८८० के दिसम्बर से वकालत करना आरम्भ कर दिया। अगले वर्ष १८८१ ईस्वी में इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास किया। ये अपने समय के बड़े मेधावी छात्रों में थे और वैसे ही मेधावी और प्रतिभाशाली

वे वकील होकर भी सिद्ध हुए। उनकी कानूनी क्षमता का लोहा तत्कालीन बड़े बड़े वकील बैरिस्टर और जज मानते थे।

भारी कानूनी क्षमता—१९१८ की बात है। १३ फरवरी को उनका निधन हो गया। इस पर जो शोक सभा हुई, उसमें प्रयाग हाईकोर्ट के तत्कालीन चीफ जस्टिस नाक्स ने कानून में उनकी भारी क्षमता का उल्लेख करते हुए कहा था कि इनकी प्रतिभा की भविष्यवाणी इनके प्रिंसिपल श्री हैरीसन ने स्वयं की थी। उस समय सर वाल्टर कालविन, मि० कोलन, मि० हिल, मि० राम ऐसे प्रतिभाशाली बैरिस्टरों तथा मुंशी हनुमान प्रसाद, प० अयोध्यानाथ, श्री विश्वम्भरनाथ, मुंशी ज्वाला प्रसाद, मि० द्वारिकानाथ बनर्जी ऐसे प्रतापी वकीलों के रहते हुए भी पंडित जी वकालत के क्षेत्र में खूब चमके और इनकी वकालत की धूम दूर दूर तक फैल गई। सन् १८९२ ई० में प० अयोध्यानाथ के, जो भारत में अंग्रेजों के प्रथम विद्रोही थे, मरने के बाद तो पंडित जी वकालत क्षेत्र के एकमात्र नेता बन गये। अपनी पच्चीस साल की वकालत में हाईकोर्ट में कोई ऐसा प्रसिद्ध तथा पचाला मुकदमा नहीं हुआ जिसमें एक न एक पक्ष की ओर से इन्होंने वकालत न की हो। इनको मुकदमेबाज लोग सदा मुकदमा जित्तू के नाम से पुकारा करते थे। लोगों में यह दृढ धारणा थी कि जिस पक्ष से पंडित जी वकालत करेंगे वह अवश्य जीत जायगा।

पंडित जी शिक्षा तथा शिक्षा प्रसार के बड़े प्रेमी थे। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वायसचान्सलर (उप कुलपति) सन् १९०६, १९१२ तथा १९१६ ई० में तीन बार हुए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के तो ये प्राण समझे जाते थे। हिन्दू विश्वविद्यालय के आर्थिक संकट के समय ये उसके उपकुलपति चुने गये। इसे सम्भालने में इन्होंने कई लाख रुपया अपनी जेब से दिया।

सार्वजनिक जीवन—सर सुन्दरलाल राजनीतिक क्षेत्र में नरम विचारों के समझे जाते थे। सार्वजनिक मंच के प्रसिद्ध वाग्मियों में से तो ये नहीं थे किन्तु इनके विचार तथा परामर्श का भारी मूल्य समझा जाता था। ये लगभग १४ साल तक कौंसिल के सदस्य थे। कुछ समय के लिये ये इम्पीरियल

भी सदस्य थे, और हिन्दू विश्वविद्यालय विधेयक के पारित होने में सहयोग दिया था।

सन् १८८८ ई० के तूफानी कांग्रेस अधिवेशन में इन्होंने पंडित अयोध्यानाथ जी कुँजरू का पूरा पूरा साथ दिया। १९१० ई० में कांग्रेस का अधिवेशन जब प्रयाग में हुआ, आप उसके स्वागताध्यक्ष नियुक्त हुए। सन् १९११ ई० वाली प्रसिद्ध प्रयाग प्रदर्शिनी के आप एक दृढ स्तम्भ थे।

आजकल इस परिवार के प्रतिनिधि पं० रामकृष्ण दवे हैं। आप प० बलदेवराम दवे के ज्येष्ठ पुत्र हैं, और इलाहाबाद हाइकोर्ट में वकालत करते हैं। आप चारों भाइयों के गुणों, सार्वजनिक जीवन तथा उदारता के प्रतिनिधि हैं। प० सुन्दरलाल जी, बलदेव राम दवे, तथा प० जस्टिसकन्हैयालाल जिन संस्थाओं के पालक पोषक तथा सदस्य थे उन सभी संस्थाओं से आपका संबंध ज्यों का त्यों बना हुआ है। प्रयाग में कदाचित ही कोई ऐसी संस्था है जिसके आप सदस्य न हों। आप अपने परिवार के 'कलम' करछी और बरछी' वाले निशान को ऊंचा बनाये रखने में सदा प्रयत्नशील रहते हैं।

प० रामकृष्ण दवे

सर तेजबहादुर सप्रू एम० ए०, डी० एस० सी, एल० एल० डी०, डी० लिट, पी० सी, के० सी० एस० आई० का जन्म ८ दिसम्बर सन् १८७१ ई० का हुआ था। आप की शिक्षा-दीक्षा आगरा तथा प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। इलाहाबाद हाईकोर्ट में आपने सन् १८९६ ई० से वकालत करना आरम्भ किया।

आप उत्तर प्रदेशीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रसिद्ध सदस्य तथा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर थे। सन् १९०६ से १९१७ तक आप अखिल

सर तेज बहादुर सप्रू

भारतीय कांग्रेस कमेटी के मेम्बर थे। आप केन्द्रीय सरकार के ला-मेम्बर थे। गोलमेज कान्फ्रेन्स के प्रतिभा-शाली सदस्य थे। अपने राजनैतिक जीवन के प्रारम्भिक काल में एक प्रसिद्ध कांग्रेसमैन थे, किन्तु असहयोग आन्दोलन के समय से कांग्रेस से अलग होकर लिबरल् फिडरेशन के मेम्बर हो गये, जिसके यह एक संस्थापकों में से थे और आजीवन उस दल के कर्त्ता-धर्त्ता रहे। सन् १९४१ ई० में बम्बई में 'नान पार्टी लीडर्स कान्फ्रेंस' के सभापति थे। आपने राजनीति, कानून तथा विधान सम्बन्धी कई प्रसिद्ध पुस्तकें लिखीं हैं। आपके तीन योग्य पुत्र हैं—मि० जस्टिस प्रकाश नरायन सप्रू, श्री आनन्द नरायन सप्रू आई० सी०एस० तथा त्रिजुगी नरायण सप्रू बैरिस्टर, जो आजकल प्रयाग के प्रसिद्ध सोशलिस्ट नेता हैं।

सर सी० वाई० चिन्तामणि—आपका पूरा नाम निर्राक्री यज्ञेश्वर चिन्तामणि था। आप प्रयाग के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'लीडर' के आरम्भिक काल से जीवन पर्यन्त 'प्रधान सम्पादक' रहे। आपका जन्म १० अप्रैल १८८० ई० को हुआ, आपकी स्त्री का नाम 'कृष्ण वेनम्मा' है। आपने 'महाराजा कालेज विजयानगरम' में शिक्षा प्राप्त की थी। आप उत्तर प्रदेशीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के सन् १९२० २३ तक मेम्बर तथा, सन् १९२१-२३ तक आप प्रान्तीय सरकार के शिक्षा मंत्री रहे। आप भारत के 'उदार दल' के प्रतिनिधि के रूप में इंगलैन्ड भेजे गये थे। आप भी उदार दल के स्तम्भ तथा एक संस्थापकों में गिने जाते थे। बहुत दिनों तक आप इस सस्था के प्रधान मंत्री तथा दो बार सभापति के पद पर रह चुके थे। सन् १९२५ ई० में कुछ दिनों तक आप 'इंडियन डेली मेल'

समाचार पत्र के प्रधान सम्पादक रहे। आपके एक मात्र पुत्र श्री बालकृष्ण राव

सर सी० वाई चिन्तामणि
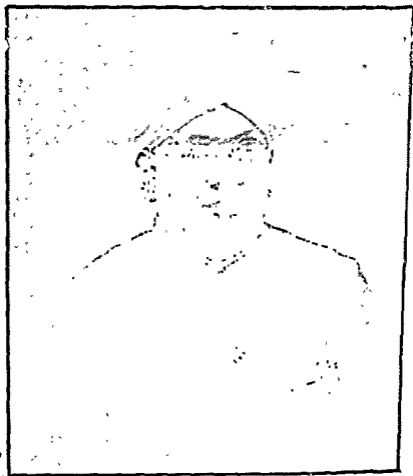
आई० सी० एस० आजकल केन्द्रीय सरकार के सूचना विभाग के सिक्रेटरी हैं।

डा० सच्चिदानन्द सिनहा बैरिस्टर एट-ला; डी० लिट, स्वतन्त्र भारत के विधान परिषद के प्रथम प्रेसीडेन्ट का जन्म सन् १८७१ ई० में हुआ था।

डा० सच्चिदानन्द सिनहा

आपने कलकत्ता; पटना, तथा लन्दन में शिक्षा प्राप्त किया। आपने सर्वप्रथम सन् १६०८ में कलकत्ता हाईकोर्ट, सन् १६१६ में पटना हाई कोर्ट तथा वकालत का शेष समय इलाहाबाद हाईकोर्ट में व्यतीत किया। आप सन् १६३६ से ४४ तक पटना विश्वविद्यालय के उपकुलपति, केन्द्रीय धारा सभा के मेम्बर तथा बिहार-उड़ीसा सरकार के अर्थमंत्री (१६२१-२६) रहे। कायस्थ पाठशाला प्रयाग के प्रधानमंत्री तथा 'कायस्थ समाचार प्रयाग' के प्रधान सम्पादक रहे, और इसी हैसियत से सन् १६११ के "दरबार ताजपोशी दिल्ली" में प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुये थे। आप 'हिन्दुस्तान रिव्यू' नामक मासिक पत्र तथा 'सर्चेलाइट' दैनिक पटना के संस्थापक थे। आप एक प्रसिद्ध राजनैतिक नेता थे। आप सन् १८६६ के पन्द्रहवीं कांग्रेस लखनऊ में पहिले पहिल शरीक हुये थे, तब से सन् १६१८ तक इसके एक स्तम्भ के रूप में काम करते रहे। आपही पहिले व्यक्ति थे जिन्होंने कांग्रेस के मंच से 'न्याय और प्रशासनीय कार्य के पृथक्करण' की आवाज़ उठाई थी। सन् १६१४ ई० में कांग्रेस की ओर से एक डेपुटेशन लन्दन भेजा गया था जिसके आप एक सदस्य थे, और आपके इस कार्य्य की सराहना कांग्रेस ने की थी।

डा० हृदय नाथ कुंजरु एम० ए०, एल० एल० डी०, बार-एट-ला, भारत के प्रथम विद्रोही नेता पं० अयोध्यानाथ जी के पुत्र हैं। आपका जन्म सन् १८८७ में हुआ था। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा लन्दन विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। आपने जीवन भर कोई भी वैतनिक कार्य्य नहीं किया, सदा से भारतीय जनता की अवैतनिक सेवा किया है। महात्मा गोखले द्वारा संस्थापित 'सर्वेन्ट आफ इण्डिया सोसाइटी' के आप सन् १६०६ से मेम्बर

हैं। आजकल तो आप इस संस्था के प्रेसीडेन्ट हैं। आप सन् १६२१-२३ तक उत्तर प्रदेशीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के तथा सन् १६२७-३० तक केन्द्रीय धारा सभा के मेम्बर रहे। सन् १६३४ में आप लिबरल फेडरेशन के प्रेसीडेन्ट चुने गये। सन् १६३७ से ४७ तक आप कौंसिल आफ स्टेट के मेम्बर थे। स्वतंत्र भारत के विधान सभा के भी मेम्बर थे। सन् १६४६-४७ में आप नेशनल डिफेंस कौंसिल कमेटी के मेम्बर थे और पैसिफिक रिलेशन कान्फ्रेन्स अमेरिका के आप सन् १६४५ में भारत की ओर से प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुये थे।

मोतीलाल-युग

१९१६-१९३०

तिलक-अस्त तथा गांधी-उदय—वैसे तो गाधी जी दक्षिण अफ्रीका में, सन् १८९३ से १९१५ तक अंग्रेजों के विरुद्ध एकाकी युद्ध करते रहे, किन्तु यहाँ वह सन् १९१५ मे ही भारत आ गये थे और आने के कुछ ही समय पश्चात् भारतीय राजनीतिक आन्दोलन मे भाग लेने लगे थे, किन्तु १९१६ के अप्रैल के पहिले वह अखिल भारतीय नेता के रूप में प्रकट नहीं हुए थे। उस समय गोखले जी का कांग्रेस और सरकार दोनों पर बड़ा भारी प्रभाव था। गाधी जी उन्हीं के आदेश से दक्षिण अफ्रीका से लौटकर भारत की राजनीति से एक वर्ष तक पृथक् रहकर सम्पूर्ण देश की परिस्थिति का अध्ययन करने में लगे थे। उस समय लोकमान्य तिलक अपनी उज्ज्वल देशभक्ति तथा अपूर्व आत्म त्याग के कारण १९१६ से भारतीय जन साधारण के हृदय सम्राट बने हुए थे। भारत भ्रमण के सिलसिले मे गाधी जी सब से पहले प्रयाग आये। २२ दिसम्बर १९१६ में इलाहाबाद के म्योर सेन्ट्रल कालेज के 'इकनामिक सोसाइटी' के सम्मुख 'फिजिक्ल कलचर थियेटर' में गाधी जी ने प्रथम व्याख्यान दिया। भाषण का विषय था 'क्या आर्थिक प्रगति एव वास्तविक प्रगति म विरोध है" गाधी जी का यह भाषण उनकी हस्तलिपि के २१ पृष्ठों में लिखा था। भाषण के बाद डा० अमरनाथ झा ने उसको माग लिया। गाधी जी ने कहा यह तो रद्दी के टोकरी के योग्य है आपके मेज के योग्य नहीं। डा० झा के अमूल्य सग्रह में यह एक अमूल्य वस्तु है। गाधी जी उस समय पगड़ी लगाऐ, मिर्जई, धोती पहिने नगे पॉव आए थे। उस समय जार्जटाउन में हेमिल्टन रोड पर स्थित मालवीय जी के बगले में ठहरे थे। मूँगफली और उसके हलवे का प्रचुर मात्रा में सेवन करते थे। उसी समय से वह अन्तरिक प्रेरणा की बात का उल्लेख अपने व्याख्यानों में करने लगे थे। उन्होंने व्याख्यान के दौरान में कहा 'अपने अन्दर से कोई

होती भी आवाज पड़ती है, 'तुम मेरी रास्ते पर रहो, न बाँये मुड़ो न दाँये, अपनी सीध पर पाई रास्ते पर चले जाओ'।

उन्होंने अपने व्याख्यान में इन बातों का उल्लेख किया—'भौतिक प्रगति, राजनीतिक प्रगति, दरिद्रता और नैतिक पतन, सुव्यवस्थित समाज क्या, उच्च भौतिक उन्नति के बाद भी नैतिक पतन, दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह, ईशु मसीह का एक सुप्रसिद्ध कथन, ईसा और पीटर का विवाद आदि। उन्होंने अन्त में कहा—

"अंग्रेजों के छत्रछाया में हम लोगों ने बहुत कुछ सीखा है। पर मेरा निश्चित विश्वास है कि यदि हम लोग होशियार नहीं रहेंगे तो हम स्वयं उन खराबियों के शिकार हो जायेंगे, जो भौतिकता के गर्व के कारण आज ब्रिटेन में दिखाई पड़ती है। हम अंग्रेजों से तभी लाभ उठा सकते हैं जब हम अपनी सभ्यता और नैतिकता को स्थापित रखें। अर्थात् अपने महान भूतकाल की डींग मारने के बजाय हम अपना प्राचीन नैतिक महानता का अपने जीवन में व्यक्त करें, ताकि हमारा जीवन ही हमारे भूतकाल का द्योतक हो। यदि हम ब्रिटेन की नकल इसलिये करने लगें कि वह हमको शासक देता है तो हमारा और उनका भी पतन होगा। पहिले हम भगवान की छत्रछाया में जाना चाहिये। और तब यह निश्चित मानिये कि हमको सब कुछ मिल जायेगा। यही सच्चा अर्थशास्त्र है।"

गांधी युग में तीन संग्राम हुये—असहयोग, सत्याग्रह, तथा भारत छोड़ो। असहयोग काल के नेता पं० मोतीलाल नेहरू थे और शेष दोनों के संचालक पं० जवाहरलाल नेहरू।

असहयोग के तूफानी दिनों में भारत ने पहली बार व्यापक उद्वेलन का अनुभव किया। गाँव शहर का विवेक मिट गया। पिता और पुत्र, वृद्ध युवक, माँ और बेटियाँ, बहिनें और पत्नियाँ, नर और नारी एक साथ उठ खड़े हुए थे। प्राणों में चमक, जीवन में उन्माद, हृदय में विश्वास, चक्षुओं में आत्मोत्सर्ग का तेज लिये हुए समूचे भारत का विराट शरीर अन्दोलन से काँप रहा था। अदालतों, स्कूलों कालेजों एवं कौंसिलों का बहिष्कार हुआ, उपाधिधारियों ने उपाधि तक सरकार को लौटा दी। उस समय प्रयाग से लगभग एक हजार व्यक्ति जेल गये। चौरी चौरा का हत्याकांड होते ही गांधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया। दस मार्च १९२२ को गांधी जी गिरफ्तार कर लिए गये और उन्हें ६ वर्ष की सजा हुई।

गाधी जी की अनुपस्थिति मे नेतागण किकर्त्तव्य विमूढ हो गये। गाधी जी द्वारा सचेत किये हुये भारत मे प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई। हिन्दू मुस्लिम एकता गधे के सिर से सींग की भाँति अदृश्य हो गया। हिंदू मुस्लिम दगों का भयानक दरवाजा खुल गया। उधर पं० मोतीलाल नेहरू तथा श्री चितरजनदास के नेतृत्व में कौंसिल प्रवेश शुरू हो गया। राष्ट्रीयता की जजीर टूट गई और साम्प्रदायिकता का जोर हो चला। मालवीय जी के नेतृत्व मे शुद्धि एवं सगठन तथा हसन निजामी के नेतृत्व में तजीम तथा तबलीग का दौरा आया। जहाँ हिन्दू मुस्लिम भाई की भाँति गले मिलते थे, अब एक दूसरे के गले पर छूरियाँ फेरने लगे। जहाँ दिल्ली की जामा मस्जिद मे कट्टर आर्यसमाजी नेता श्रद्धानन्द का 'वाज' (उपदेश) होता था, जहाँ हिन्दू ताजिया दारी मे एव मुसलमान दशहरा मे शरीक होता था, वहाँ क्या से क्या हो गया।

किन्तु इस काल में एक बात यह हुई कि सन् १९२२ से २६ तक गाधीवादियों ने पुनः सग्राम की तैयारी किया। इस युग में एक ओर साम्प्रदायिकता का तूफान उमड़ चला था दूसरी ओर परिवर्त्तनवादियों (स्वराज्य दल वालों) का कौंसिलों में जाकर अड़गा डालने की नीति का जमाना रहा, और तीसरी ओर अपरिवर्त्तनवादियों ने ठोस विधायक कार्य की ओर ध्यान दिया। किन्तु सबसे बुरी बात यह हुई कि सन् १९२२ के बाद मुसलमान जाति राष्ट्रीय कांग्रेस के आन्दोलन से अलग हो गयी। इस काल मे प्रयाग ने क्या किया यह सब प० मोतीलाल जी नेहरू के जीवन चरित्र से प्रकट हो जायगा।

पं० मोतीलाल नेहरू—नेहरुओं के पूर्वज प० राजकौल बादशाह फर्रुखसियर के शिक्षक के रूप में दिल्ली आए थे। उसी समय से इनका वश दिल्ली मे बस गया और अब भी कुछ अशों में वहाँ हैं। कई पीढ़ियाँ बाद इसी वश मे गगाधर कोतवाल दिल्लो के तीन पुत्र हुए—नन्दलाल, बशीधर, मोतीलाल। मोतीलाल जी का जन्म ६ मई १८६१ ई० का दिल्ली में हुआ। यह जब गर्भ मे थे, पिता का देहावसान हुआ। बड़े भाई नन्दलाल जी ने बड़े प्रेम से इनका पालन-पोषण किया। शिक्षा समाप्ति के बाद वकालत किया, वकालत द्वारा इन्होंने प्रभूत धन कमाया। फिर तो एक जमाना था जब उनके विलास एव वैभव की कहानियाँ कही जाती थी। विलास नाचता था, वैभव गाता था। कभी पार्टियाँ सज रही हैं कभी गायन हो रहा है। उस समय 'इलाहाबाद के

नवाब' का बड़ा पुतला था। बॉन्डस्ट्रीट लन्दन में उनका कपड़ा सिला आता था और पेरिस धुलता था। असहयोग आन्दोलन ने जोर पकड़ा। सारा राजसी वैभव त्याग कर नेहरू जी युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़े। फलतः ६ दिसम्बर १९२१ को वह जवाहरलाल, भतीजों तथा सहयोगियों के साथ गिरफ्तार कर लिये गये।

त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल जी नेहरू यद्यपि कांग्रेस में सर्व प्रथम १८८८ ई० में प्रयाग वाले अधिवेशन में शामिल हुए थे तथापि उन्हें कांग्रेस में अपना स्थान बनाने में देरी नहीं लगी और १८९२ ईस्वी में जब कांग्रेस का अधिवेशन प्रयाग में फिर हुआ, तब स्वागत समिति के एक पदाधिकारी भी चुने गये। इसके बाद तो वे प्राय सभी अधिवेशनों में शामिल होते रहे।

१९०२ में वे श्री जवाहरलाल जी के साथ बम्बई अधिवेशन में शामिल हुए। सर हेनरी काटन सभापति थे। यहीं नरम और गरम दल के भेद की नींव पड़ी। वह पूरे नरम थे। सन् १९०६ में इंगलैंड से लौट कर वह कलकत्ता कांग्रेस में शामिल हुए। यहाँ दोनों दलों का मतभेद स्पष्ट था। बाल, पाल, लाल और अरविन्द नरम दल वालों से सत्ता छीनने गये थे। बंग भंग के कारण देश का वातावरण अशान्त हो उठा था। पर मुख्य प्रस्ताव पर मालवीय जी, और मोतीलाल जी नेहरू प्रान्त के अन्य लोगों की सहायता से नरम दल को हारने से बचाया। सन् १९०७ ई० में मोतीलाल जी नेहरू युक्त प्रांतीय कान्फ्रेंस के सभापति हुए। सन् १९१३ में फिर लखनऊ की प्रान्तीय कान्फ्रेंस के सभापति हुए। सन् १९०६ से १९१६ तक बराबर कांग्रेस के प्रमुख सदस्यों में इनकी गिनती होती थी। प्राय सात वर्ष तक युक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी चुने गये। समाज-सुधार संबंधी अपने उग्र विचारों के कारण वह सामाजिक सम्मेलन एवं पटेल बिल कमेटी के अध्यक्ष भी चुने गये। बहुत दिनों तक सेवा समिति, विद्या मंदिर हाई स्कूल, होमरूल लीग और बार एसोसियेशन के ये सभापति भी थे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की वह बैठक जिसमें कांग्रेस—लीग योजना बनी और सन् १९१६ में कांग्रेस ने लखनऊ में जिसे मंजूर किया, आनन्दभवन में तैयार हुई थी। मोतीलाल जी सन् १९१८ वाले विशेष प्रांतीय कांग्रेस अधिवेशन के सभापति चुने गये। यहीं से वे सदा के लिए नरम दल वालों से अलग हो गये।

पंजाब हत्याकांड के समय मोतीलाल जी नेहरू ने उसकी अकथनीय सेवा की। हजारों रुपये तारों में खर्च किये। मोतीलाल जी ने प्रयाग में

भाषण देते हुए कहा कि "कोई शासन सुधार भारत को स्वीकार न होगा, जब तक राजबन्दी छोड़ नहीं दिये जाते और हत्याकांड की जाँच नहीं होती"। सरकार ने दोनों शर्तें मान ली। कुछ राजबन्दी छोड़ दिये गये और जाँच के लिए हण्टर कमेटी बैठाई गई। सरकारी जाच मे पोल और ढील देख कर कांग्रेस ने मोतीलाल जी की अध्यक्षता में जाँच कमेटी बैठाई। दिसम्बर सन् १६१६ में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। वह उसके सभापति बनाये गये। वस्तुतः १६१८ ई० में ही ये दिल्ली अधिवेशन के लिए अध्यक्ष चुने गये थे।

इलाहाबाद के नवाब प० मोतीलाल जी नेहरू

राष्ट्रपिता बापू ने असहयोग का पाञ्चजन्य फूँका। मोतीलाल जी ने कांग्रेस से लौटते ही वकालत छोड़ दी, भोग विलास छोड़ दिया और विदेशी वस्त्रों की आलमारियों की अलमारियाँ आग में झोंक दीं। जो स्वदेशी न था, विदेशी था, उसे एक एक कर भस्म कर दिया। मोतीलाल जी ने अपने जीवन को एकदम बदल दिया। ६ दिसम्बर १६२१ को वे गिरफ़ार किये गये, असहयोग आन्दोलन के स्थगित होने पर, लखनऊ में कांग्रेसकार्यकारिणी की बैठक और सत्याग्रह जाँच कमेटी की बैठक इनकी अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। रिपोर्ट में देश को सत्याग्रह के अनुकूल नहीं बताया गया था। देशबन्धु चितरंजनदास के साथ आपने स्वराज्य दल

की स्थापना किया। बड़ी कौंसिल के लिए सन् १९२३ में वे निर्विरोध चुने गये। असेम्बली में आपने स्वराज्यदल का नेतृत्व किया। रूस सरकार के निमंत्रण पर १९२७ में आप रूस गये। साइमन कमीशन के बायकाट के उपरान्त शासन विधान का एक मसविदा तैयार करने के लिए नेहरू कमेटी बनी। इस कमेटी की रिपोर्ट 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। लखनऊ में सर्वदल सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, और नेहरू रिपोर्ट मुसलमानों तथा स्वतंत्रतावादियों के विरोध के बीच भी स्वीकार की गई। सन् १९२८ ई० में कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से आपका स्वागत बड़ी धूमधाम से किया गया। प्रधान सेनापति नेताजी सुभाष बोस २००० वालन्टियरों, ५० घुड़सवारों और २०० साइकिल सवारों के साथ ३६ घोड़ों से खींची जाने वाली गाड़ी के आगे आगे चले। अपने ही हाथों नेहरू रिपोर्ट रद्द करके आपने सन् १९२९ में अपने एक मात्र पुत्र जवाहरलाल जी नेहरू को रावी के पवित्र तट पर स्वतन्त्रता की जिम्मेदारी सौंप दी और आदेश दिया 'पिदर न तवा पिसर तमाम कुनद" अर्थात् जो काम बाप के किये नहीं हुआ उसे पुत्र पूरा करेगा।

अन्त में भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ते-लड़ते ६ फरवरी सन् १९३१ ई० को वे वीरगति को प्राप्त हुए। मरते हुए उन्होंने कहा था—"मैं रोग से लड़ूंगा, भाग्य से लड़ूंगा, मैं मृत्यु से लड़ूँगा और उसके बाद गुलामी के राक्षस से लड़ूंगा।" फिर बोले "यदि मरना ही हो तो मुझे स्वतन्त्र भारत की गोद में मरने दो। मुझे अंतिम नींद गुलाम देश में नहीं स्वतन्त्र देश में लेने दो।" अन्त में उन्होंने गांधी जी से कहा "भारत का निर्णय स्वराज्य भवन में करो, मेरी उपस्थिति में करो और अपनी मातृभूमि के भाग्य के अंतिम सम्मानपूर्ण निर्णय में मुझे भाग लेने दो।"

मोतीलाल जी राष्ट्र-निर्माता, असाधारण त्यागी और असाधारण राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने मार्ग प्रदर्शन से हमारा पथ बहुत सुगम कर दिया और भारतीय राजनीति की एक रूपरेखा बना दी। उनकी समाधि से यही ध्वनि निकलती है—

> दुआएं दें मेरे बाद आने वाले मेरी वहशत को,
> बहुत कांटे निकल आये मेरी हमराह मंजिल से।

मोतीलाल जी के समय में प्रयाग नगर में सर्व श्री जवाहरलाल नेहरू, राजर्षि

टंडन, मोहनलाल नेहरू, श्यामलाल नेहरू प० सुन्दरलाल, उमा नेहरू, कृष्ण कान्त मालवीय, कपिलदेव मालवीय, केशवदेव मालवीय, गोविन्दकान्त मालवीय, गौरीशंकर मिश्र, देवदास गांधी, रवीन्द्रनाथ बसु, परमात्मासिंह, जगन्नाथ प्रसाद अग्रवाल, गुरुनारायण खन्ना, सैय्यद अब्दुल मुईद, कुँवर बहारी माथुर, प्रोफेसर रसियाराम, शेख मुईनुद्दीन, टीका राम त्रिपाठी, शेख मुईनउद्दीन सिद्दीकी, प्रेम-नारायण मालवीय, शेख हमीद अहमद, कमालउद्दीन जाफरी, वेंकटराम अय्यर, जार्ज जोसेफ, सी० एस० रंगाअय्यर, मास्टर मथुरा प्रसाद, भगवती प्रसाद, डा० गिरवर सहाय सक्सेना, बद्रीप्रसाद सिनहा, रघुपति सहाय फिराक, आदि प्रमुख कार्यकर्त्ता थे।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन—मुस्लिम लीग के सर्वेसर्वा मोहम्मद-अली जिन्ना के दुराग्रह और कूटनीति शिरोमणि अंग्रेजों के कुचक्रों से भारत के टुकड़े टुकड़े किये जाने की घोषणा जब राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस की ओर से की जाने वाली थी, हमारे तीस साल के तपे तपाये चोटी के नेताओं ने भी इसी में कल्याण की बात सोची थे, उस समय केवल टण्डन जी ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने सारे कांग्रेस के सम्पूर्ण कमेटी का मुकाबिला किया, कांग्रेस के अधिवेशन में तीव्र और सबल शब्दों में प्रतिवाद किया, किन्तु गाड़ी आगे जा चुकी थी, तीर छूट चुका था, अब कांग्रेस सुनकर ही क्या कर सकती थी। फिर तो जो कुछ हुआ वह स्वतन्त्र भारत के इतिहास के पृष्ठों पर अनन्त काल तक के लिये अमिट रहेगा।

युक्त प्रान्त की सरकार ने जिस 'प्रान्तीय रक्षक दल' की स्थापना की है, अथवा अन्य प्रान्तों में जो इसी स्तर पर अर्द्ध सरकारी अथवा विशुद्ध जनता वर्ग के सगठन चल रहे हैं, वे सब टन्डन जी के 'हिन्द रक्षक दल' की प्रतिकृति मात्र हैं। इसके अतिरिक्त सर्वप्रथम टण्डन जी ने ही हिन्द भर के किसानों के सगठन को जन्म दिया था, किसान सभा उन्हीं की स्थापित संस्था है। जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव अथवा विचार उन्हीं के दूरदर्शी मस्तिष्क की उपज है। विद्यापीठ शब्द तथा उसके महत्व का स्पष्टीकरण सबसे पहिले इन्होंने ही किया था।

राजर्षि टण्डन जी का जन्म मालवीय जी के जन्मस्थान मुहल्ले अहियापुर

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

में एक साधारण खत्री परिवार में सम्वत १६३६ विक्रमी के अधिक श्रावण मास (मलमास अथवा पुरुषोत्तम मास) की द्वितीया तिथि को हुआ। यही कारण है कि आपका नाम पुरुषोत्तमदास रखा गया। टण्डन जी के पिता श्री सालिगराम टण्डन इलाहाबाद स्थित एकाउन्टेन्ट जनरल के आफिस में काम करते थे जो आगरा स्थित स्वामी बाग के राधास्वामी मत के सत्संगी थे। टण्डन जी का बचपन बड़े लाड़ प्यार और आशाओं से भरा था।

टण्डन जी की शिक्षा दीक्षा सब कुछ प्रयाग में हुई। एक प्रकार से बहुत दिनों तक इनकी कर्मभूमि भी प्रयाग ही रही। पहिले पहिल सिटी ऐंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर स्थानीय गवर्नमेंट स्कूल से इन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा पास की। इसके पश्चात म्योर सेन्ट्रल कालेज से बी. ए., एम. ए. और साथ साथ वकालत की परीक्षा भी पास कर लिया। सर तेजबहादुर सपरू की देख रेख में वकालत करने का श्रीगणेश कर दिया और थोड़े ही काल में प्रयाग के चोटी के वकीलों में गणना होने लगी। इसी समय स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, कांग्रेस में नवीन स्फूर्ति और चेतना आई। आपने सक्रिय रूप से इन आन्दोलनों में भाग लिया। उस समय सूबे की कांग्रेस के तो आप सर्वेसर्वा थे। एक बार अर्थाभाव के कारण जब वैतनिक कर्मचारियों का बहुत सा रुपया कांग्रेस कार्यालय पर पावना हुआ तो आपने अपने चढ़ने की टमटम और घोड़ा बेचकर उसे अदा किया।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन जो महामना मालवीय जी के अध्यक्षता में काशी में १० अक्टूबर सन् १६१० ई० को हुआ उसके आप प्रथम मंत्री चुने गये। इन्होंने दूसरे वर्ष इस सम्मेलन को प्रयाग में बुलाने का आयोजन किया। फिर तो इसकी ऐसी लगन टण्डन जी पर लगी कि वकालत का आधे से अधिक समय वह इस हिन्दी सम्मेलन पर लगाने लगे। आगे चलकर गांधी जी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन के दिनों में सदा के लिये आपकी वकालत छूट गई और सम्मेलन ने उनके हृदय, मस्तिष्क और व्यक्तित्व पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया। संक्षेप में ऐसा कहना अत्युक्ति न होगी कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिये टण्डन जी ने वही कार्य किया जो मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये किया, अथवा राष्ट्रपिता बापू ने कांग्रेस के लिये किया। आज का हिन्दी साहित्य

सम्मेलन जो तीर्थराज का एक दर्शनीय स्थान समझा जाता है उसका आरम्भिक रूप जानसेनगंज स्थित टण्डन जी के मकान के साधारण कमरे में था।

सन् १६१४ ई० में मालवीय जी की प्रेरणा से टण्डन जी नाभा रियासत के कानून मंत्री नियुक्त हुए, किन्तु सन् १६१८ ई० के साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में इनके शरीक होने के रास्ते में रियासत की से ओर जो अड़गा डाला गया, रियासत के मंत्री पद से सदा के लिये त्याग पत्र देने के लिए उन्हें विवश किया।

सन् १६१६ ई० में टण्डन जी इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन चुने गये। इसके बाद *असहयोग आन्दोलन का समय आया, टण्डन जी* ने अपनी शान से चलती हुई वकालत को सदा के लिये ठुकरा दिया। उनके परिवार तथा प्रियजनों के लिये ये दिन बड़े संकट के रहे। उनके मित्रों तथा सहवासियों का कहना है कि कई सप्ताह तथा महीने इन्हें चने, मूँगफली, तथा इसी प्रकार के अन्यान्य किफायती कदन्नों पर बिताने पड़े, किन्तु इसमें वे *विचलित* नहीं हुए। *टण्डन जी चेयरमैनी की दशा में भी पैदल ही म्युनिसिपल बोर्ड के* आफिस में प्रतिदिन जाया करते थे। बोर्ड के इस स्वीकृत प्रस्ताव को, कि इनके लिये बोर्ड के खर्चे से मोटर दिया जाय, सार्वजनिक धन का दुरुपयोग कह कर इन्होंने अस्वीकार कर दिया। जब आप चेयरमैन हुए थे उससे पूर्व से ही कई वर्षों से म्यूनिसिपल बोर्ड के पानी का हजारों रुपया *अंग्रेजी सैनिक अधिकारियों* द्वारा सचालित कैन्टून्मन्ट पर बकाया चला *आता था। किसी पूर्ववर्ती चेयरमैन* में इतनी हिम्मत नहीं थी, जो इन सैनिक अधिकारियों से रुपया वसूल करने की चेष्टा करता। इन्होंने रुपया जमा कर देने का नोटिस दी, अवधि समाप्त होने पर कैन्टून्मेन्ट एरिया के पानी के सब बम्बे काट दिये गये। फिर तो सारा बकाया *रुपया जमा किया गया। इसी तरह एक बार इन्होंने लाट साहेब की कोठी को* पानी देने से इन्कार कर दिया था।

राजनैतिक क्षेत्र में वह बंग-भंग के समय से आज तक कांग्रेस के चोटी के सदस्य रहते आये हैं। जिला, नगर तथा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के सभापति होते आये हैं। अन्त में वह अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन के सभापति चुने गये। आप स्थानीय बोर्ड के चेयरमैन, प्रान्तीय एसेम्बली के स्पीकर होते आये हैं। आजकल *ये भारतीय पार्लियामेन्ट के सदस्य हैं।* पिछले चुनाव में देश में *कांग्रेस के प्रत्येक*

उम्मीदवार, यहाँ तक कि देशरत्न प० जवाहरलाल नेहरू ऐसे व्यक्ति का भी विरोध हुआ, किन्तु इस आंधी में भी सारे भारत में यही एक व्यक्ति थे जो प्रयाग से निर्विरोध पार्लियामेन्ट के सदस्य चुने गये। यह उनके लिये नहीं अपितु प्रयाग के लिये गौरव की बात है।

माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री—शास्त्री जी बनारस स्टेट के एक गाँव में सन् १६०४ में पैदा हुए थे। आप बचपन से ही सौम्य तथा प्रतिभाशाली थे। आपकी शिक्षा दीक्षा काशी विद्यापीठ ऐसे शुद्ध राष्ट्रीय संस्था में हुई है जो कि असहयोग के तूफानी दिनों में काशी के नेताओं द्वारा संस्थापित किया गया था। सन् १६२१ में जबकि आप केवल १७ ही बरस के थे तभी से सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था और परिणाम स्वरूप गिरफ्तार भी कर लिये गये थे। राजर्षि टण्डन जी के निकट सम्पर्क में होने के कारण आप लाला लाजपतराय द्वारा संस्थापित 'सरवन्ट आफ प्युपुल सोसाइटी' के सन् १६२६ में सदस्य हो गये। सन् १६३० में नमक सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले में आपको ढाई वर्ष की सजा हुई थी। सन् १६३१ से ४२ तक आप उत्तर प्रदेशीय प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री थे। सन् १६३७ में आप प्रान्तीय

माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री

व्यवस्थापक सभा के सदस्य चुने गये। सन १६४५ में आप प्रान्तीय कांग्रेस पार्लेयामेन्टरी बोर्ड के सदस्य हो गये। सन १६४६ में पुनः प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्य चुने जाने के बाद आप मुख्य मंत्री के पार्लेयामेन्टरी सिक्रेट्री नियुक्त हुए। सन् १६४७ मे आप पुलिस तथा यातायात विभाग के मंत्री हुये। प० जवाहर लाल नेहरू प्रधान मंत्री के आज्ञानुसार आपने प्रान्त के मन्त्रित्व से त्याग पत्र दे दिया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री नियुक्त हुए। गत चुनाव में आप प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्य चुने गये थे किन्तु आपकी कार्यकुशलता और ईमानदारी ने प० नेहरू का ध्यान आपकी ओर आकर्षित किया। फलतः प्रान्तीय धारा सभा से राज्यपरिषद दिल्ली के सदस्य चुने जाने के पश्चात आजकल आप केन्द्रीय सरकार के रेलवे मंत्री हैं।

माननीय श्री मंगला प्रसाद जी—राजनीति में प्रयाग का एक प्रमुख स्थान है, इसलिये नहीं कि इस नगर ने बड़े बड़े धुरन्धर व्यक्तियों को भारत माता की सेवा के लिये अर्पण किये। बल्कि इस लिए भी कि स्वतन्त्रता के पहिले संग्राम असहयोग आन्दोलन में इस नगर का पहिला व्यक्ति गिरफ्तार हुआ, और इस गिरफ्तारी से विद्यार्थी क्षेत्र में काफी क्षोभ उत्पन्न हुआ। वह व्यक्ति थे श्री मंगला प्रसाद जी जो आजकल उत्तर प्रदेशीय सरकार के सहकारी तथा विकास विभाग के उपमंत्री तथा व्यवस्थापक सभा में शासनारूढ़ कांग्रेस दल के सचेतक हैं।

माननीय श्री मंगला प्रसाद जी

आप इलाहाबाद जिले के एक गाँव बामपुर के रहनेवाले हैं। आपका जन्म

जिला बनारस के अन्तर्गत चकियागाँव में सन् १८६६ ई० में हुआ। आपके पिता मुशी बनवारीलाल एवं आपके चचा बनारस स्टेट में मुलाजिम थे- इसलिये आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ज्ञानपुर में ही सम्पन्न हुई। सन् १९०८ में पिता के आकस्मिक मृत्यु हो जाने के कारण आपको सब प्रकार के कष्ट सहने पड़े। सन् १९१६ में आप मैट्रीकुलेशन परीक्षा पास करके अमेरिका चले जाने के लिये घर से भाग गये थे किन्तु बरमा से ही पुन भारत लौट आना पड़ा। बीच में कई साल का विघ्न पार करके १९२५ में विश्वविद्यालय की शिक्षा प्रयाग म समाप्त किया, यद्यपि इस काल म भी आपको शिक्षा के व्यय भार सम्बन्धी कष्ट उठाना पड़ा। होमरुल आन्दोलन के समय सन् १९१६ से ही आपको राजनीति का चसका लगा। किन्तु सन् १९२० में तो आप आन्दोलन में पूर्णरूपेण भाग लेने लग गये। इसी साल आप अखिल भारतीय विद्यार्थी सघ के कार्यकारिणी के सदस्य भी चुने गये। सन् १९२१ ने आन्दोलन में विद्यार्थियों का जो दल पकड़ा गया था उसमें आप प्रथम तथा मुख्य थे। इस दल के मुकदमे से समस्त भारत में सनसनी फैल गई थी।

सार्वजनिक सेवा के प्रारम्भिक काल में आपन किसानों के लिये बहुत कुछ कार्य किया, क्योंकि आपका ऐसा विश्वास था और अब भी है कि देश के किसानो की समस्या देश के राजनीति के रीढ है। सन् १९२० म रायबरेली म किसाना के ऊपर गोली चलाई गई थी, इस परिस्थिति का सभालने के लिये प० जवाहर लाल नेहरू के साथ साथ आप भी गये थ। प्रतापगढ के किसाना का सगठित करने में आपका प्रमुख हाथ था। यही किसान सगठन आगे चलकर कांग्रेस का सगठन बन गया। इन्हाने खादी तैयार करने और बेचने का भी प्रचार किया और सन् १९२१ में एक खद्दर भण्डार भी खोला था। सन् १९३२ में प्रसिद्ध भटपरिया केस के आप प्रमुख वकील थे और इस मुकदम के पश्चात् आपने वकालत सदा क लिये छोड़ दी। इसके बाद आप कॉंग्रेस को सगठित करने में भली भाति दत्तचित्त हो गये। असहयोग आन्दोलन १९२०, सत्याग्रह आन्दालन १९३० ३१, म आपने प्रमुख भाग लिया और व्यक्तिगत सत्याग्रह १९४१ में आप अग्रिनायक नियुक्त हुए। सन् १९४० मे सब नेताओं के साथ आप गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये। कार्यन्दमता के कारण आप प्रान्तीय कांग्रेस

कमेटी के मंत्री, कांग्रेस स्वयं सेवक दल के संचालक, और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य नियुक्त हुए। आज कल भी आप प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी कार्य कारिणी के प्रमुख सदस्य हैं।

नौ साल तक आप प्रयाग नगर पालिका के मेम्बर तथा उसी की ओर से इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट के सदस्य थे। *श्रीमती विजयलक्ष्मी के इस्तीफा के बाद और कुछ* दिनों तक आप नगर पालिका के शिक्षा विभाग के चेयरमैन भी थे। सन् १९४६ में आप प्रान्तीय धारा सभा के सदस्य तथा कांग्रेस दल के मुख्य सारथी नियुक्त हुए। इसके बाद आप धारा सभा सम्बन्धी कार्य के लिये मंत्री हुए। *आजकल आप सहकारिता तथा विकास विभाग के उपमंत्री हैं।*

माननीय श्री मोहनलाल गौतम—यह जिला आपका कार्य क्षेत्र रहा है। इस जिले के देहात से सन १९३२ के सत्याग्रह *आन्दोलन में हनुमानगंज* स्थान में घोड़ों की टापा के बीच में आपने लगानबन्दी की दुन्दुभी बजाई थी। राजर्षि टण्डन जी के नेतृत्व में किसान आन्दोलन का भारतीय संगठन आपने ही किया और सफल भी बनाया था। स्वायत्त शासन विभाग में पहिले पहिल म्युनिस्पिल बोर्ड इलाहाबाद के सदस्य के नाते, यहीं आपने भाग लिया था। प्रयाग को आपने छोड़कर

माननीय श्री मोहनलाल गौतम

लखनऊ मे काग्रेस के प्रान्तीय भार को, और अन्त मे दिल्ली जाकर अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के महामत्री के पद को सभालकर अपनी महान् सगठन शक्ति का परिचय दिया था। विद्यार्थी जीवन के स्वराज्य आश्रम वासी से लेकर काग्रेस के महामत्री के पद पर पहुँचना आपकी सतत बढती हुई शक्ति का परिचायक है।

आपका जन्म ५ अगस्त १६०२ ई० का जिला अलीगढ स्थित वीरपुरा ग्राम मे हुआ था। किन्तु आपका राजनैतिक क्षेत्र प्रयाग रहा है। उत्तर प्रदेश और पजाब में शिक्षा प्राप्त किया। अक्टूबर १६२० ई० की कालेज से ही असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और मार्च १६२४ ई० तक उसमें काम करते रहे। सन् १६२२ ई० मे नेशनल यूनिवर्सिटी लाहौर मे प्रवेश किया और १६२४ ई० में वहाँ से बी० ए० आनर्स की डिग्री प्राप्त की। सन् १६३८ में लखनऊ के नेशनल हाईस्कूल की व्यवस्थापिका समिति के अध्यक्ष बने। लाहौर की सर्वेन्ट्स आफ पीपुल सोसाइटी के आजीवन सदस्य हैं। १६२४ ई० मे जिला गुरदासपुर मे हरिजन उत्थान कार्य का श्रीगणेश किया। १६२५ ई० मे वहाँ गिरफ्तार कर लिये गये। उसी वर्ष काकोरी षड्यन्त्र के सम्बन्ध मे फिर गिरफ्तार हुए किन्तु मुक्त कर दिये गये। १६२८ ई० मे साइमन कमीशन के आगमन के समय इतिहास प्रसिद्ध 'लाठी चार्ज' के अवसर पर आप लाला लाजपतराय के साथ थे। १६२६ ई० में अमृतसर में एक व्याख्यान देने के कारण पकडे गये और कैद की सजा दी गई। सन् १६२६ ई० में लाहौर के काग्रेस अधिवेशन की स्वागतकारिणी समिति के सेक्रेटरी बने। तदुपरान्त १६३० ई० मे इलाहाबाद चले आये और नमक-सत्याग्रह में भाग लिया, जिसमे ६ मास की कैद की सजा मिली। सन् १६३० मे ही यू० पी० काग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी हो गये और मई १६३१ ई० में मिर्जापुर की प्रान्तीय राजनैतिक बैठक के अवसर पर केन्द्रीय किसान सघ का सगठन किया। १६३२ ई० मे 'लगान मत दो' आन्दोलन के प्रचार करने के कारण ढाई वर्ष के कैद की सजा और १६३४ ई० में 'जमींदारी उन्मूलन' पर एक पुस्तिका निकालने के परिणाम-स्वरूप ६ मास के कैद की सजा हुई। १६३४ ई० म अखिल भारतीय काग्रेस समाजवादी दल के बनने पर उसके सेक्रेटरियो मे से एक थे। १६३५ ई० में इलाहाबाद नगरपालिका के सदस्य चुने गये। अखिल भारतीय किसान सघ के

निर्माताओं में से एक थे और १९३६ ई० में उसके प्रथम सेक्रेटरी भी बनाये गये। १९३७ ई० में यू० पी० विधान सभा के सदस्य, यू० पी० विधान सदन में कांग्रेस पार्टी के सेक्रेटरी और १९४० ई० में अखिल भारतीय किसान सभा के अध्यक्ष चुने गये। १९४१ ई० में नजरबन्द किये गये तत्पश्चात् २ वर्ष फरार रह कर सन १९४२ के गुप्त आन्दोलन में भाग लेते रहे। सन् १९४६ ई० में यू० पी० कांग्रेस समाजवादी दल के जनरल सेक्रेटरी तथा कांग्रेस पार्लियामेन्टरी बोर्ड के संयोजक भी रहे। १९४८ ई० में यू० पी० की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेट्री तथा बाद में विधान सभा में कांग्रेस दल के सेक्रेट्री चुने गये। १९४९ ई० में स्टाकहोम (स्वेडन) में विश्व—ससदों के अन्तर्राष्ट्रीय संसद संघ के अवसर पर भारत के ससद का प्रतिनिधित्व करनेवाले शिष्ट मडल के अगुवा रहे और ४ वर्ष के लिए उसकी कार्यकारिणी के लिए सदस्य चुने गये। तत्पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय ससद सघ की कार्यकारिणी की बैठकों में भाग लेने के लिए तीन बार यूरोप गये। अक्टूबर, १९५० ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए। 'संघर्ष' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक का संस्थापन किया और लाला लाजपत राय द्वारा संस्थापित 'पीपुल' नामक एक अंग्रेजी साप्ताहिक के प्रबन्ध सम्पादक रहे। प्रौढ मताधिकार के अधीन पहले आम चुनाव में आप प्रदेशीय विधान सभा के लिए मेम्बर चुने गये। मई, १९५० ई० में मंत्री (स्वायत्त शासन) नियुक्त हुए।

माननीय केशवदेव मालवीय—आप महामना मालवीय जी के सम्बन्ध में पौत्र हैं। म्यार कालेज इलाहाबाद में आप एम० ए० में पढ़ते थे। वहां से आपने बड़े भाई प० कपिलदेव मालवीय के गिरफ्तार होने पर पढ़ाई छोड़ दिया और उसी दिन से कांग्रेस के कार्य में लग गये। इसके बाद आप शहर कांग्रेस कमेटी के मंत्री बनाये गये। आपने अपने जिले में भ्रमण किया। इसके बाद जब आपने प० जवाहरलाल नेहरू के साथ बजाजों की दूकान पर धरना शुरू किया तब आप भी इसी अपराध में उनके साथ १२ मई १९२२ को गिरफ्तार कर लिये गये। १०८ और ५०६ दफा के अनुसार आपको अठारह महीने की सजा और सौ रुपये जुर्माना किया गया और लखनऊ जेल दिये गये। इसके बाद आपने एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त किया। सन् १९२२ से आज तक कांग्रेस के प्रत्येक गति प्रगति में शामिल रहे और सख्ती और सजाएं भोगते रहे। सन्

१६२७ में आप यू० पी० के एम० एल० ए० चुने गये। सन् १६४४ ई० में फिर आप एम० एल० ए० चुने गये। पहिले आप मुख्य मन्त्री पन्त के पार्लियामेन्टरी सिक्रेट्री बाद में आप विकास तथा सहकारी विभाग के मन्त्री नियुक्त हुए। सन् १६५२ ई० में आप पार्लियामन्ट के मम्बर चुने गये और अब आजकल आप 'प्राकृतिक साधन' विभाग के उपमन्त्री पद पर दिल्ली में काम कर रहे हैं।

श्री बद्रीप्रसाद सिनहा—सन् १६५२ के गत सार्वजनिक चुनाव में इलाहाबाद के पूर्वी क्षेत्र से प० जवाहरलाल नेहरू पार्लियामेन्ट की सदस्यता के लिये खड़े हुए। पंडितजी के विरोधियों ने जिसमें कांग्रेस से निकाले हुए कुछ बड़े बड़े नेता, प्रान्त के साम्प्रदायिक नेता तथा पूँजीपति लोग थे, एक आदमी का खड़ा किया और अन्दर अन्दर वे ही लोग चुनाव का कुल आन्दोलन संचालित करते रहे। अन्त में नेहरू जी के विरोधी ने 'हिन्दू कोडबिल' को चुनाव का केन्द्रीय बिन्दु बनाकर उनको ७ सार्वजनिक सभाओं में मत प्राप्त करके हार जीत के लिये चुनौती दिया। पन्द्रह दिन तक कांग्रेस, नेहरू जी एवं उनके किसी साथी ने जब उस चुनौती को स्वीकार नहीं किया, तो जनता में नेहरू जी के विरुद्ध भ्रम फैलने लगा।

श्री बद्रीप्रसाद सिनहा

ऐसे ही समय पर बाबू बद्रीप्रसाद जीने सार्वजनिक वक्तव्य द्वारा, जिसका उल्लेख

उस समय के प्रायः सभी समाचार पत्रों में छपा था, उस चुनौती को स्वीकार किया था। सिन्हा जी का यह कार्य प्रथम कार्य नहीं था, अपने सार्वजनिक जीवन में उन्होंने अधिकांश ऐसे ही काम किये हैं। अन्याय तथा अनुचित कार्य के विरुद्ध सफलता पूर्वक खड़ा होना ही आपके सार्वजनिक जीवन का लक्ष्य बिन्दु रहा है। संस्थाओं में भी जिसके आप सदस्य हैं विरोधी पक्ष के नेतृत्व का काम करते हैं।

हँडिया तहसील के एक प्रतिष्ठित कायस्थ कुल में आपका जन्म ३ दिसम्बर १९०४ को हुआ। आप स्वभावतः पक्षी की भाँति स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य हैं। किसी के मातहती में काम करने में असुविधा अनुभव करते हैं। आपका सार्वजनिक जीवन असहयोग काल में विद्यार्थी जीवन से ही शुरू होता है। सन् १९२१ ई० के असहयोग के जमाने में क्रिश्चियन कालेज प्रयाग में सर्वप्रथम आपने ही हड़ताल कराई थी। इस अपराध में आप गिरफ्तार हुए किन्तु मलाका जेल ले जाकर उसी दिन बहुत से विद्यार्थियों के साथ छोड़ दिये गये। तब से आज तक किसी न किसी रूप में सार्वजनिक सेवा करते आ रहे हैं। कांग्रेस के सामूहिक कार्य के अतिरिक्त आपके कुछ स्वतंत्र सार्वजनिक सेवाओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

(१) कोरगज के एक क्षयरोग ग्रसित पोस्टमैन को सहायता देने के सिलसिले में आपने एक 'कायस्थ हितकारी सभा' की संस्थापना कर दी जो आज तक किसी न किसी रूप में कुछ पीड़ित, रोगियों तथा विधवाओं की सेवा कर रही है।

(२) सन् १९२८ ई० में कांग्रेस की ओर से हँडिया तहसील के एक बहुत बड़े ताल्लुकेदार के विरुद्ध चुनाव लड़ने के सिलसिले में ही प्रयाग का प्रसिद्ध रामलीला जो लगभग चार साल से बन्द हो गया था और कतिपय नेताओं तथा संस्थाओं के सुलझाने से भी न सुलझा था आप अकेले ही इस काम में जुट पड़े और अन्त में १९३६ में रामलीला का कार्य्य आरम्भ करा दिया जो अब तक उसी नियम से जारी है।

(३) सन् १९३४ में प्रयाग म्युनिसिपलबोर्ड ने पानी पर मीटर लगाने का स्कीम पास किया, मीटर भी विदेश से मँगाये जा चुके थे, इसके विरुद्ध भी आपने 'सिटिजन्स एसोसियेशन' खोलकर अकेले ही भिड़ पड़े और अन्त में

छः महीने के लगातार आन्दोलन के बाद यह स्कीम बोर्ड द्वारा ही रद्द कर दिया गया।

(४) कीटगंज स्थित प्राचीन काली मन्दिर में शंख, घण्टा, घड़ियाल बजाने के विरुद्ध मुस्लिम लीग ने आवाज उठाई, हिन्दुओं ने विवश होकर नमाज के समय बाजा न बजाने की शर्त पर हस्ताक्षर कर दिया। इस अन्याय के विरुद्ध भी आप अकेले ही उठे और चौबीस घंटे के अन्दर शर्तनामा रद्द कराया तत्पश्चात् हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा बहुत बढ़ गया। १८ रोज तक करफ्यू आर्डर रहा। आपने उपद्रवी मुसलमानों के विरुद्ध मुकदमा चलवाकर २६ मुसलमानों को सजा कराई और तीन व्यक्ति पर कत्ल का मुकदमा चलवाया। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों की ताजियादारी कीटगंज में सन् १६४० से अब तक बन्द है और फिर मुसलमानों ने आज तक ऐसे उपद्रव का नाम नहीं लिया।

(५) रामलीला के सहानुभूति में कीटगंज का भारत प्रसिद्ध 'दधिकान्दव उत्सव' बन्द हो गया था उसको भी आपने जारी कराया।

सन् १६४० ई० में बदायूं जिला स्थित नगला—शरकी के लगभग ४ हजार हिन्दू, हिन्दू मुस्लिम उपद्रवों के कारण घर बार छोड़ दिया, सरकार की ओर से सुनवाई न होने पर आप प्रयाग से बदायूँ गये और जोरदार आन्दोलन करके, तत्कालिक लाट के पास डेपुटेशन ले जाकर उनको फिर बसवाया। इसके अतिरिक्त नगर में होनेवाले प्रत्येक अन्याय के विरुद्ध खड़े होकर सफलता-पूर्वक काम करते रहे। इस समय आप कई संस्था ट्रेडर्स एसोसियेशन, अनाथालय, सिनेमा कर्मचारी यूनियन, कायस्थ पाठशाला आदि प्रमुख संस्थाओं के जिम्मेदार कार्यकर्ता हैं।

जवाहर-कालीन कांग्रेस

स्वतन्त्रता का युग

पं० मोतीलाल जी नेहरू ने भारत को पूर्ण स्वराज्य कराने का कण्टकाकीर्ण मार्ग प्रशस्त किया, और शेष कार्य्य उनके योग्य पुत्र प० जवाहरलाल ने किया। पिता ने नेहरू रिपोर्ट तैयार किया, सर्वदल सम्मेलन लखनऊ द्वारा उसे स्वीकृति कराके भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य के माँग के दर्जे तक पहुँचाया। पुत्र ने इस माँग और नेहरू रिपोर्ट का खुल्लमखुल्ला विरोध किया। अन्त में पिता की अध्यक्षता में हुई कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में बापू के बाच-बचाव द्वारा पिता पुत्र समझौता हुआ। नेहरू रिपोर्ट रद्द किया गया और ब्रिटिश सरकार को ३१ दिसम्बर १९२९ तक औपनिवेशिक स्वराज स्वीकार करने की अन्तिम सूचना दी गई। इस प्रकार पिता पर पुत्र ने विजय प्राप्त की। कहा भी है "सर्वत्र विजय इच्छेत्पुत्रादिच्छेत् पराजयम्" अर्थात् सर्वत्र विजय चाहने-वाला पिता भी पुत्र से पराजय चाहता है।

१९२९ ई० के अन्तिम महीने के अन्तिम दिन और अन्तिम घड़ी तक रावी तट पर लाहौर कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार से भारत औपनिवेशिक स्वराज्य देने का कोई भी निश्चयात्मक उत्तर नहीं मिला। इस हालत में उसी समय प० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया। कांग्रेस अधिवेशन समाप्त होने पर हमारे नेताओं के मस्तिष्क में पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की धुन सवार हुई और अन्त में उन्होंने साम्राज्यवाद के फौलादी पंजे के साथ हाथ मिलाने का निर्णय किया। अपने युद्ध की रूपरेखा तैयार करने के लिए उन्होंने साबरमती में १४, १५ और १६ फरवरी १९३० को कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक बुलवाई। समिति ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। भारत में सबसे पहिले प० जवाहरलाल नेहरू गिरफ्तार किये गये। उसी समय महात्मा जी ने कहा था 'Jawahar la

stolen march over me" । इस गिरफ्तारी के विरोध में सब से पहिले प्रयाग स्थिति टण्डन पार्क में पिता की अध्यक्षता म विराट सभा हुई। उन्होने प्रसन्न मुद्रा म कहा "आज स्वतन्त्रता सग्राम का जनरल ब्रिगेडियर गिरफ्तार हुआ है" उसी समय सभा का अनुशासन भग करते हुए माधव शुक्ल ने कहा—

"आज देखना है किसमें कितना दम कितना पानी है।
निकल पड़े मैदान जग में गर कोई अभिमानी है।"

सत्याग्रह युद्ध—निश्चय ही यह पहिला मौका था जब कि कांग्रेस के सभापति प० जवाहरलाल नेहरू ने साफ शब्दों म भारतवर्ष का ध्येय, मार्ग और नीति जनता के सामने तीखेपन और स्पष्टता से रखी और कांग्रेस का ध्येय, 'पूर्ण स्वतन्त्रता' स्वीकार किया गया। पहिली बार कतई तौर पर 'सम्बन्ध विच्छेद' की बात कही गई। पहिली बार 'साम्यवाद' शब्द का प्रयोग सभापति के भाषण म हुआ। अन्तर्राष्ट्रीयता की बातें प० जवाहरलाल ने ही प्रथम बार देश के सामने रखी। जवाहरलाल ने पहिल पहिल रावी के तट पर पूर्ण स्वतन्त्रता का झण्डा फहराया। अब ध्येय साफ था और रास्ता भी। चाहे जो कुछ हो नेहरू जी ने रावी के पवित्र तट पर, पचनद के वक्षस्थल पर, स्वातन्त्र्य केतु फहरा दिया। औरगजेब के शब्दों म 'हरचे बादा बाद मा किश्ती दर आब अन्दाख्तेम' अर्थात् 'चाहे जो कुछ हो अब तो नाव समुद्र में छोड़ दी'। उस झण्डे की रक्षा करना, उसके भार का वहन करने के लिये अपने कधों को मजबूत करना, उसको राष्ट्र गगन में उन्नत रखना राष्ट्रपिता बापू का काम था।

२६ जनवरी सन् १९३० को समस्त भारत में स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया और स्वतन्त्रता की घोषणा दुहराई गई। गाधी जी ने अपनी ११शर्तें ब्रिटिश सरकार के सामने उपस्थित की। गाधी जी ने वायसराय को सूचनार्थ एक पत्र लिखा। असन्तोषजनक उत्तर मिलने पर १२ मार्च सन् १९३० को साबरमती आश्रम के ८० सहयोगियों के साथ नमक कानून भग करने के लिए गाधी जी ने दाडी यात्रा आरम्भ की। ६ अप्रैल को उन्होंने दाडी में नमक कानून भग किया। बस सारे देश म तुमुल युद्ध का पाचजन्य फूँक उठा।

प्रयाग म सबसे पहिले प० मोतीलाल नेहरू ने नमक कानून भग किया, जो अब तक आश्चर्य में पड़े हुए थे और यह कहा करते थे, How the Salt law can be broken, अर्थात् नमक-कानून कैसे भग किया जा सकता है।

पंडित जी गिरफ्तार हुए। बस, सारे प्रयाग प्रान्त में सत्याग्रह युद्ध छिड़ गया। सारा प्रयाग इस आन्दोलन में सराबोर हो गया। जिले में भिन्न भिन्न प्रकार के आन्दोलन चले। कहीं लगान बन्दी हुई, कहीं वृक्ष काटने का सत्याग्रह हुआ कहीं चौकीदारी टैक्स रोका गया। प्रयाग स्थित स्वराज्य भवन में रखी गई कांग्रेस की फाइलें, किताब, पर्चे, झण्डे सभी पुलिस उठा ले गई। सभाओं में लाठियाँ बरसाई गईं, भंग की गई। १४४ धारा लगाई गई, १०८ धारा के अनुसार लोग पकड़े गये। तलाशियाँ हुईं, प्रेस ज़ब्त हुए, ज़मानतें जब्त हुईं। *यहाँ तक कि कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को आश्रय देने पर भी सज़ाएँ दी गईं।* लोग गोली के शिकार हुए, औरतों के साथ बेहयाई का बर्त्ताव किया गया। दर्जे में बैठे हुए विद्यार्थी पीटे गये। *हँडिया तहसील के किसानों ने जो बहादुरी दिखाई* उसके कारण हँडिया दूसरा बारदोली बन जाने लगा।

अन्त में सरकार झुक गई। सरकार और कांग्रेस के बीच सर तेजबहादुर सप्रू के बिचवई से समझौता हुआ। सत्याग्रही छोड़े गये। कराची में धूमधाम से कांग्रेस हुई और उसके निश्चयानुसार कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि के हैसियत से गांधी जी, मालवीय जी को साथ लेकर गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस समझौते में कांग्रेस की ओर से नैनी जेल में सजा भोगते हुए नेहरू-द्वय का प्रमुख हाथ था। गोलमेज सम्मेलन से गांधी जी निराश लौटे। तुरन्त ही कांग्रेस की बैठक बम्बई में हुई, उसमें जाते हुए जवाहरलाल जी *नैनी स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गये। विवश होकर* कांग्रेस को पुनः सत्याग्रह चालू करना पड़ा। इस बार का शासन तो एकदम शुद्ध काले कानूनों का शासन था। धीरे धीरे सत्याग्रह आन्दोलन में शिथिलता आई।

१९३५ में कौंसिलों में पुनः जानेवालों का प्रभाव कांग्रेस में बढ़ गया। निर्वाचन का समय आ गया था। उसमें भाग लेने का निश्चय किया गया। जवाहरलाल जी इस निश्चय के विरुद्ध थे किन्तु उन्होंने चुनाव का तूफानी दौरा करके देश के कोने कोने में एक नवीन भावावेश उत्पन्न कर दिया। चुनाव में *कांग्रेस की अभूतपूर्व विजय हुई, जिसका श्रेय एक मात्र जवाहरलाल जी को है।* बाद में ब्रिटिश सरकार से मन्त्रियों के हर काम में अड़ंगा न डालने का निश्चय आश्वासन प्राप्त कर, कांग्रेस ने नौ प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बनाया।

सितम्बर सन् १९३९ में ब्रिटिश सरकार ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा की।

बिना मन्त्रिमण्डल से पूछे भारत को युद्ध में शरीक करने के विरोध में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफे दे दिये। कांग्रेस ने सरकार से यह माँग पेश की कि अगर युद्ध के बाद भारत को स्वतन्त्र कर देने का आश्वासन दे दिया जावे तो भारत इस युद्ध में अँग्रेजों को सहायता दे सकता है। इस मत के अगुआ थी राजगोपालाचार्य, आजाद और जवाहरलाल नेहरू थे। आठ अगस्त १९४० को मि० एमरी ने इससे भी इन्कार कर दिया। गाधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन जारी कर दिया। यह आन्दोलन एक नैतिक विरोध मात्र था। इसी समय अमरिका के तात्कालिक प्रेसीडेन्ट रुजवेल्ट ने 'अटलान्टिक चार्टर' की घोषणा किया जिसमें भारत का कोई उल्लेख नहीं था। इससे भारत में काफी नाराजी फैली। यूरोपीय युद्ध की गति धीरे धीरे बहुत तीव्र हो गई। यहाँ तक कि जापानी सेना बर्मा में प्रवेश कर गई। युद्ध भारत के द्वार पर आ गया।

इसी बीच सर तेजबहादुर सप्रू आदि गैर कांग्रेसी नेताओं ने एक 'निर्दल सम्मेलन' करके केन्द्र में जिम्मेदार सरकार के स्थापना की माँग की। चीन के प्रधान सेनापति मार्शल च्यांगकाई शेक भारत सरकार से सहयोग प्राप्त करने के लिए भारत आये। मार्शल ने यहाँ जवाहरलाल आदि नेताओं से भी भेंट किया। उन्होंने भारत सरकार से भारतीय नेताओं की माँगों को स्वीकार करने की अपील की। अप्रैल १९४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स इसी आधार पर समझौता करने के लिए भारत आए किन्तु वह असफल हुए।

गाधी जी और उनके अनुयायी तो शुरू से ही इस प्रकार के समझौते के विरुद्ध थे, किन्तु कांग्रेस में जो लोग देश की रक्षा के नाम पर शस्त्र ग्रहण के पक्षपाती थे, वे भी कटु हो गये। इन लोगों में से राजा जी अलग हो गये। उनका कहना था कि इस असाधारण संकट के समय हमें मुस्लिम लीग से किसी भी शर्त पर समझौता करके देश की रक्षा करनी चाहिए। दूसरे इसके विरुद्ध थे। गाधी जी दिन दिन कड़े पड़ते गये। श्री जवाहरलाल, मौलाना आजाद आदि नेताओं के हाथ से पथ प्रदर्शन चला गया। इनकी अहिंसा में कोई श्रद्धा न थी। ये लोग वास्तविक अधिकार मिलने पर ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने को तैयार थे। पर समझौता न हो सकने के कारण वह मार्ग इनके लिए बन्द हो गया। स्पष्टतः राष्ट्रीयता की प्रेरणात्मक शक्ति गाधी जी के हाथ में थी।

१९४२ में उनके पथ प्रदर्शन में कांग्रेस ने अंग्रेजों से देश छोड़कर चले जाने की अपील की। शनैः शनैः कटुता बढ़ती गई। ८ अगस्त को कांग्रेस कमेटी ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार किया। इसी रात को महात्मा गांधी जी के अन्तिम भाषण के बाद कांग्रेस कमेटी की बैठक समाप्त हुई। रात को ही गांधी जी तथा कांग्रेस के सब नेता गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारी के पूर्व बम्बई के टेलीफोन बेकार कर दिये गये। दूसरे दिन समस्त देश में गिरफ्तारियों का तांता लग गया। कांग्रेस संस्था हर जगह गैर कानूनी करार दी गई। खादी, शिक्षा, साहित्य आदि का काम करनेवाली राष्ट्रीय संस्थाएँ तथा उनके नौकर-चाकर के साथ भी रियायत न की गई। सरकार हर तरह उचित अनुचित साधनों द्वारा जनता की उमंग को सदा के लिए कुचल देने पर उतारू हो गई थी, नेताओं के अतिरिक्त छुट पुट जो कार्यकर्ता बच गये, वे छिप छिपे काम करना चाहते थे। सरकार के इस प्रहार से जनता किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गई, किन्तु बाद में उसे जो उचित समझ पड़ा उसने किया। तार तोड़ दिये गये, रेल की पटरियाँ उखाड़ दीं। थाना पर अधिकार कर लिया। इस पर सरकार पागल हो गई, पुलिस और फौज की लूट से गांव के गांव तबाह हो गये। घरों को फूँक दिया गया। ८, ९ साल की उमर की लड़कियों से लेकर साठ साठ साल तक की बुढ़िया तक पर बलात्कार किया गया। सरकारी गोलियों से कम से कम पन्द्रह हजार आदमी मरे। छात्रों एवं स्त्रियों ने इस आन्दोलन में प्रचुर भाग लिया।

४२ की जनक्रान्ति में प्रयाग—इस जनक्रान्ति में इलाहाबाद नगर का प्रमुख हाथ रहा। 'भारत छोड़ो' के ऐतिहासिक प्रस्ताव की पृष्ठभूमि, ६ महीने पहिले ही इलाहाबाद वाले अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जिसमें नगर के हिन्दुओं ने राजा जी को काला झण्डा दिखाया था, तैयार किया था। बम्बई की गिरफ्तारी की खबर यहाँ बिजली की तरह फैल गई और अपने आप उपद्रव शुरू हो गया। उस समय उत्तर प्रदेश में हैलेट और मूडी का एकतंत्री राज्य था, जिनको लोग यहाँ 'छोटा हिटलर' कहते थे। सब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटों को यह आज्ञा दिया गया (१) सब खद्दर पहिनने वाले पकड़ लिये जायँ (२) जुलूस निकलने पर गोली चला दी जाय, (३) एक तरफ से गिरफ्तारी, तलाशी, हवालात, जायदाद की कुर्की, सामूहिक जुर्माना, खतरनाक समझकर थानेदार को गोली मारने का अधिकार दिया गया। संक्षेप में इसे 'मार्शल ला' कहा जा सकता है।

यहाँ इलाहाबाद में सबसे पहिले डा० कैलाशनाथ काटजू जो बम्बई की मीटिंग में अस्वस्थता के कारण नहीं गये थे, पकड़ लिये गये।

तत्पश्चात् एक नाटकीय ढंग से श्रीमती विजयालक्ष्मी भी गिरफ्तार करके नैनी जेल भेज दी गईं, मोटर के घूमते वक्त सन्तरी ने अनजाने में गलती से गोली चला दी जिससे ड्राइवर का हाथ तो कट गया किन्तु वह बाल बाल बच गईं। दोपहर होते होते नगर और जिले के सब कांग्रेस कार्यकर्त्ता जेल में पहुँचा दिये गये। तलाशी लेने के बाद कांग्रेस का दफ़्तर पुलिस के मातहती में कर दिया गया, जो सन् १९४५ ई० तक शिमला कान्फ्रेन्स के समय तक पुलिस के ही अधिकार में रहा।

विद्यार्थियों का जुलूस शहर में दो दिन तक स्वच्छन्द घूमता रहा, पुलिस पीछा तो करती किन्तु पकड़ने या और कोई अन्य कार्रवाई के लिए तैयार नहीं थी। १२ अगस्त को विश्वविद्यालय के लड़कियों का एक जुलूस कटरा स्थित क्लेक्टरी और कचेहरी के मैदान में आया, पुलिस ने उसे तुरन्त रोक दिया। १५ मिनट तक दोनों में घूरा घूरी होती रही। इतने ही में अचानक ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट और डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस अपने छुकनेवाले जगह से निकलकर प्रत्यक्ष हो गये और पिस्तौल तानकर जुलूस को तितर बितर हो जाने की आज्ञा दी। किन्तु जुलूस के लोग एक इंच भी नहीं हटे। गोली चलाने की आज्ञा दी गई। लड़कियाँ लेट गईं और लड़के उनके बगल में खड़े हो गये गोलियाँ उनके बगल से सनासन उड़ रही थीं। इतने ही में एक लड़के ने उठकर कहा 'उठ'। इस पर एक हजार लड़के 'भारत छोड़ो' का नारा लगाते हुए उठ खड़े हुए। फिर गोली मारने की आज्ञा हुई। जुलूस वाले फिर लेट गये किन्तु एक लड़का जिसका नाम लाल पद्मधर था लेटने से इनकार कर दिया, उसको गोली मार दी गई। वह वहीं ढेर हो गया, इसके बाद कई लड़के उठे और इसी तरह घायल हुए। कुछ आदमी तो मरे हुए लड़के का शव लेकर चल दिये, किन्तु कुछ नहीं ठहरे रहे। पुलिस ने तीसरी बार गोली चलाई। किन्तु लड़कों का साहस बढ़ता ही गया। पुलिस हट गई, जुलूस आगे बढ़ा और एक निश्चय दृढ़ता के साथ निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गया। विश्वविद्यालय के लड़कों में दो दिन के बहस के बाद यह निश्चय किया कि शहर में मुफ़्त में जान गँवाने से देहात में इस आग

को फैलाना अच्छा है। इस निश्चय के साथ विद्यार्थी इलाहाबाद के जिले में फैल गये।

शहर में सूर्योदय से सूर्यास्त तक का करफ्यू आर्डर लगा दिया गया। शहर में पोस्ट आफिस, तार घर, बैंक, रेलवे स्टेशन, खजाने पर फौज के सिपाही तैनात कर दिये गये। और सारे शहर में फौजी मोटर लारी दौड़ती रही। सिनेमा के खेल एक दम बन्द कर दिये गये। गोरे, अंग्रेजों और ऐंग्लो-इण्डियनों को आज्ञा दी गई कि वे किसी समय भी किले में जाने के लिए तैयार रहें।

जनता ने इस बीच तार, टेलीफोन के खम्भे उखाड़ दिये। रेलवे लाइनें उखाड़ दी गईं। पोस्ट आफिस लूट लिये गये। जहाँ भी शक हुआ एक तरफ से सामूहिक गिरफ्तारियाँ शुरु कर दी गईं। शहर में खाद्यान्न की कमी हो गई। आदमियों की मान मर्यादा खतरे में हो गई। किन्तु जनता का उत्साह घटने के बजाय बढ़ता ही जा रहा था। पुलिस की सबसे बड़ी ज्यादती उस वक्त देखी गई जब कि वह विश्वविद्यालय में घुस कर बिना किसी विवेक के प्रोफेसरों और विद्यार्थियों को मारने लगी थी। पुलिस ने मास्टरों को दरजों में पढ़ाते समय पीटा और हजारों साइकिलें छीन लीं। सैकड़ों विद्यार्थी घायल हो होकर कराहते रहे। कोई पूछनेवाला नहीं था। इलाहाबाद का यह खूनी घटना इतिहास के पन्ना में स्वर्णाक्षरा में लिखा जायगा।

पं० जवाहरलाल नेहरु—भारत को आजाद करने में बापू के दाहिने हाथ, आजाद भारत में बापू के उत्तराधिकारी और आज पूर्वी संसार का उदीयमान सूर्य, प्रयाग नगर की अमर ज्योति, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ जवाहरलाल नेहरु सर्वप्रथम १६०३ वाले कांग्रेस अधिवेशन में अपने पिता के साथ शामिल हुये। सन् १६१२ में वे बैरिस्टर होकर विलायत से भारत लौटे। इसी साल नेहरु जी कांग्रेस के बांकीपुर (पटना) वाले अधिवेशन में एक प्रतिनिधि के रूप में गये। वहाँ कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं के अतिरिक्त श्री गोखले जी से भी वे मिले जो दक्षिण अफ्रीका से लौटे थे, तब से वे बराबर कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेते रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतियों को सहायता के लिए गोखले जी की अपील पर आपने ५० हजार रुपये एकत्र किये और उन्हें अफ्रीका भेजा। डा० बेसेण्ट के होमरूल लीग के आन्दोलन में

भी इन्होंने काफी भाग लिया। लखनऊ कांग्रेस के अवसर पर सन् १९१६
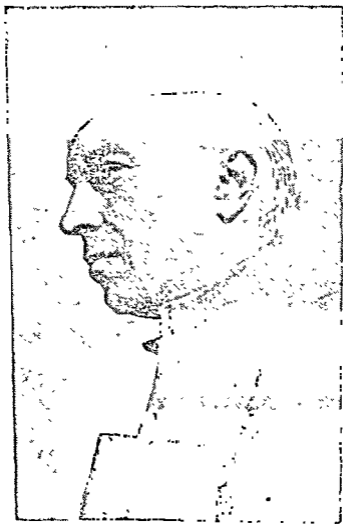
पं० जवाहरलाल जी नेहरू

में इनकी भेंट गांधी जी से हुई। रौलेट एक्ट तथा पंजाब हत्याकांड के बाद

जवाहरलाल जी गांधी जी के निकट सम्पर्क में आ गये। १६२० में इन्होंने अवध के किसानों में बड़ी मेहनत से काम किया। असहयोग की घोषणा होने पर आप बैरिस्टरी छोड़कर भारत माता की सेवा में जुट पड़े। सन् १६२१ में असहयोग आन्दोलन में प्रमुख भाग लेने से इन्हें पहिली बार गिरफ्तार किया गया और लखनऊ डिस्ट्रिक्ट जेल में रक्खा गया। दूसरी बार १६२२ में वे प्रयाग में विदेशी कपड़े की दुकानों पर धरना देते समय पकड़े गये और १॥ साल की कड़ी कैद और १००) जुर्माना की सजा मिली। सन् १६२४ में प्रयाग म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन सर्वसम्मति से चुने गये। इनके जमाने में नगर का बड़ी उन्नति हुई। सन् १६२७ में नेहरु जी साम्राज्य विरोधी संघ के ब्रसेल्स अधिवेशन में शामिल हुए और उसके पांच अध्यक्षों में से एक अध्यक्ष चुने गये। सोवियत सरकार के निमत्रण पर आप रूस गये और रूसी प्रजातन्त्र के दशम् वार्षिकोत्सव में शरीक हुए। वहाँ से लौटकर आपने नूतन समाज निर्माण पर बल देना शुरू कर दिया। सन् १६२६ में हिन्दुस्तानी सेवा दल एवं प्रथम प्रजातन्त्र परिषद् के अध्यक्ष हुए। धीरे धीरे आप उग्र से उग्रतर राजनीतिक धारा को अपनाने लगे। इसी समय आपने मज़दूरों के आन्दोलन में भी भाग लेना शुरू किया और नागपुर में मजदूर कांग्रेस के अध्यक्ष हुए। सितम्बर १६२८ में इन्होंने भारतीय स्वाधीनता संघ स्थापित किया।

लाहौर कांग्रेस—सन् १६२३ से १६२६ तक आप लगातार कांग्रेस के प्रधान मन्त्री रहे। लाहौर कांग्रेस अधिवेशन का सभापतित्व भी नेहरु जी ने किया। आपके प्रयत्नों से लाहौर में कांग्रेस का ध्येय औपनिवेशिक स्वराज्य के स्थान पर 'पूर्ण स्वतंत्रता' हो गया और देश ने २६ जनवरी १६३० को पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा किया।

लाहौर कांग्रेस में इन्होंने घोषणा की कि उनका उद्देश्य भारत में जनतंत्र की स्थापना है, और आज इतने वर्षों बाद हम देखते हैं कि वह प्रतिज्ञा सत्य होकर रही। इस अधिवेशन के बाद वे भारत के जन-जन के मन में बस गये। देश ने उन्हें अपने आदर्श नेता के रूप में स्वीकार किया। इसी समय बापू ने इनके विषय में कहा था "बहादुरी में कोई उनसे बढ नहीं सकता और सेवा में उनके आगे कौन जा सकता है! निस्सन्देह वे अपनी परिस्थिति से बहुत आगे की बात सोचनेवाले उग्रवादी हैं।......वे स्फटिक मणि की भाँति पवित्र हैं।

उनकी सत्यशीलता सन्देह से परे है। वे अहिंसक और अभिनन्दनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।" सन् १९२३ में नेहरू जी नाभा गये। नाभा में सिक्खों का धार्मिक आन्दोलन चल रहा था। उसमें पुलिस और सैनिकों ने मनमाने जुल्म किये। जवाहरलाल जी अपने दो सहकर्मियों—श्री गिडवानी तथा श्री सन्थानम्—के साथ नाभा पहुँचे। पुलिस ने आगे बढ़ने से रोका किन्तु नेहरू जी कब माननेवाले थे। अन्त में वे पकड़े गये और उन्हें डेढ़ वर्ष की सज़ा दे दी गई। देशी राज्यों के विषय में एक नई जानकारी प्राप्त कर वे प्रयाग लौटे।

सन् १९३० में सत्याग्रह संग्राम छिड़ते ही वे गिरफ़्तार हो गये। एक साल बाद सरकार से सुलह होने पर उन्हें छोड़ दिया गया। किन्तु सरकार के व्यवहार में कोई परिवर्तन न पाकर उन्होंने खरी बातें कहना आरम्भ किया। इस पर सन् १९३१ ई० में वे पुनः जेल में डाल दिये गये। फरवरी १९३४ में उन्हें पुनः गिरफ़्तार कर लिया गया और अलीपुर जेल में बन्द किया गया। सन् १९३४-३५ में अलमोड़ा जेल में उन्होंने अपनी 'आत्म कथा' लिखी। सन् १९३६ में वे लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष हुए, दूसरे साल फैजपुर में भी वही अध्यक्ष रहे। भारत के प्रायः सभी प्रान्तों का उन्होंने तूफानी दौरा किया और गाँव-गाँव में प्रचार करके जागरण की नई लहर फैला दी। फल यह हुआ कि निर्वाचन में कांग्रेसी उम्मेदवारों की विजय हुई। इसी साल 'डिसकवरी आफ इंडिया' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। सन् १९३९ में दिल्ली में नेशनल कन्वेंशन के सभापति हुए और नागरिक स्वाधीनता संघ की स्थापना की। इसी साल सीमाप्रान्त और गढ़वाल का दौरा किया। हिन्दू मुस्लिम समस्या के हल के लिए श्री जिन्ना से उनका महत्त्वपूर्ण पत्र व्यवहार हुआ। इसी साल चीन में चिकित्सक सेवा-मंडल भेजने की व्यवस्था इनकी प्रेरणा से की गई। २ जून १९३८ को इन्होंने यूरोप की यात्रा किया। १६ जून को बार्सिलोना में उन्होंने स्पेन के प्रजातंत्र के अधिकारियों से मुलाकात किया और उन तक उन्होंने भारत की सहानुभूति का सन्देश पहुँचाया। २० जून को पेरिस ब्राडकास्टिंग स्टेशन से आपने जो भाषण दिया उससे बड़ा तहलका मचा। जून जुलाई में आप लन्दन में सब प्रकार के प्रभावशाली और गण्यमान्य व्यक्तियों से मिले और कई महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिये।

आपने १९३९ में शान्ति-निकेतन में हिन्दी भवन का उद्घाटन किया। इसी साल-

से जवाहरलाल जी नेहरू ने राज्यों के प्रश्नों पर विचार करना और उनकी हलचलों में भाग लेना शुरू कर दिया। देशी राज्य प्रजा परिषद् के लुधियाना अधिवेशन की अध्यक्षता के प्रश्न को लेकर देश में एक तूफानी वातावरण पैदा हो गया। उसमें कांग्रेस में ही दलबन्दी और फूट होने की नौबत आई। इन्होंने इस प्रश्न को सुलझाने का बड़ा प्रयत्न किया और इनके प्रभाव से कांग्रेस के संयुक्त मोर्चे में कोई टूट नहीं आई।

कांग्रेस ने प्रान्तों में जब शासन चलाना स्वीकार कर लिया तब इन्होंने समस्त राष्ट्र के संगठन की एक वैज्ञानिक योजना नेशनल प्लानिंग कमेटी के रूप में जनता के सामने उपस्थित की। नेहरू जी स्वयं इसके अध्यक्ष थे। इसमें २६ उप समितियाँ बनाई गई। इस समिति ने राष्ट्र निर्माण की योजना बनाने का बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण काम किया, और अब भी कर रही है। सन् १६३६ में जवाहरलाल ने लङ्का की यात्रा की, वहाँ इनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। इन्होंने पारस्परिक मनोमालिन्य और कटुता दूर करने की सफल कोशिश की। इसी साल अगस्त में यह वायुयान द्वारा चीन गये। पर चीन पहुँचे ही थे कि यूरोप में विस्फोट हुआ। चीन में इनका जोरों से स्वागत-सत्कार हुआ। इन्होंने च्यांगकाई शेक और चीनी राष्ट्र के अन्य नेताओं से भेंट की और उन्हें भारत के सहयोग और मैत्री का सन्देश दिया। यूरोप में द्वितीय विनाशकारी युद्ध छिड़ चुका था। यहाँ भारत में नये नये कानून और आर्डिनेंस जारी कर दिये गये थे। गांधी जी कांग्रेस से अलग हो गये। गांधी जी का व्यक्तिगत आन्दोलन चला, क्रिप्स मिशन भारत आया और असफल होकर लौट गया। 'भारत छोड़ो' का युद्ध छिड़ा। सन् १६४२ को प्रसिद्ध जन क्रान्ति हुई, सब नेताओं के साथ जवाहरलाल जी गिरफ्तार हुए। सन् १६४५ में जेल से बाहर आकर इन्होंने कहा कि "अगस्त आन्दोलन के समय देश में जो कुछ हुआ मैं उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूँ। मैं इस उत्तरदायित्व से अलग होना नहीं चाहता।" यही नहीं, जवाहरलाल ने नेता जी के आजाद हिन्द फौज के ढिल्लन, सहगल, शाहनवाज के मामले को लेकर देश विदेश में बिजली दौड़ा दी और अन्त में आजाद हिन्द फौज के बन्दियों को रिहा करवा कर ही दम लिया।

सन् १६४५ ई० के बाद देश की समस्त राजनीति जवाहरलाल नेहरू द्वारा सञ्चालित होती रही है।

शासन-भार ग्रहण—सन् १६४६ में नेहरू जी पुनः कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और इसी हैसियत से वायसराय लार्ड वेवेल द्वारा' केन्द्र में अस्थायी सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किये गये। २ सितम्बर १६४६ को नेहरू जी ने अस्थायी सरकार का संगठन किया। ६ दिसम्बर १६४६ को दिल्ली में विधान-परिषद् का उद्घाटन हुआ जिसमें १३ दिसम्बर को नेहरू जी ने भारतीय विधान का उद्देश्य सम्बन्धी अपना प्रस्ताव रखा। ता० २१ जनवरी सन् १६४७ को यह ऐतिहासिक प्रस्ताव विधान-परिषद् द्वारा ग्रहण किया गया। यही ऐतिहासिक प्रस्ताव हमारे जनतंत्र तथा धर्म-निरपेक्ष विधान का आधार-शिला है। २६ जनवरी १६५० से इसी संविधान के अनुसार शासनकार्य चल रहा है। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री की हैसियत से नेहरू जी ने यह प्रमाणित कर दिया है कि वह केवल आजादी की लड़ाई में लड़नेवाले योद्धा ही नहीं, बल्कि शासन सूत्र चलाने में भी पूर्ण चतुर हैं। उनकी सरकार को चतुर्दिक भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है परन्तु नेहरू जी लक्ष्य की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं।

जवाहरलाल कालीन कांग्रेस के प्रमुख नेता — सर्वश्री लाल बहादुर शास्त्री रेलवे मंत्री केन्द्रीय सरकार, मोहन लाल गौतम उत्तर प्रदेशीय सरकार के स्वायत्त शासन मंत्री, सरदार नरमदाप्रसाद सिंह एम० एल० ए० विन्ध्य प्रदेश, विश्वम्भर नाथ पाण्डेय चेयरमैन नगरपालिका प्रयाग, शालिग्राम जायसवाल सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ता, गणेशप्रसाद जायसवाल एम० एल० ए०, शिवमूर्ति सिंह प्रेसीडेण्ट ज़िला बोर्ड इलाहाबाद, परमानन्द सिनहा एम० एल० ए०, शिवकुमार पाण्डेय, एम० एल ०ए, शिवनाथ काटजू एम० एल० ए०, वेंकटेशनारायण तिवारी एम० एल० ए०, अमरनाथ अग्रवाल मेम्बर राज्य-परिषद्, मुजफ्फर हुसैन उपमंत्री जेल, मौलाना शाहिद एम० एल० ए० तथा मसुरियादीन एम० पी० आदि हैं।

देशरत्न डाक्टर कैलाश नाथ काटजू—डाक्टर कैलाशनाथ काटजू का जन्म १७ जून सन् १८८७ में मध्य भारत स्थित जावरा राज्य के एक उच्च काश्मीरी घराने में हुआ। आपके पिता और पितामह दोनो दत्तक पुत्र थे, अत: ८ पीढ़ियों के पश्चात् यह प्रथम पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए। आपके पिता पण्डित

त्रिभुवन नाथ काटजू रियासत के उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर रहे और राज्य के मान मंत्री तक का पद सुशोभित किया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। शैशवकाल से ही आप कुशाग्र बुद्धि थे। घर पर शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने जावरा हाई स्कूल में अध्ययन करना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् सन् १९०१ में वह लाहौर जाकर फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में भरती हुए। लाहौर से बी० ए० पास करने के पश्चात् इतिहास और कानून का अध्ययन करने के लिए आप इलाहाबाद चले आये। इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के पश्चात् आप इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा सचालित 'वकील परीक्षा' में सम्मिलित हुए और उसमें सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए।

देशरत्न डाक्टर कैलाशनाथ काटजू

कानून का अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् कानपुर जाकर आपने वकालत करना प्रारम्भ किया और वहाँ आप पाँच छः वर्ष तक रहे। वहाँ रहकर आपने एल० एल० एम० की परीक्षा पास की और 'डाक्टर आफ ला' की उपाधि प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुए। इनके पहले प्रयाग विश्व विद्यालय तीन विद्वानों को इस उपाधि से विभूषित कर चुका था—श्री सुरेन्द्रनाथ सेन, श्री सतीशचन्द्र सेन, सर तेज बहादुर सपरू, और अब चौथा नम्बर श्री कैलाशनाथ काटजू का हुआ। कानपुर में

पंडित पृथ्वीनाथ जैसे एक महान् व्यक्ति द्वारा इन्हें उत्साह एव प्रेरणा मिली। सन् १६२१ मे आप इलाहाबाद हाईकोर्ट के एडवोकेट हो गये। डाक्टर काटजू का कानूनी जीवन सफलता की ओर अग्रसर रहा। वकालत मे उनकी सफलता विस्मय जनक थी। एक अत्यन्त सफल वकील और अधिवक्ता के रूप मे वह अपने कार्य मे केवल अत्यधिक व्यस्त ही नहीं रहते थे, वरन् वह हाईकोर्ट के विभिन्न न्यायालयों मे कई मुकदमों को एक साथ ही सँभालते थे। उनकी प्रबल वक्तृत्व शक्ति, प्रकाड विद्वता एव अद्वितीय स्मरण शक्ति प्रशसनीय रही। उत्तर प्रदेश के एडवोकेट जनरल श्री प्यारेलाल बनर्जी ने सर तेजबहादुर की मृत्यु के अवसर पर प्रसगवश डाक्टर काटजू के सबध मे कहा था—"मैं अपने सहयोगी और मित्र तथा इस समय बगाल के राज्यपाल डाक्टर कैलाशनाथ काटजू की चर्चा किये बिना नहीं रह सकता, जिनकी कानूनी विलक्षणता और विनोदजनक कथोक्तियाँ सबको दुर्लभ हो गई हैं और जो इस हाईकोर्ट के आज तक के वक्ताओं में योग्यतम व्यक्ति माने जाते रहे हैं।"

आपका कार्यक्षेत्र केवल वकालत तक सीमित न था, वरन् आपका हृदय सामाजिक राजनीतिक तथा सास्कृतिक क्षेत्रों मे अधिक संलग्न रहता था। वकालत करते समय ही आप पर महात्मा जी के व्यक्तित्व का अमिट प्रभाव पड़ा। नेहरू परिवार से घनिष्ठ सम्पर्क होने के कारण स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू के भी व्यक्तित्व तथा विचारों का प्रभाव आप पर पड़ा। इन्ही के फलस्वरूप स्वातन्त्र्य आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए आप मैदान मे उतर पड़े। वकालत करते समय प्रान्तीय तथा जिला काग्रेस कमेटी के पदाधिकारी रहकर आपने बडे महत्त्वपूर्ण कार्य किये। अखिल भारतीय काग्रेस समिति के भी आप सन् १६४६ तक सदस्य रहे हैं। निरक्षरता निवारण में आपकी विशेष रुचि है। प्रयाग के कई स्कूलों के सस्थापन तथा सफलतापूर्वक सचालन का श्रेय आप को है।

'इलाहाबाद ला जनरल'' के आप सन् १६१८ से लेकर सन् १६३७ तक सम्पादक रहे। इसके पश्चात् प्रान्त के काग्रेस मत्रिमडल म सम्मिलित होने के लिए आपको आमन्त्रित किया गया। बीस पचीस हजार रुपये के लगभग मासिक वकालत की आय छोड़कर जन-सेवा के लिए मत्रिमडल मे सम्मिलित होना वास्तव मे आपका महान् त्याग था। पन्त मत्रिमडल में आपको 'कानून, न्याय,

विकास, उद्योग, कृषि, ग्राम सुधार, आबकारी, रजिस्ट्रेशन, पशु-चिकित्सा के कार्यों का भार अपने ऊपर लेना पड़ा। ग्राम सुधार के कार्यों में आपने प्रशंसनीय सुधार किये और सहयोग समितियों द्वारा ग्रामीणों को स्वावलम्बी बनाने की योजना बनाई। 'पंचायत राज कानून' की रूप रेखा भी आपने प्रस्तुत की, जिसे बाद में उत्तर प्रदेश सरकार ने कानून का रूप दिया।

द्वितीय महायुद्ध में तटस्थ होने की नीति के कारण तथा ब्रिटिश शासकों को सहयोग न देने के कारण कांग्रेस मंत्रिमंडल को सन् १९३८ में त्यागपत्र देना पड़ा। इसके साथ ही व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण आप को २८ नवम्बर सन् १९४० को १८ महीने की सजा हुई और १६ नवम्बर १९४१ को आप जेल से छोड़ दिये गये। कांग्रेस को पूर्णतया कुचलने के लिए ब्रिटिश शासकों ने कांग्रेस नेताओं को स्वच्छन्द रखना उचित नहीं समझा, अतएव डाक्टर काटजू भी अगस्त ४२ में जेल में बन्द कर दिये गये और अन्य नेताओं के साथ अप्रैल ४३ में मुक्त किये गये। आजाद हिन्द फौज के वीर सिपाहियों को मुक्त कराने के लिए स्वर्गीय भूलाभाई देसाई के साथ अनवरत परिश्रम, अटूट लगन से किया हुआ आपका परिश्रम भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के इतिहास में सदैव अमर रहेगा। कस्तूरबा कोष तथा कमला नेहरू अस्पताल में आर्थिक सहायता देते हुए अत्यधिक द्रव्य संग्रहीत करने और अस्पताल को विस्तृत करने में आपने अत्यधिक परिश्रम किया।

सन् १९४६ में प्रान्त में कांग्रेस मंत्रिमण्डल के पुनः स्थापित होने पर आप कानून, न्याय विकास आदि के मंत्री बनाये गये। सन् १९४६ ई० से लेकर १९४७ तक आप काशी विश्वविद्यालय सिनेट के भी सदस्य रहे हैं। मंत्रिमण्डल में रहते हुए विश्व खाद्य योजना आयोग के नेतृत्व में आपने वाशिंगटन और पेरिस के खाद्य सम्मेलन में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया था। गत कुछ वर्षों में आगरा, नागपुर, कटक, कलकत्ता आदि विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त भाषण देते हुए आपने उचित अकाट्य तर्कों के साथ संस्कृत भाषा को पुनर्जीवित करने तथा राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने के पक्ष में अपना मत प्रकट किया है। १५ अगस्त १९४७ को भारत के स्वतंत्र होने पर आप उड़ीसा प्रान्त के गवर्नर बनाये गये, इस पद पर आप जून १९४८ तक रहे। तत्पश्चात् राजाजी के गवर्नर

जनरल होने पर बंगाल प्रान्त के गवर्नर बना दिये गये। आज कल आप केन्द्रीय सरकार के सलाहकार तथा रियासतों के मंत्री हैं।

सरदार नर्मदाप्रसाद सिंह—आपका जन्म २६ जनवरी सन् १८८६ ई० को ठिकाना बैकुंठपुर रीवाँ राज्य के तेन्दुन बघेल घराने में हुआ। आपके पिता स्वर्गीय लाल पद्मनाभ सिंह रीवाँ राज्य के प्रथम श्रेणी के जागीरदारों में से थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा डेली कालेज इन्दौर तथा मेयो कालेज अजमेर में हुई। आप यहाँ की शिक्षा समाप्ति के बाद विदेश जाना चाहते थे किन्तु महाराजा रीवाँ के आग्रहवश आपको राज्य के डिप्टी कमिश्नर के पद को स्वीकार करना पड़ा। किन्तु इस पद पर आसीन रहकर भी परोपकार तथा देश सेवा के कार्य्यों से रुचि रखते थे। गरीब विद्यार्थियों को आश्रय तथा छात्रवृत्ति देना आपका अत्यधिक प्रिय काम था। आपका घर अनाथालय कहा जाता था। सरस्वती सदन पुस्तकालय तथा स्वयं सेवक दल का संगठन सर्वप्रथम आपने ही किया था।

सरदार नर्मदा साद सिंह

सार्वजनिक कार्य्य में अभिरुचि रखने के कारण आप में और महाराज गुलाबसिंह में काफी मनमुटाव बढ़ गया था। सरदार साहेब को इलाहाबाद चला आना पड़ा। यहाँ आपने १४ साल तक निर्वासित व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत किया। किन्तु इस अवधि में भी आप रीवाँ राज्य के प्रजा तथा प्रयाग के सार्वजनिक कार्य्य में भाग लेते रहे। आप उस समय इलाहाबाद तथा प्रान्त के एक बहुत प्रतिष्ठित हिन्दू नेता समझे जाते थे। सन् १९३० में

किया। विद्यार्थी जीवन में शारीरिक खेल एवं व्यायाम में आप सदैव भाग लेते रहे और विश्वविद्यालय में क्रिकेट कैप्टन भी रहे। सैनिक शिक्षा एवं अनुशासन का भी आपको अनुभव विश्वविद्यालय में यू० टी० सी० की ट्रेनिंग द्वारा प्राप्त हुआ। आप यू० टी० सी० में सार्जेंट मेजर थे। प्रयाग विश्वविद्यालय से विद्यार्थी-जीवन समाप्त कर आपने सन् १९३२ ई० में वकालत प्रारम्भ कर दी। सन् १९३३ ई० में आपने लगभग ८ या ९ महीनों तक योरप, अमरीका आदि देशों का भ्रमण किया। वकालत का श्रीगणेश श्रद्धेय डाक्टर साहब की ही भाँति आपने भी कानपुर शहर से प्रारम्भ किया और सन् १९३५ ई० तक आप कानपुर के न्यायालयों में प्रैक्टिस करते रहे। वहाँ के डा० ए० वी० कालेज में सन् १९३४ और ३५ ई० में आप कानून के प्रोफेसर भी रहे। इस प्रकार कानपुर में आपको कानून के अध्ययन अध्यापन का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। कानून की शिक्षा में सम्यक् दीक्षित हो जाने के पश्चात् आपका शुभ विवाह लाहौर के डा० बालकृष्ण की सुपुत्री गिरिजा देवी के साथ सन् १९३५ ई० में सम्पन्न हुआ। दूसरे वर्ष विलास देवी का जन्म हुआ। तीन वर्ष पश्चात् सन् १९३८ ई० में सौ० गिरिजा, शिवजी को छोड़कर इस जगत् से विदा हो गई। पुनः आपका विवाह अलवर के पं० प्रेमनारायण शिवपुरी की सुपुत्री अन्नपूर्णा जी से सन् १९३९ ई० में हुआ। दूसरे विवाह से तीन लड़के और दो लड़कियाँ पैदा हुई।

पं० शिवनाथ काटजू

गृहस्थ जीवन में प्रवेश होने के साथ ही आपने राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ किया और कांग्रेस की विभिन्न शाखाओं के सदस्य तथा पदाधिकारी रहे।

आप इलाहाबाद जिला कांग्रेस कमेटी के सन् १९३५ ई० से १९४० ई० तक मन्त्री तथा उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस कमेटी के सन् १९३८ ई० से १९४१ ई० तक सदस्य रह चुके हैं। आप अहियापुर वार्ड कांग्रेस कमेटी के सभापति थे। राजनीति में क्रियाशीलता के अतिरिक्त आपकी साहित्य अभिरुचि भी प्रशंसनीय है। सन् १९३७ ई० से ही कानून की मासिक पत्रिका 'इलाहाबाद ला जरनल' के सम्पादक हैं और इसका सम्पादन बड़ी योग्यता से कर रहे हैं। प्रसिद्ध हिन्दी, अँग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में भी विभिन्न विषयों पर आप लेख के रूप में अपने विचार प्रकट करते रहते हैं।

राजनीति एवं साहित्य की गहन ग्रन्थियों में उलझे होने पर भी आपने धार्मिक विचारों को विकसित एवं प्रसारित करने का संकल्प नहीं छोड़ा। १५ जून १९४२ ई० में अखिल भारतीय शाक्त-सम्मेलन की स्थापना प्रयाग में की गई और समिति की ओर से एक मासिक पत्रिका 'चण्डी' निकालने का प्रस्ताव पास किया गया। 'चण्डी' के संचालन का भार शिवजी को ही उठाना पड़ा।

राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक कार्यों में व्यस्त होने पर भी खेल के लिए कुछ न कुछ समय आप नित्य बचा लेते हैं। आप शिक्षा के अनन्य प्रेमी हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दू ला के आप प्रोफेसर भी हैं। इलाहाबाद हायर सेकेण्ड्री स्कूल के सन् १९४३ से ही आप मन्त्री तथा मैनेजर हैं और इलाहाबाद विश्वविद्यालय कोर्ट, और सिनेट के भी सदस्य हैं। आजकल आप उत्तर प्रदेश धारा सभा के एम० एल० ए० हैं।

सन् ४२ के जन-नायक

माननीया श्रीमती पंडित—इनके परिचय के लिये इतना ही पर्याप्त है कि ये त्यागमूर्ति प० मोतीलाल नेहरू की पुत्री तथा भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की बहन हैं, और त्याग, बलिदान, तथा स्वातन्त्र्य युद्ध में अपने पिता और भ्राता के साथ साथ जुटी रहीं। इनका जन्म सन् १६०० के अगस्त मास के अन्तिम सप्ताह में हुआ। बहन के प्राप्त होने से पं० जवाहरलाल को बड़ी प्रसन्नता हुई थी। पाँच वर्षों की अवस्था ही में इनको अपने माता पिता और भाई के साथ विलायत यात्रा करने का अवसर मिला, और पिता की स्वतन्त्र प्रकृति से उनको स्वतन्त्रता का पाठ भी मिला।

श्रीमती विजयलक्ष्मी को योग्य अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं की देख रेख में उच्चकोटि की शिक्षा दी गई। अपने परिश्रम और अध्यवसाय से भी आपने अपने व्यावहारिक विषयों का ज्ञान खूब विस्तृत किया है।

श्रीमती विजयलक्ष्मी का विवाह राजकोट निवासी एक गुजराती विद्वान् श्री रणजीत सीताराम पंडित के साथ १० मई, सन् १६२१ ई० को हुआ। विवाह के अवसर पर उपस्थित होने के लिए महात्मा गांधी तथा अली बन्धुओं को भी निमंत्रण भेज दिया गया था और नेताओं के सुभीते के लिए कार्य-समिति की बैठक भी पास ही की तारीखों में रख ली गई थी। यह एक बिल्कुल ही साधारण योजना थी, लेकिन इसका भी उस समय अँगरेजों के दिमाग पर क्या असर पड़ा था, इसका वर्णन प० जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रकार किया है:—

"एक दिन एक बैरिस्टर-दोस्त से मैंने सुना कि इस आयोजना से कितने ही अँगरेजों के होश ठिकाने न रहे और डर हो गया कि शहर में एकाएक बलवा खड़ा हो जानेवाला है। हिन्दुस्तानी नौकरों पर से उनका विश्वास हट गया और वे अपनी जेब में पिस्तौल रखने लगे। कहा तो यहाँ तक गया कि इलाहाबाद का किला इस बात के लिए तैयार रखा गया था कि जरूरत पड़ने पर तमाम अँगरेजों को पनाह के लिए वहाँ भेज दिया जाय। चूँकि १० मई, सन् १८५७ को मेरठ

में गदर शुरू हुआ था और इत्तिफाक से यही तारीख मेरी बहन की शादी के लिए नियत हुई था।"

विवाह होने के बाद से श्री पंडित महोदय प्रयाग ही के निवासी हो गये और उत्तर प्रदेश की कांग्रेस की राजनीति में भाग लेते रहे। वे बैरिस्टर थे, किन्तु

यकालत नहीं किया। कुछ दिनों तक आप प्रान्तीय कांग्रेस के मंत्री रहे। आप अँगरेजी, फ्रान्सीसी, संस्कृत आदि भाषा के विद्वान् तथा मर्मज्ञ भी थे। यही नहीं, आप हिन्दी गद्य के सुलेखक भी थे। आपने 'राजतरंगिणी' नामक प्रसिद्ध लेखक कल्हण द्वारा लिखी हुई संस्कृत ग्रन्थ का अँगरेजी में अनुवाद किया था।

श्रीमती पंडित की तीन कन्याएँ हैं जिनके नाम हैं, चाँद, तारा और रीता। श्रीमती पंडित का सार्वजनिक जीवन विशेष रूप से सन् १६३० ई० में प्रकाश में आया। प्रयाग में मॉडर्न हाई स्कूल है, जिसके प्रिंसिपल उस समय डा० घोष नामक एक ईसाई महाशय थे। पाँच मई सन् १६३० को महात्मा गांधी के गिरफ्तारी पर विद्यार्थियों के हड़ताल करने के विरुद्ध डा० घोष और श्रीमती जी में काफी झगड़ा उत्पन्न हुआ अन्त में श्रीमती जी का ही विजय हुई। सन् १६३१ की जनवरी के प्रथम सप्ताह में श्रीमती पंडित को जेल की सजा दी गई। जेल से लौटने के बाद श्रीमती पंडित ने कुछ समय तक प्रयाग नगरपालिका के शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष के पद पर काम किया था। इसी बीच कांग्रेस ने पद-स्वीकार सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था इसलिए आप उत्तर प्रदेश के स्थानीय स्वायत्त शासन के मंत्री पद पर आरूढ़ हुई। सन् ४२ की जन क्रान्ति के अवसर पर जब प्रयाग नेता-हीन हो गया था, तो आपने ही विद्रोह का झण्डा ऊँचा करके जनता का नेतृत्व किया था। भारत के स्वतन्त्र होने पर आप अमेरिका ऐसे विशाल देश का प्रथम राजदूत नियुक्त हुई। तब से अब तक आप किसी न किसी देश की राजदूतत्व का काम करती रहीं। अब आजकल आपने सरकारी कार्यों से पूर्ण अवकाश ग्रहण कर लिया है।

शहीद लाल पद्मधर सिंह—सन् १६४२ के भारत व्यापी जनविद्रोह में प्रयाग स्थित विद्यार्थियों के प्रसिद्ध जन-नायक थे, जो १२ अगस्त सन् १६४२ को कचेहरी में जुलूस का नेतृत्व करते हुए अँगरेजों के गोली के शिकार हुए थे।

रीवाँ के राज घराने से सम्बन्धित माधोगढ़ के प्रतिष्ठित इलाकेदार सा० के चतुर्थ पुत्र-रत्न पद्मधर का जन्म २१ नवम्बर सन् १६१६ में हुआ था। जन्म के छः माह पश्चात् ही दुर्दैव के कोप के कारण पद्मधर को पिता के लाड़-प्यार से वंचित होना पड़ा। उस समय इनके अन्य बड़े भाई श्री गदाधर सिंह, श्री चक्रधर सिंह, श्री शंखधर सिंह प्रायः पढ़ रहे थे। पाँच वर्ष की अवस्था में स्थानीय हिन्दी

मिडिल स्कूल माधोगढ़ में बालक पद्मधर का विद्यार्थी जीवन आरम्भ हुआ, तेरह वर्ष की अवस्था में "हिन्दी मिडिल" की परीक्षा उत्तीर्ण कर दरबार हाईस्कूल रीवाँ में पद्मधर ने प्रवेश किया। इकहरा किन्तु मझोले लम्बा शरीर होने के कारण खेल कूद में अच्छी गति प्राप्त कर ली। मित्रों के वीर नायक, अध्यापकों के समीप कुशल, विद्यार्थी पद्मधर के जीवन में सन् १९३५ में एक विशेष घटना घटी। एक दिन स्कूल क्षेत्र के भीतर गालियों के शब्द ने सब विद्यार्थियों को चौंका दिया, सब दौड़कर घटनास्थल पर पहुँचे, देखा कि प्रधान अध्यापक श्री टोपे जी छात्रावास के सामनेवाले मैदान में पद्मधर की गोली से आहत पड़े थे, किसी उद्दण्डता (पाठशाला के विज्ञान भवन से एक

शहीद लाल पद्मधरसिंह

"लेंस" गायब कराने का दोषारोपण था) के अपराध में टोपे जी कई बेंत पद्मधर की पीठ पर तोड़कर अपना क्रोध शान्त न कर पाये थे। शारीरिक प्रताड़ना, उस पर भी अपशब्द ! राजघर में सम्मान में लालन पालन होने के कारण "लाल सा०" को यह सुनने व सहने का अभ्यास न था, अपशब्दों ने तो क्षत्रिय कुँवर के राजसी स्वाभिमान को ललकार ही दिया, टोपे जी के कमरे से निकलकर सीधे अपने छात्रावास की ओर अपमानित पद्मधर ने पग बढ़ाये, सम्भवतः मन में स्कूल छोड़ने की ठान रहे थे, कि सहसा 'धक्का

मन्दर को" की आवाज ने उनके धैर्य का बाँध तोड़ दिया। यह शब्द टोपे जी के थ, वे बेंत लिये छात्रावास की ओर भपटे चले जा रहे थे। पद्मधर ने, दा नली उठाई और दाग दिया, दाई भुजा में मर्माहत हो टोपे जी सत्ता-शू न्य से हो गये। इस अपराध में लाल सा० को सात वर्ष की कड़ी यातना भुगतने की आज्ञा
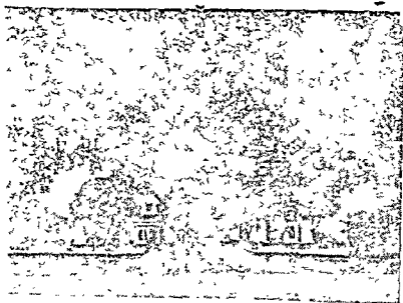
विश्वविद्यालय का विशाल वट वृक्ष जहाँ से सन् ४२ का विजयी-जुलूस रवाना हुआ था

हुई, किन्तु टोपे जी के शीघ्र ही स्वस्थ हो जाने पर वह ३ वर्ष के लगभग ही जेल में रहे। विधि का विधान विचित्र है, कौन जानता था कि मुक्तात्मा पद्मधर को भी जेल की चहार दिवारी के अन्दर निवास करना पड़ेगा। सम्भवतः उसमें भी प्रकृति की एक विशेष योजना थी—बंदी पद्मधर ने जेल जीवन पर आधारित "बंदी" तथा "मित्र" शीर्षक में बहुत सुन्दर तथा शिक्षाप्रद कहानियाँ (ये कहानियाँ दरबार कालेज रीवाँ की पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं) हिन्दी साहित्य को भेंट दी है। जेल में 'लाल सा०' का आचरण विशेष प्रशंसनीय रहा, जेल के

कर्मचारियों से यथा सुविधा प्राप्त कर विशेष-योग्यता तथा "इन्ट्रेंस" की परीक्षा अपने कैदी-जीवन में ही उत्तीर्ण कर आपने इन्टरमीजिएट" (विज्ञान) की परीक्षा के लिए दर्बार कालेज रीवाँ में सन् १६३६ में प्रवेश लिया और सन् १६४१ में
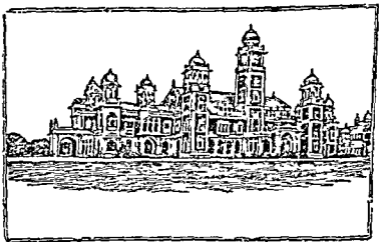
प्रयाग विश्व-विद्यालय

स्नातक (विज्ञान) होने के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय में अपने विद्यार्थी जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग आरम्भ किया। स्नातक की परीक्षा के पहले ही जीवन की परीक्षा में पद्मधर को प्राणों पर खेल कर ऐसी उज्ज्वल तथा सम्मानित सफलता मिलने वाली थी, किसे ज्ञात था !

प्रयाग की साहित्यिक देन

प्रयाग सम्बन्धी प्राचीन पुस्तकों में 'प्रयाग माहात्म्य' सबसे प्राचीन पुस्तक है। इससे प्रकट है कि प्राचीन काल में भी प्रयाग सम्बन्धी साहित्य की वह पुस्तक मौजूद थी जिसे सारा भारत आदर और सम्मान की दृष्टि से देखता था।

कुछ विद्वानों का कथन है कि हिन्दी में गद्य रचना लल्लू जी लाल से प्रारम्भ हुई। किन्तु वास्तव में लल्लू जी लाल से थोड़े ही दिनों पूर्व प्रयाग निवासी मुन्शी सदासुख राय गौड़ ने सुखसागर नामक पुस्तक की रचना हिन्दी गद्य में ही की थी। हकीम इशाउल्लाह खाँ ने लगभग इसी समय 'रानी केतकी' की कहानी ठेठ हिन्दी में लिखी थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिन्दी गद्य के जन्म दाता प्रयाग निवासी मुन्शी सदासुखराय थे। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

मुंशी सदासुखराय निसार—मुशी जी, लल्लू लाल, सदल मिश्र और इशाअल्लाह खाँ हिन्दी गद्य के अगुआ समझे जाते हैं। इनमें से पिछले तीन व्यक्ति तो फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के प्रिंसपल श्री गिलक्राइस्ट के मातहती अथवा देख रेख में काम करते थे, किन्तु मुशी जी स्वतन्त्र रूप से इन सब से पहले ही हिन्दी गद्य लिखना आरम्भ कर दिया था। आपका जन्म सम्वत् १८०३ और मृत्यु १८८१ में हुआ। संस्कृत, अरबी, फारसी, भाषा की शिक्षा इन्हें घर पर ही मौलवी और पंडित द्वारा प्राप्त हुई। वह उर्दू और फारसी के गण्यमान कवि थे। इस विषय में वह मुहम्मद रफी 'सौदा' के शिष्य थे। उनका उपनाम 'निसार' था।

मुशी जी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मातहती में चुनार के तहसीलदार थे। वह अतिरिक्त समय में अरबी, फारसी और संस्कृत पुस्तकों का अध्ययन करते थे। अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण के समय उनका सब धन लुट गया और इस प्रकार वह एक दरिद्र जीवन व्यतीत करने लगे, किन्तु दरिद्रता उनके अध्ययन में बाधा

उपस्थित न कर सकी। पैंसठ साल की आयु में नौकरी से अवकाश प्राप्त किया और जीवन का शेष भाग प्रयाग में ही एक भक्त और आध्यात्मिक शांति के योगी की भाँति व्यतीत किया। और यहीं सम्वत् १८८१ में उनका वैकुण्ठवास हुआ।

उनकी लिखी दो पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं। (१) मुन्तखबुल तवारीख है (भारत का इतिहास जिसका हवाला इलियट साहब ने अपने पुस्तक 'संसार के इतिहासकारों की इतिहास' में दिया है) जिसको उन्होंने फारसी भाषा में लिखी थी और (२) हिन्दी भाषा में सुखसागर जिसका प्रचार आज भी हिन्दुओं के घर-घर में है। उर्दू म उन्होंने राधा विलास नामक एक पुस्तक लिखी थी। वे एक सफल चित्रकार भी थे। अंग्रेजी गद्य भाषा के जन्मदाता 'चौसर' की भाँति मुंशी जी ने भी नौकरी छोड़ कर अपना सारा समय भगवान् की भक्ति में ही व्यतीत किया।

आर्य समाज के प्रचार के कारण हिन्दी भाषा की उन्नति बहुत अधिक हुई। आर्य समाज ने बड़े बड़े धुरन्धर हिन्दी लेखकों को जन्म दिया है। उनमें प्रयाग निवासी प० गंगाप्रसाद उपाध्याय (जो जन्म से कायस्थ हैं किन्तु विद्वता के कारण प० और उपाध्याय कहलाते हैं) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जिन्हें साहित्य सम्मेलन द्वारा 'आस्तिकवाद' पर 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' मिला है। इन्होंने आर्य-समाज सम्बन्धी अनेकों पुस्तकें तथा पुस्तिकाएँ लिखकर हिन्दी का साहित्य की प्रयाप्त सेवा की है।

भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्रजी आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता कहे जाते हैं। ऐसे ही समय में प्रयाग म प० बालकृष्ण जी भट्ट का जन्म हुआ जिन्होंने आधुनिक हिन्दी की उल्लेखनीय सेवा किया है।

पं० बालकृष्ण भट्ट—आप का कार्य क्षेत्र प्रयाग है। शिक्षा प्राप्त करने के पहले जमुना मिशन स्कूल और फिर कायस्थ पाठशाला के अध्यापक हो गये। सन् १८७८ ई० में इन्होंने 'हिन्दी वर्द्धिनी सभा' के मुखपत्र 'हिन्दी प्रदीप' का सम्पादन हाथ में लिया और ३२ वर्षों तक अदम्य उत्साह के साथ उसे जीवित रखा। उन दिनों पत्रों का प्रकाशन लोहे के चने चबाना था। हिन्दी प्रदीप की ३२ वर्षों की फाइलों में न जाने कितने उपन्यास, नाटक, सामाजिक और साहित्यिक निबन्ध भरे पड़े हैं। जिनका सारा श्रेय प्रयाग निवासी भट्ट जी को ही है।

भारतेन्दु मण्डली के सदस्यों में ये सबसे गम्भीर व्यक्ति थे। प्रताप नारायण

मिश्र में हास-परिहास और चुहल अधिक है। राधाचरण गोस्वामी की उच्छृङ्खलता और उनके विचारों की नितान्त आधुनिकता हमें आकर्षित अवश्य करती है किन्तु भट्ट जी के गम्भीर पांडित्य के आगे हम नतमस्तक हो जाते हैं। भारतेन्दु-युग की शैली का सबसे निखरा रूप इन्हीं की शैली में मिलेगा।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् श्यामसुन्दर दास तथा उनके द्वारा स्थापित हिन्दी प्रचार में नागरी प्रचारिणी सभा का स्थान आता है। बा० श्याम सुन्दरदास ने अपने बाल्यकाल से ही हिन्दी भाषा की सेवा करना प्रारम्भ कर दिया था। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना उन्हीं के उद्योगों का परिणाम था। इस सभा के द्वारा प्राचीन ग्रन्थों के अनुसन्धान और संशोधन में बड़ा भारी कार्य सम्पादित हुआ है। मनोरंजन ग्रन्थमाला के द्वारा अच्छे अच्छे ग्रन्थों का प्रणयन और 'हिन्दी शब्दसागर' के द्वारा कोष के एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति करना इसी सभा का कार्य है। न्यायालय में देवनागरी लिपि का प्रचार करने में भी इस सभा ने प्रभूत प्रयत्न किया है। किन्तु पाठकों को सुनकर कदाचित आश्चर्य होगा कि इस सभा की स्थापना बाबू श्याम सुन्दरदास ने अपनी छात्रावस्था में प्रयाग में ही किया था। कुछ दिनों अपने बाल्यावस्था को प्रयाग में बिताने के बाद यह सभा बाद में काशी चली गई।

'सरस्वती' द्वारा सेवा—बाबू श्याम सुन्दरदास के बाद इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित 'सरस्वती' मासिक पत्र के माध्यम द्वारा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का समय आता है। द्विवेदी जी सन् १६०३ ई० में सरस्वती के सम्पादक हुए और सन् १६१८ ई० तक इसका सम्पादन किया। सम्पादन क्या था, साहित्य का नियन्त्रण। इन पन्द्रह वर्षों में 'सरस्वती' के माध्यम से उन्होंने उच्च श्रेणी का साहित्य ही हिन्दी को नहीं दिया, बल्कि लेखकों का निर्माण और प्रयाग में रहकर अनेक ऐसे आन्दोलन चलाए जिसके द्वारा हिन्दी का रूप ही बदल दिया। अँगरेजी साहित्य में १७ वीं शताब्दी में जानसन ने जो कार्य किया था, वैसा ही, उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य हिन्दी में द्विवेदी जी ने प्रयाग से प्रकाशित होने वाली सरस्वती के द्वारा किया। उनके प्रयत्नों से खड़ी बोली काव्य की भाषा बनी। भाषा की अनेक उच्छृङ्खलताएँ दूर हुईं, और एक सामान्य गद्य शैली का निर्माण हुआ, एवं ज्ञान विज्ञान के अनेक विषयों का साहित्य में समावेश हुआ। द्विवेदी जी का अधिकांश साहित्य पहिले 'सरस्वती' द्वारा सामने आकर फिर बाद

में अनेक निबन्ध-समहों के रूप में प्रकाशित हुआ। उसमें भाषा, शैली और विचारों का सुलभा, सीधा रूप पहिली बार मिलता है। लगभग ८० ग्रन्थों में द्विवेदी जी की सरस्वती में प्रकाशित चरित चर्चा, विज्ञान वार्ता, पुरातत्व प्रसंग, साहित्य संकर, समालोचना इत्यादि शीर्षकों के अन्तर्गत समस्त सामग्री सुरक्षित है।

साहित्य क्षेत्र से विश्राम लेने के पहले द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' को श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के सुरक्षित हाथों में सौंपा था। बख्शी जी मध्य प्रदेश के निवासी हैं किन्तु उनका साहित्यिक क्षेत्र मुख्यतः प्रयाग रहा है। और वहीं रहकर उन्होंने कई वर्ष 'सरस्वती' का सम्पादन किया है।

इसके पश्चात् हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का युग आरम्भ होता है।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन—सम्मेलन की स्थापना सन् १९१० में हुई। इसके पहले काशी नागरी प्रचारिणी सभा, (जिसकी स्थापना भी उसके संस्थापक श्री श्याम सुन्दरदास ने अपने विद्यार्थी जीवन काल में प्रयाग में ही किया था, काशी तो इस संस्था का विकास स्थान है) के अतिरिक्त कोई ऐसी संस्था हिन्दी के क्षेत्र में काम नहीं करती थी जो उल्लेखनीय हो। जिन क्षेत्रों में हिन्दी जनसाधारण की मातृभाषा थी वहाँ सन् १९१० में प्राथमिक शिक्षा हिन्दी में दी जाती थी। उच्च शिक्षा प्रदान करनेवाले कालेजों की बात अलग रही, हाईस्कूल में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो सकती है, इस तक की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। पुराने काव्य-साहित्य को छोड़कर हिन्दी में बहुत थोड़े साहित्य का निर्माण हुआ था। उच्च कक्षाओं में पढ़ाने के लिए न पुस्तकें उपलब्ध थीं और न अध्यापक ही। अँगरेजी राज्य था और अँगरेजी भाषा में हमारे देश की सारी शिक्षा-दीक्षा और परीक्षा होती थीं। ऐसी विकट परिस्थिति में सम्मेलन ने अपना कार्य्य आरम्भ किया। सन् १९१४ में इस संस्था ने अपनी विशिष्ट परीक्षाएँ और उनके लिए पाठ्यक्रम निर्धारित किये। इसके लिए पाठ्य पुस्तकों की रचनाएँ होने लगीं। जो विद्यार्थी आदिकाल में शिक्षार्थियों के रूप में आये, वे ही लोग आगे चलकर अध्यापक बन गये। पहले हिन्दी क्षेत्र में ये परीक्षाएँ जन प्रिय हुईं और फिर अहिन्दी प्रान्तों में, यहाँ तक

कि दक्षिण भारत तक पहुँच गई। आज इस देश का एक भी ऐसा क्षेत्र नहीं जहाँ इस संस्था के 'विशारद' और 'साहित्यरत्न' न हो।

गाँवों के उन्नति के कार्यों में जिस प्रकार अंगरेजी सरकार गान्धी जी का अनुसरण करती थी और गांधी जी की ग्राम सुधार के किसी योजना के बनने पर वह अपनी योजना बना उससे प्रतियोगिता का प्रयत्न करती थी। उसी प्रकार हिन्दी में भी उच्च शिक्षा देने के लिए पाठ्यक्रम सरकार सम्मेलन की परीक्षाओं की नकल करती थी। विश्वविद्यालयों में हिन्दी की प्रतिष्ठा का आरम्भ सचमुच सम्मेलन की इन्हीं परीक्षाओं द्वारा ही हुआ। शिक्षा और परीक्षाओं के सिवाय हिन्दी के प्रति अहिन्दी प्रान्तों के विद्वानों और जनता की सहानुभूति और सम्पर्क स्थापित करने का पुण्य कार्य इसी सम्मेलन ही के द्वारा सम्पन्न हुआ। आज हिन्दी का राष्ट्रभाषा पद पर आसीन होने का श्रेय सम्मेलन के प्रचार कार्य को ही है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जिन भावनाओं और जिन परिस्थितियों की आवश्यकता थी उनका जागरण और निर्माण सम्मेलन ने ही किया। बिना सम्मेलन के इन प्रयत्नों के हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा और देवनागरी राष्ट्रलिपि हो सकती है, यह सोचा तक न जा सकता था। गत चालीस वर्षों में हिन्दी में साहित्य निर्माण की जो प्रगति रही है उसमें भी सम्मेलन का कम हाथ नहीं है। सम्मेलन ने हिन्दी के स्तर को ऊँचा उठाया। जिस संग्रहालय की सम्मेलन ने स्थापना की है वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

सम्मेलन और उसकी विविध प्रान्तीय, उप प्रान्तीय, शाखा प्रशाखाओं का जैसा देश व्यापी संगठन है वैसा हिन्दी में न तो सम्मेलन की स्थापना के पूर्व कोई संगठन था और न आज है। सबसे बड़ी बात यह है कि सम्मेलन ने सारा कार्य प्रतिकूल परिस्थितियों में किया है। उसे राजाश्रय प्राप्त न था वरन् इसके प्रतिकूल विदेशी सरकार ने सदा उसके कार्यों में विघ्न बाधाएँ उपस्थित किया। उसका सारा कार्य अँगरेजी राज्य के समय में हुआ।

सम्मेलन का उद्देश्य—साहित्यिक अंगों की पुष्टि और उन्नति, देश व्यापी व्यवहारों और कार्यों को सुलभ बनाने के लिए राष्ट्र लिपि देव नागरी, राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार, हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनाने, सरकारी प्रबन्धों, कार्यालयों, कचहरियों में प्रवेश कराने का आन्दोलन, विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी बनाये जाने का आन्दोलन, हिन्दी की उच्च

परीक्षाओं की व्यवस्था, उदीयमान लेखकों, कवियों, पत्रकारों को उत्साहित करना और पदक तथा पुरस्कार से सम्मानित करना, हिन्दी के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज तथा प्रकाशन आदि कार्य करना ही इस संस्था का प्रधान उद्देश्य है। सम्मेलन का कार्य विभिन्न भागों में बँटा हुआ है :—

परीक्षा विभाग —यह विभाग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसकी परीक्षाओं में १६४५ के आंकड़ों के अनुसार लगभग ५५०० विद्यार्थी बैठते हैं। ये हिन्दी विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। अहिन्दी भाषी दक्षिण भारत में उक्त परीक्षाओं से सरल परीक्षाओं का प्रबन्ध राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा को सौंप दिया गया है। पंजाब और काश्मीर में भी सरल परीक्षाओं की व्यवस्था किया गया है। हिन्दी विश्वविद्यालय की सबसे ऊँची परीक्षा 'साहित्य रत्न' है। इसके अनेक केन्द्र भारतवर्ष में हैं। ये परीक्षाएँ उत्तर प्रदेशीय बोर्ड तथा अन्य प्रान्तों के विश्वविद्यालयों द्वारा मान्य हैं। प्रयाग में इन परीक्षाओं की पढ़ाई के लिए 'हिन्दी साहित्य विद्यालय' की स्थापना की गई है। परीक्षा केन्द्रों की संख्या ४०० के लगभग है। निरीक्षक इनकी देख रेख करते हैं।

प्रचार विभाग —के उद्योगों से प्रान्तीय और जनपदीय सम्मेलनों का आयोजन होता है। पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित होते हैं। विद्यालय खोले जाते हैं। परीक्षाओं के केन्द्र स्थापित किये जाते हैं। सदस्य बनते हैं और कारखानों, मिलों, और व्यक्तिगत व्यापारिक संस्थाओं में हिन्दी को जनप्रिय बनाया जाता है। प्रचारकों का संगठन है। वे लोग जिलों में दौरा करते हैं।

हिन्दी संग्रहालय विभाग —श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन इस विभाग को सर्वश्रेष्ठ बनाना चाहते हैं। इसमें २० हजार पुस्तकें हैं। वाचनालय में १५० मासिक, दैनिक और साप्ताहिक पत्र आते हैं। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्री रामदास गौड़, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी आदि स्वर्गीय साहित्यिकों के पत्र और अलबम तैयार हैं। संग्रहालय भवन में सभी साहित्यिकों और देशी विदेशी मल्लों के चित्र हैं।

साहित्य विभाग—इसके अन्तर्गत खोज द्वारा प्राप्त प्राचीन पुस्तकों, मौलिक ग्रन्थों और अनूदित कृतियों के प्रकाशन का प्रबन्ध होता है। लगभग २०० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। विज्ञान तथा वाणिज्य के विषय के लिए

पारिभाषिक शब्दों के गढने और पुस्तकों के सम्पादन का अलग से प्रबन्ध है। यहीं से सम्मेलन पत्रिका भी निकलती है जिसका सम्पादन श्री रामनाथ जी सुमन करते हैं। सम्मेलन से सम्बद्ध भारत मे दूर दूर स्थापित ६० संस्थाएँ हैं जो इससे प्रेरणा ग्रहण करती हैं। निम्नलिखित पारितोषिक दिये जाते है :—मंगला प्रसाद पारितोषिक, सेकसरिया महिला पारितोषिक, राधामोहन गोकुल जी पारितोषिक, नारग पुरस्कार, केवल पंजाब निवासी हिन्दी कवि को 'गोपाल पुरस्कार' रत्न कुमारी पुरस्कार ये अलग अलग विषयों और नियमो के अनुसार दिये जाते हैं। यह हिन्दी की विशेष सस्था है। इसे अनेक राष्ट्रीय नेताओं और प्रमुख साहित्यकारों का आशय प्राप्त हो चुका है। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन इस संस्था के गाधा स्वीकार किये जाते हैं।

प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन—सन् १६२० ई० में इस संस्था का उद्घाटन हुआ। इसका कार्य कुछ दिनों तक शिथिल अथवा स्थगित सा रहा। प० श्रीनारायण चतुर्वेदी के प्रयत्नों से फिर कार्य आरम्भ हुआ, सन् १६४१ ई० में फैजाबाद में इसका अधिवेशन हुआ। अखिल भारतीय रेडियो की भाषा नीति नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। रेडियो विरोधी दिवस मनाया गया। कचहरियो में हिन्दी प्रयोग के लिए आन्दोलन किया गया। सन् १६५२ ई० में डा० बाबूराम सक्सेना, प्रोफेसर विश्वविद्यालय प्रयाग की अध्यक्षता में पुन जौनपुर म इसका खुला अधिवेशन हुआ।

सम्मेलन द्वारा दिये जानेवाले पुरस्कार—साहित्य सम्वर्द्धन और साहित्यकारों के सम्मान में प्रतिवर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से विभिन्न विषयों की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं पर भिन्न भिन्न पारितोषिक प्रदान किये जाते हैं। इन परितोषिकों की सख्या ६ हैं, जिनका आयोजन और संगठन स्थायी समिति की ओर से नियुक्त उप समितियाँ अलग अलग किया करती हैं। प्रत्येक पारितोषिक सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन पर अध्यक्ष द्वारा विजेता को रोली, नारियल आदि मगल द्रव्यो से सम्मानित किये जाने के बाद दान किया जाता है। पारितोषिक द्रव्य के साथ ही एक ताम्रपत्र भी प्रदान किया जाता है, जिसम पारितोषिक का विवरण अंकित रहता है। प्रस्तुत पारितोषिकों में मंगलाप्रसाद परितोषिक हिन्दी जगत् का महत्त्वपूर्ण परितोषिक है।

मंगला प्रसाद पुरस्कार—प्रतिवर्ष बारह सौ रुपयों का यह पारितोषिक हिन्दी की किसी मौलिक रचना के सम्मानार्थ सम्मेलन द्वारा दिया जाता है। सकलित, संग्रहीत, अनूदित ग्रन्थ, मौलिक रचना के अन्तर्गत नहीं समझे जाते। पूरा पारितोषिक एक ही लेखक को दिया जाता है। भिन्न भिन्न लेखकों को वितरित नहीं किया जाता। प्रतिवर्ष स्थायी समिति द्वारा 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' समिति का संगठन हुआ करता है जिसमें ५ सदस्य और एक प्रतिनिधि पुरस्कार-दाता का रहता है। पारितोषिक-निर्णय के लिए आई हुई पुस्तकें उक्त विषय के विशेषज्ञों के पास भेजी जाती हैं। पारितोषिक के लिये काव्य, निबन्ध, इतिहास, समाज शास्त्र, दर्शन, तात्विक विज्ञान, व्यवहारिक विज्ञान ये सात विभाग हैं। प्रत्येक कृति के सम्बन्ध में पारितोषिक समिति निश्चय करती है कि वह किस विभाग के अन्तर्गत है। इस पारितोषिक के दाता भी गोकुलचन्द रईस हैं। इसका प्रारम्भ सम्वत् १९७१ में हुआ।

मंगला प्रसाद पुरस्कार प्राप्त विद्वान—प्रारम्भ से अब तक जिन विद्वानों को उनकी सर्वश्रेष्ठ कृतियों पर पुरस्कार प्रदान किया गया है उनकी क्रमबद्ध सूची इस प्रकार है:—१—श्री पद्मसिंह शर्मा—बिहारी सतसई, १९७९। २—श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—प्राचीन लिपिमाला, १९८०। ३—श्री प्रो० सुधाकर—मनोविज्ञान १९८२। ४—श्री त्रिलोकीनाथ वर्मा—हमारे शरीर की रचना, १९८३। श्री वियोगी हरि—वीर सतसई १९८४-८५। प्रो० सत्यकेतु—मौर्य साम्राज्य का इतिहास, १९८६। श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय—आस्तिकवाद, १९८७। डा० गोरखप्रसाद—फोटोग्राफी की शिक्षा, १९८८। मुकुन्द स्वरूप—स्वास्थ्य-विज्ञान, १९८९। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार—भारतीय इतिहास की रूप-रेखा, १९९०। श्री चन्द्रावती लखनपाल—शिक्षा मनोविज्ञान १९९१। श्री रामदास गौड़—विज्ञान हस्तामलक, १९९२। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय; प्रियप्रवास, १९९३। श्री मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, १९९३। श्री जयशंकर प्रसाद—कामायनी १९९४। श्री रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि, १९९५। श्री वासुदेव उपाध्याय—गुप्त साम्राज्य का इतिहास, १९९६। श्री सम्पूर्णानन्द—समाजवाद, १९९७। श्री बल्देव उपाध्याय—भारतीय दर्शन, १९९८। श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव—सूर्य सिद्धान्त की विज्ञान भाषा, १९९९। श्री शंकरलाल गुप्त—क्षयरोग, २०००। श्रीमतीमहादेवी वर्मा—रश्मि, नीरजा, आधुनिक कवि, २००१। डा० हजारीप्रसाद
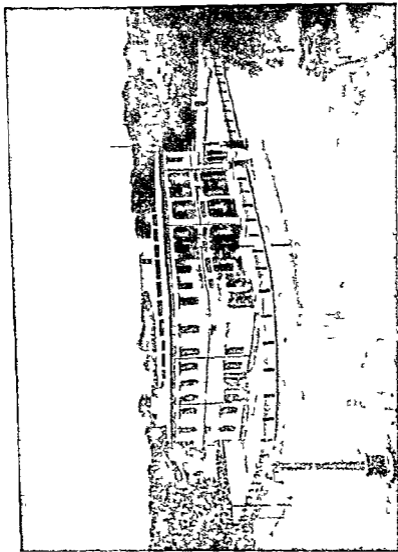
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

द्विवेदी—कबीर, २००२। श्री रघुवीरसिंह—मालवा में युगान्तर, २००३। श्रीकमलापति त्रिपाठी—बापू और मानवता, २००४। श्री सम्पूर्णानन्द—चिद्विलास, २००५।

सेकसरिया महिला पुरस्कार—सम्मेलन के अधिवेशन में प्रतिवर्ष ५००) का सेकसरिया महिला पारितोषिक किसी भी महिला को उसकी रचित हिन्दी की किसी मौलिक रचना के लिए दिया जाता है। प्रमाण-पत्र, ताम्रपत्र आदि सभी पारितोषिकों के नियम एक ही प्रकार के होते हैं। इस पारितोषिक में ५ सदस्यों की एक उपसमिति संगठित होती है। इस पुरस्कार के दाता श्री सीताराम सेकसरिया हैं। इसका प्रारम्भ सम्वत् १९८८ (सन् १९३१) से हुआ। इस पुरस्कार के प्राप्तकर्त्ता विदुषी महिलाएँ इस प्रकार हैं—

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, 'मुकुल', बिखरे मोती। श्रीमती चन्द्रावती—स्त्रियों की स्थिति, श्रीमती महादेवी वर्मा—नीरजा, श्रीमती रामकुमारी चौहान—निःश्वास। श्रीमती दिनेश नन्दिनी-डालमियाँ शबनम, श्रीमती सूर्यदेवी दीक्षित—निर्झरणी, श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल—जागृति, सुमित्रा कुमारी सिनहा—विहाग। तारा पाण्डे—आभा, चन्द्रावती ऋषभसेन जैन 'नींव की ईंट'। चन्द्रकिरन सौनरिक्सा, 'आदमखोर'। शान्ति एम० ए० 'रेखा'। उषादेवी मित्रा, सान्ध्यपूर्वी। राधादेवी गोयनका, 'नारी-समस्या'।

श्री राधामोहन गोकुल जी पुरस्कार—समाज सुधार विषय पर किसी मौलिक पुस्तक पर ७५०) का यह पुरस्कार प्रतिवर्ष दिया जाता है। यह पारितोषिक राधामोहन गोकुल स्मारक-समिति की ओर से श्री राधामोहन गोकुल जी की स्मृति में दिया जाता है। इसका प्रारम्भ काल सन् १९३७ है। पुरस्कृत विद्वानों के नाम इस प्रकार है।

श्री सत्यदेव विद्यालंकार—परदा, रामनारायण यादवेन्दु 'भारत की दलित समाज', श्री व्यथित हृदय—पहिली भेंट।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अतिरिक्त प्रयाग विश्वविद्यालय के अन्तर्गत अर्थशास्त्र परिषद् नामक संस्था भी हिन्दी साहित्य क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय है। इस संस्था में लगभग ६०० सदस्य हैं। अर्थशास्त्र के ज्ञान का प्रचार ही इस संस्था का उद्देश्य है। सारा काम हिन्दी में होता है। 'ख्याति' नामक वार्षिक पत्रिका प्रकाशित होती है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आख्यायिका, उपन्यास, निबन्ध,

गद्य काव्य, कहानी, समालोचना सम्बन्धी साहित्य के लेखक और रचयिता भी प्रयाग में पर्याप्त संख्या में वर्तमान हैं। इस क्षेत्र में डा० धीरेन्द्र वर्मा का नाम विशेष श्रद्धा के साथ गिना जाता है।

कविता के क्षेत्र में प्रयाग—भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के मृत्यु के बाद खड़ी बोली साहित्यिक रूप धारण कर चुकी थी और उसमें महत्त्वपूर्ण रचनाएँ भी होने लगी थीं। अतएव खड़ी बोली शीघ्र ही काव्य क्षेत्र में अग्रसर होने लगी। इस क्षेत्र में प्रयाग निवासी प० श्रीधर पाठक, वीर सतसई पर मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त करनेवाले श्री वियोगी हरिजी, प० रामनरेश त्रिपाठी, प० माधव शुक्ल का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

अभी थोड़े दिनों से हिन्दी काव्य क्षेत्र में एक नवीन धारा का प्रादुर्भाव हुआ है जिसे छायावाद कहते हैं। इस समय छायावादी कवियों में डा० रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, सुमित्रा नन्दन पन्त, प० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम सारे भारत में श्रद्धा के साथ लिया जाता है। छायावाद अपने पथ पर बड़ी शीघ्रता से चल रहा है। इसका श्रेय काव्यलोक के इन्हीं नक्षत्रों को है इनका कार्य क्षेत्र आजकल प्रयाग ही है। जहाँ से ये जगमगाते नक्षत्र अपनी किरणों के प्रकाश से हिन्दी साहित्य को आलोकित कर रहे हैं। 'मधुशाला' के प्रसिद्ध कवि हरिवंशराय 'बच्चन' भी प्रयाग के निवासी हैं।

उर्दू भाषा में कविता करनेवालों में कविवर अकबर, नूह नारवी, तथा कविवर सुखदेव प्रसाद सिनहा 'विस्मिल' का नाम भारत के उर्दू क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय है।

डा० रामकुमार वर्मा—का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जिले में १५ नवम्बर सन् १९०५ में हुआ था। इनके पिता लक्ष्मीप्रसाद जी वर्मा डिप्टी कलेक्टर थे। अतः उन्हें नौकरी के सिलसिले में मध्यप्रदेश के अनेक जिलों में घूमना पड़ा। इसलिये कुमार जी की प्रारम्भिक शिक्षा मध्यप्रदेश के भिन्न भिन्न स्थानों में हुई। हिन्दी की शिक्षा तो इनकी माता श्रीमती राजरानी देवी ने इन्हें घर पर ही दी थी। बचपन से ही कुमार में प्रतिभा के चिन्ह थे, ओज था, सौन्दर्य था और अपने सहपाठियों में सर्वश्रेष्ठ श्रमी और उत्साही होने का व्यक्तित्व था। विशेषता तो यह थी कि अपने स्कूल के खेलकूद, नाटक इत्यादि में भी सर्व

कुमार केवल १६ वर्ष के थे, माता जी ने प्रसन्न होकर इन्हें ५१) अपने पास से दिया। इस कविता की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

'जिस भारत की धूल लगी है तन में।
क्या मैं उसको कभी भूल सकता जीवन में।
चाहे घर में रहूँ, रहूँ अथवा मैं वन में।
पर मेरा मन लगा हुआ है इसी वतन में।

असहयोग आन्दोलन के शिथिल पड़ जाने पर माँ की अनुरोध से इनको फिर स्कूल में नाम लिखाना पड़ा। अन्त में प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् १९२९ ई० में प्रथम श्रेणी में सर्व प्रथम होकर हिन्दी में एम० ए० पास किया। उस समय तक प्रयाग विश्वविद्यालय की एकेडिमिक काउन्सिल के दो बार सदस्य निर्वाचित हुए। 'हिन्दी स्टडीज कमेटी आफ कोर्सेज' के सदस्य चुने गये। कायस्थ पाठशाला यूनिवर्सिटी कालेज के ट्यूटर और ट्रस्ट के ट्रस्टी भी बनाए गये। सन् १९३४ के अखिल भारतीय कवि सम्मेलन जबलपुर के सभापति भी निर्वाचित हुए। सन् १९३५ में ओरछा नरेश प्रदत्त २०००) के देव पुरस्कार विजेता हुए और सन् १९३७ में रायगढ-नरेश प्रदत्त ५००) के चक्रधर पुरस्कार के अधिकारी हुए। तीन साल तक अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य मंत्री तथा सम्मेलन पत्रिका के सम्पादक रहे। इस समय प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'कौमुदी' के सम्पादक और हिन्दी विभाग में प्रोफेसर हैं। कुमार जी ने अब तक २० पुस्तकों की रचना की है। विषय क्रम से उनकी रचनाएँ इस प्रकार रखी जा सकती हैं।

कविता—(गीतात्मक) अंजलि, रूपराशि, चित्ररेखा, चन्द्रकिरण, (वर्णनात्मक) वीर हम्मीर, निशीथ, चित्तौड़ की चिता, अभिशाप।

आलोचना—साहित्य समालोचना, कबीर का रहस्यवाद, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

गद्यगीत—हिमहास, नाटक—पृथ्वीराज की आँखें, १८ जुलाई की शाम।

संग्रह—हिन्दी गीत काव्य, कबीर पदावली, आधुनिक हिन्दी काव्य और जौहर आदि।

श्रीमती महादेवी वर्मा—आपका जन्म फरुखाबाद में सन् १९०७ ई० में हुआ। आपने एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। अनेक कवि सम्मेलनों में सभा

नेत्री रह चुकी हैं। मासिक 'चाँद' इलाहाबाद की आप सम्पादिका रह चुकी हैं। आपकी नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, यामा, अतीत के चलचित्र, और संस्मरण आदि प्रभृत पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक विचारशील और स्त्री समाज सम्बन्धी निबन्धों और कविताओं के दो तीन संग्रह अभी अप्रकाशित हैं। आप कुशल चित्रकर्त्री भी हैं। 'नीरजा' पर ५००) पुरस्कार मिला है। 'महादेवी का आलोचनात्मक गद्य' नाम से आपके कुछ निबन्धों का एक संकलन भी प्रकाशित हुआ है। आपके गौरवपूर्ण ग्रन्थों के सचित्र संस्करण बड़ी सज-धज से प्रकाशित हुए हैं, जिनमें आप ही के हस्त-लेख में सारी रचनाएँ छपी हैं। आप इस समय एम० एल० सी० यू० पी० तथा

श्रीमती महादेवी वर्मा

महिला विद्यापीठ प्रयाग की मुख्याध्यापिका हैं। महादेवी जी का कार्यक्षेत्र प्रयाग रहा है। यहीं उन्होंने एम० ए० तक संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की और यहीं वर्षों से महिला विद्यालय की अधिष्ठात्री हैं और छायावादी कवि के रूप में ये प्रसिद्ध हैं।

'अतीत के चलचित्र', और 'शृंखला की कड़ियां' (१६४२) लिखकर आपने हिन्दी गद्य शैली में नई कला का परिवर्त्तन किया है। चित्रकर्त्री होने के कारण आपकी भाषा भी आलंकारिक और चित्र बहुल है। कहीं कहीं सरल भाषा में वह मानवीय सम्वेदना को बहुत सुन्दर कलात्मक ढग से उपस्थित कर सकी हैं।

सुमित्रानन्दन पन्त—आपका जन्म १४ मई १६०० ई० में अल्मोड़ा ज़िला के अन्तर्गत ग्राम कौसानी में हुआ। नवीं कक्षा तक राजकीय हाई स्कूल अल्मोड़ा, दसवीं कक्षा जयनारायण हाई स्कूल बनारस; एफ० ए० के लिये म्योर कालेज प्रयाग में भरती हुए, किन्तु एफ० ए० क्लास से ही कालेज छोड़ दिया। आप अंग्रेजी, संस्कृत और बँगला भाषा के श्रेष्ठ जानकार हैं। कई वर्ष तक मासिक 'रूपाभ' का सम्पादन किया। उच्छ्वास, पल्लव, पल्लविनी, वीणा, ग्रन्थि, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, मधुज्वाला, परी, क्रीड़ा, रानी, ज्योत्सना (नाटक) पाँच कहानियाँ (कहानी संग्रह), उमर खैयाम की रुबाइयाँ (अनुवाद) नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अखिल भारतीय रेडियो और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बीच समझौते के फलस्वरूप आप सलाहकारिणी समिति के अध्यक्ष नियुक्त हुए हैं। उत्तर प्रदेशीय सरकार की ओर से आप को पुरस्कार प्रदान किया गया है। आजकल आप अखिल भारतीय रेडियो इलाहाबाद में काम कर रहे हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—आपका जन्म सन् १८६६ में महिषादल राज के अन्तर्गत मेदनीपुर बगाल में हुआ। आपने सगीत, साहित्य, बगला और अंग्रेजी भाषा में शिक्षा प्राप्त की है। 'समन्वय' और श्रीराम कृष्ण मिशन कलकत्ता से प्रकाशित 'मतवाला' के आप सम्पादक रह चुके हैं। गांधी और जवाहर ऐसे नेताओं के विरोध में हिन्दी का समर्थन किया। प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन फैजाबाद में हिन्दी के प्रति अवज्ञा का विरोध किया। परिमल, गीतिका, तुलसीदास अनामिका, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते नामक काव्य, और अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, चोटी की पकड़, काले कारनामे, नामक उपन्यास आनन्द मठ, कपाल कुण्डला, चन्द्रशेखर, दुर्गेशनन्दनी, कृष्णकान्त की

वसीयत, युगलांगुल दे, रजनी, देवी चौधरानी, राधारानी, विषवृक्ष, राजसिंह,

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

महाभारत, परिव्राजक, श्री रामकृष्ण वचनामृत ४ भाग, विवेकानन्द जी के व्याख्यान, नामक अनुवाद पुस्तकें लिखीं। चतुरी चमार, सुकुल की बीवी, सखी,

स्टेशन पर रेलवे मालगुदाम में २०) माहवार पर नौकर हुए। इसके पश्चात कचहरी में नकल नवीसी के पद पर काम किया। सन् १८६६ ई० में आपको वकालत पास करने की धुन समाई। उस समय ऐसा नियम था कि प्रथम श्रेणी में पास करने वाला हाईकोर्ट में, द्वितीय श्रेणी में पास करनेवाला सेशन जजी म और तृतीय श्रेणी में पास करनेवाला उम्मीदवार मुन्सफी में वकालत कर सकता था। आपने वकालत तो पास कर लिया किन्तु कलेक्टर ने खुश होकर आपको कारा का तहसीलदार नियुक्त कर दिया।

सन् १८७० ई० में आप हाईकोर्ट के मिसिलख्वां नियुक्त हो गये, यहीं आपने हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा पास कर लिया। सात वर्ष तक आप इलाहाबाद, गोंडा, गोरखपुर और आगरा में वकालत करते रहे। सन् १८८० ई० में स्थानापन्न मुन्सिफ, दूसरे साल द्वितीय श्रेणी के स्थाई मुन्सिफ और १८८४ ई० में प्रथम श्रेणी के मुन्सिफ हुए। सन् १८८८ ई० में सबजज और १८६४ ई० में प्रथम श्रेणी के जज खफीफा नियुक्त हुए। २१ मई १८६८ ई० में सरकार ने आपको खान बहादुर के पद से विभूषित किया। सन् १६०३ ई० म आपने सरकारी नौकरी से अवकाश प्राप्त किया। आपका देहान्त शुक्रवार के दिन मुहर्रम की छठवीं तारीख १३४० हिजरी तदनुसार सन् १६२१ में यहीं इलाहाबाद में हो गया। आपके एक योग्य पुत्र थे जिनका नाम इशरत हुसेन था और जिनकी तालीम लन्दन म हुई थी। इन्हीं के नाम से 'इशरत मंजल' बना हुआ है।

आपकी तर्ज शायरी जुदागाना था। आपने भाषा में वह स्वतन्त्रता दिखलाई कि अपनी शायरी में अंग्रेजी तक के शब्दों का प्रयोग किया है। आपने सरकारी नौकरी करते हुए अंग्रेजी सरकार के खिलाफ ऐसे ऐसे अशआर पुरमजाक व तानाजन लिखा है जो अब तक बेजोड़ समझे जाते हैं। आप हिन्दू मुसलमानों के मेल और हिन्दुस्तानी सभ्यता के बहुत हामी थे। आपके शायरी में हर तरह का ख्याल मौजूद है। आपने अपनी कविता की भाषा में बहुत सादगी और रोजमर्रा की बातचीत व मुहावरे के शब्दों का प्रयोग किया है। आप करा कड़ा के रहने वाले मौलवी वहीद उद्दीन साहब 'वहीद' के शागिर्द थे।'

शेख मुहम्मद नूह—हजरत नूह नारवी का पूरा नाम शेख मुहम्मद 'नूह' है। नूह आपका उपनाम है। आपके पूज्य पिता का नाम मौ० अब्दुल मजीद साहेब था। १८५७ के गदर में सरकार ने खैरख्वाही के उपलक्ष में ए

इलाका १० हजार से अधिक सालाना आमदनी की आपके पिता को दिया। १८७७ म आप अपने ननिहाल मौ० भवानीपुर जि० रायबरेली म पैदा हुए। आप बच्चे ही थे कि आपके पिता का सब जजी के ओहदे तक पहुँचकर सन् १८८३ में स्वर्गवास हो गया। चौदह साल की उमर में आपने अपनी जायदाद का प्रबन्ध अपने हाथ म लिया। कविता का शौक आपको मीर नजफअली साहब के सत्सग से हुआ। पहिले आप अपनी रचनाओं का संशोधन इन्हीं के द्वारा कराते थ। बाद में इन्हीं के सलाह से महाकवि 'दाग, देहलवी' के शिष्य हो गये, और दो साल क बाद आप गुरु से मिलने के लिए हैदराबाद पहुच। उसपर 'दाग' ने कहा कि दीवान हाफज तो पहिले देखा था किन्तु हाफिजे दीवान (सग्रह को कण्ठाग्र करने वाले) को आज देखा। नूह अपने घर वापिस आए और पत्रों द्वारा कविता संशोधन कराते रहे।

हजरत नूह हिन्दोस्तान के बड़े बड़े मुशायरों म शरीक होकर अपनी तूफानी कविता की धाक जमा चुके हैं। आपके तीन दीवान उर्दू म छपकर जनता म खूब नाम पैदा कर रहे हैं। आपकी कविता दिल्ली की टकसाली जबान का नमूना है। आप जिस मुहाविरे को कविता म बाँधते हैं वह मानो साँचे की तरह ढल जाता है। आपकी कविता म काव्य सम्बन्धी सभी गुण मौजूद हैं। जिस रग म कलम उठाते हैं उसमें तूफान उठा देते हैं। भाषा इतनी मंजी हुई होती है

कि गद्य और पद्य में कुछ अन्तर ही नहीं मालूम होता। सीधी सादी भाषा में रोज की बोल-चाल में अनूठे भावों को कूट-कूट कर भर देना आप के लिये खेल है। इस समय हिन्दुस्तान में आपकी गणना उच्च कोटि के कवियों में की जाती है। जबान के आप बादशाह समझे जाते हैं। और महाकवि 'दाग' के जानशीन हैं। स्वर्गीय महाकवि 'अकबर' इलाहाबादी आपकी बड़ी कद्र करते थे। नूह साहेब जब इलाहाबाद आते थे तो महाकवि 'अकबर' के मेहमान होते थे। हजरत नूह में कविता संशोधन करने का खास कमाल है। बात की बात में कविता का संशोधन करते हैं। आप की अवस्था इस समय ७५ साल की है। कविवर बिस्मिल के शब्दों में इस गए गुजरे जमाने में उर्दू संसार में आपका दम गनीमत है।

बिस्मिल इलाहाबादी—बिस्मिल का पूरा नाम श्री सुखदेवप्रसाद सिनहा है। उपनाम 'बिस्मिल' इलाहाबादी है। आप मौजा भवानीपुर तहसील सलोन जिला रायबरेली के रहनेवाले मुंशी बिश्वेश्वर दयाल साहब श्रीवास्तव

के सुपुत्र हैं। मगर अब बहुत काल से इलाहाबाद में बस गये हैं। आपका जन्म १८८६ ई० में यहीं हुआ, और आपकी शिक्षा भी मकतब के बाद यहीं

के कायस्थ पाठशाला और मार्डन हाई स्कूल में मिली है। बाल्यकाल से ही आपकी अनोखी रुचि कविता की ओर देखकर आपके चचा स्वर्गीय श्री अनन्त लाल साहेब वकील ने आपको २५ दिसम्बर सन् १६१८ को महा कवि 'दाग' के स्थानापन्न हजरत 'नूह' नारवी की शागिर्दी करने को भेजा। कविता के लिए अपनी ईश्वर-प्रदत्त सामर्थ्य तथा स्वाभाविक अभिरुचि और गुणों के बल पर आप अपने गुरु के सर्वश्रेष्ठ शिष्यों में गिने जाने लगे। नूह साहेब आपको अपने साथ मेरठ, मैनपुरी, लखनऊ, कानपुर, पटना, गया, आरा आदि के मशायरा में ले गये और आपने हर जगह अच्छी कीर्ति प्राप्त किया। इसके बाद से तो आपनी सभी जगह से निमंत्रित होकर भारत भर में स्वय ही अपने नाम की धूम मचादी। आपकी तीन पुस्तकें 'दर्दे दिल' 'तीरेनजर' और 'बिस्मिल की शायरी' प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपकी काव्य-कला पर कैसी धाक है और आपके हृदय में कविता के लिये उत्साह धारा किस प्रबल वेग से बहती है, यह दिखलाने के लिये आपकी लिखी 'हस्ती की रुबाई' पर्याप्त हैं —

एक-एक से कहती है जबाने हस्ती। बेकार है सब नामों निशाने हस्ती।
सौदा न हो सौदा न करो ऐ बिस्मिल। बढ जायगी एक रोज दुकाने हस्ती।

जाता है बहुत जल्द शबाबे हस्ती। मौत आकर उलटती है नकाबे हस्ती।
मयखानऐ दुनिया में सभल अब बिस्मिल। बदमस्त न हो पी के शराबे-हस्ती।

करता हूँ बयाँ सुनिए बयाने हस्ती। कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं शाने हस्ती।
इस साँस की बुनियाद ही क्या है अय बिस्मिल। कच्चे पे हवा के है मकाने हस्ती।

रक्खे हुए हैं सर पे जो ताजे हस्ती। देना पडेगा उनको खिराजे हस्ती।
वे अपने को मिट्टी में मिलाएँ बिस्मिल। मुमकिन नहीं मिल जाय मिजाजे हस्ती।

आपने व्यंग कविता करने में अच्छी सफलता पाई है। आधुनिक स्थिति, सामाजिक तथा राजनैतिक मसला पर आप ऐसी गजब की चुटकी लेते हैं कि आपकी कविताएँ व्यङ्ग के कवि सम्राट् हजरत 'अकबर' इलाहाबादी की कविताओं से अक्सर कुछ बाता में पौजियन ले जाती हैं इसी लिये —

हैरत में है कोई तो कोई पढ के दग है।
'बिस्मिल' की शायरी में जो 'अकबर' का रग है।

आपने विचारों की सफाई, तर्ज़बयान, लेखन शैली, शब्दों और मुहाविरों के प्रयोग तथा बयान की सादगी ने हिंदी का कैसा उपकार किया है यह आपके निम्न पद से स्पष्ट है —

सहल लिख लिखकर क्या यह अच्छा तमाशा कर दिया।
हंसते बिस्मिल ने तो 'उर्दू' को भाषा कर दिया।

श्री दुर्गाप्रसाद रस्तोगी 'आदर्श'—आप दारागंज निवासी एक प्रतिष्ठित रस्तोगी परिवार के वंशज हैं। आपके पूर्वज कपड़े और महाजनी के गणयमान व्यापारी समझे जाते थे। आपका जन्म सन् १६१४ में हुआ। वह व्यापार इस परिवार में अब भी जारी है, किन्तु आपकी प्रवृत्ति सामान्यतः साहित्य और कविता की ओर अधिक है। ऐसा कहा जाता है कि रस्तोगी समाज के आप सर्व प्रथम कवि तथा सरल साहित्यकार हैं। प्रयाग में हिंदी साहित्य सम्मेलन, तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के छत्रछाया में हिंदी साहित्य का एक प्रभावशाली वातावरण उत्पन्न हो गया है जिसके
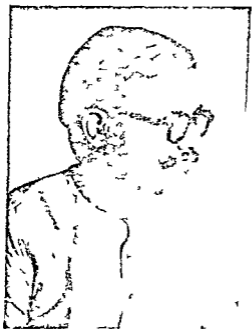
कारण यहाँ लेखकों तथा कवियों की संख्या उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हो रही है। ऐसे ही नवीन कवियों में आपका अच्छा स्थान है। आप लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही के उपासक हैं। साथ ही आपकी अभिरुचि जन सेवा की ओर भी है।

कविता के क्षेत्र में आपने अपने अध्ययन और अनुभव से कविता के विभिन्न अंगों की अभिव्यक्ति अपनी कला युक्त भाषा के द्वारा की है। साहित्य परिशीलन ने आपको तरुणावस्था में ही अधिक गम्भीर और उत्तरदायित्व पूर्ण बना दिया है। आज कल के कवियों में आन्तरिक रहस्यों का उदघाटन की जो प्रवृत्ति पाई जाती है, उसमें आपने विशेष सफलता प्राप्त की है।

हिन्दी साहित्य में आपने गद्य तथा पद्य में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, यथा पद्य में—विरहगीत, समरगीत, प्रगतिगीत, राजर्षि महिमा, गांधीगीता कसक—और गद्य में विजय लक्ष्मी पंडित का जीवन चरित्र, व्यवधान (उपन्यास), कालासॅप तथा निद्रा आदि। डा० अमरनाथ झा ने आपके विषय में लिखा है "इस समय हिन्दी कवियों में तो प्राय कोई लेखक ऐसा नहीं है जिसकी कृति में दुःख अंधकार और वेदना का स्थान इतना व्याप्त हो जितना इस लेखक में है।" आपके पुस्तक 'विरह गीत' के कुछ पंक्तियाँ नमूने के तौर पर इस प्रकार हैं —

लोग काव्य मुझको बनाते
सुयश कविता का सुनाते।
बीतती जो हाय दिल पर
वह न कोई जान पाते।
जो कलेजा चीर पाता
क्यों विरह के गीत गाता।

प्रयाग विश्वविद्यालय और हिन्दी—प्रयाग विश्वविद्यालय की संस्थापना सन् १८८७ ई० में हुई किन्तु इसकी पृष्ठभूमि स्वरूप, आगरा व अवध प्रान्त के लिए एक केन्द्रीय कालेज इलाहाबाद में खोलने का विचार सन् १८७० ई० में ही हो चुका था। इस केन्द्रीय कालेज की संस्थापना का विचार आरम्भ में दो उद्देश्यों को लेकर हुआ था। प्रथम तो यह कि प्रान्त भर के मुख्य मुख्य वर्नाक्यूलर स्कूलों को सँभाला जाय और उनके अन्तिम परीक्षाओं का यह केन्द्र हो। द्वितीय उद्देश्य यह था कि यह कालेज कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिया जाय ताकि यहाँ से कला विभाग के विद्यार्थी वहाँ परीक्षा दे सकें। इस विचार से इसी साल म्योर सेन्ट्रल कालेज की संस्थापना एक किराये के बंगले में हुई और वर्तमान इमारत का शिलान्यास तात्कालिक वायसराय लार्ड डफरिन द्वारा सन् १८८६ ई० में किया गया। उस समय से उच्च कालेज

उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता गया और इसके इर्द गिर्द मुस्लिम होस्टल, मैकडानेल्ड हिन्दू बोर्डिंग हाउस (अब मदनमोहन मालवीय कालेज) आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज होस्टल बन गये। सन् १८८७ ई० के एक्ट १८ के अनुसार प्रयाग विश्वविद्यालय संस्थापित हुआ, और इसका उद्घाटन सर अल्फ्रेड लायल ने प्रथम कन्वोकेशन में किया, यद्यपि सन् १८८८ ई० तक कोई परीक्षा का कार्य इस विश्वविद्यालय द्वारा नहीं हुआ था। इस विश्वविद्यालय का प्रबन्ध एक सिनेट (वर्तमान कार्यकारिणी समिति) द्वारा किया जाता था जिसके सदस्य कुलपति, उपकुलपति तथा फेलोज होते थे और यही कमेटी विभिन्न विभागों के अध्यक्षों में से कुछ सदस्यों को चुनकर एक सिन्डीकेट नियुक्त करती थी। यह विश्वविद्यालय आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से सम्बन्धित थी। उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश मध्यभारत और राजपूताना के सब कालेज इस विश्वविद्यालय से सम्बन्धित थे, और प्रयाग स्थित क्रिश्चियन कालेज, म्योर सेन्ट्रल कालेज के कला और विज्ञान की परीक्षा के लिए, तथा ब्वायज हाई स्कूल तथा कायस्थ पाठशाला, एफ० ए० के परीक्षा के लिये इस विद्यालय से सम्बन्धित थे।

सन् १९२२ ई० में सर सी० वाई० चिन्तामणि के मन्त्रित्व में विश्वविद्यालय का पुनः संगठन हुआ और तब से इसमें शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। हिन्दी विभाग की स्थापना सन् १९२४ में हुई। आरम्भ में केवल पाँच विद्यार्थी थे जिन्हें पढाने के लिये एक अध्यापक पर्याप्त था। पश्चात् हिन्दी विद्यार्थियों की संख्या बढते बढते अब सहस्र के लगभग हो गई है और फ्रान्स, बेल्जियम आदि विदेशों से भी विद्यार्थी यहाँ हिन्दी पढने आया करते हैं। अध्यापकों की संख्या इस समय १२ है। इसके अन्तर्गत आज चार संस्थाएँ कार्य कर रही हैं :—

(१) भारतीय हिन्दी परिषद्—यह संस्था पिछले सन् १९४१ से भाषा और साहित्य के क्षेत्र में कार्य कर रही है। सदस्यता विशेष रूप से देशी विद्यालयों के हिन्दी अध्यापकों तक सीमित है। प्रमुख योजना वैज्ञानिक अंगरेजी हिन्दी कोष का प्रकाशन है, जिसके दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं और शेष दो शीघ्र ही प्रकाशित होंगे। दूसरी उल्लेखनीय योजना हिन्दी साहित्य के एक बृहत् इतिहास का प्रकाशन है जो विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों द्वारा लिखा जा रहा है। विश्वविद्यालयों में हिन्दी माध्यम के लिये यह संस्था आरम्भ से ही प्रयत्नशील रही है। इसकी मुखपत्रिका 'हिन्दी अनुशीलन' है।

(२) हिन्दी परिषद्—इसकी स्थापना हिन्दी विभाग की स्थापना से पूर्व ही सन् १९२२ में हुई थी। इसके तत्वावधान में प्रतिवर्ष साहित्यिक समारोह होते रहे हैं। इसके गल्प सम्मेलनों में पुरस्कृत संकलन 'गल्प माला' के नाम से छप चुका है। इसके अधिवेशनों में पढ़े गये निबन्ध 'परिषद निबन्धावली' दो भागों में संकलित है। परिषद की मुख पत्रिका 'कौमुदी' १९३५ से प्रतिवर्ष डा० रामकुमार वर्मा के सम्पादकत्व में सुचारु रूप से प्रकाशित हो रही है। इसके प्रकाशन विभाग द्वारा ६ अनुसन्धान पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी एकेडेमी प्रयाग की ओर से ५००) का पुरस्कार श्रेष्ठ रचना पर दी जाती है।

(३) हिन्दी समिति—सन् १९३६ ई० में इसकी स्थापना हुई। इसमें अध्यापकों तथा विद्यार्थियों द्वारा प्रति मास निबन्ध पाठ की योजना होती है।

(४) अध्यापक समिति—विश्वविद्यालय के हिन्दी अध्यापकों की यह समिति है जिसकी बैठक प्रति सप्ताह होती है, जिसमें भाषा, लिपि, और वर्त्तनी के सम्बन्ध में विचार विनिमय होता है। यह विभाग अब स्वतन्त्र हिन्दी भवन बनाने के लिये प्रयत्नशील है।

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के वर्त्तमान अध्यापकों के नाम हैं—सर्वश्री डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट, डाक्टर रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी० एच० डी०, डाक्टर माताप्रसाद गुप्त, डाक्टर उदयनरायन तिवारी (हिन्दी और पाली), डाक्टर लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, श्री उमाशंकर शुक्ल, डा० ब्रजेश्वर वर्मा, डा० हरदेव बिहारी, डा० रघुवंश, श्रीयुत धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त। इस विद्यालय के महिला विभाग की अध्यक्षा हैं श्रीमती चन्द्रावती त्रिपाठी, सहायक हैं डा० शैलकुमारी माथुर और पंडित देवीदत्त शुक्ल।

डा० धीरेन्द्र वर्मा—आपका जन्म सन् १८९७ ई० में बरेली में हुआ, और आपकी एम० ए० तक की शिक्षा देहरादून, लखनऊ और इलाहाबाद में सम्पादित हुई। पेरिस विश्वविद्यालय ने आपको डी० लिट० की उपाधि से विभूषित किया। आप हिन्दी की उच्च कक्षाओं का पाठ्य क्रम क्रमबद्ध करने में लगे रहे हैं। सन् १९३४ में भाषा शास्त्र तथा प्रयोगात्मक ध्वनि विज्ञान के अध्ययन के लिए आप योरुप गये, और सन् १९३५ में परिस विश्वविद्यालय से डी० लिट० की उपाधि प्राप्त किया। हिन्दोस्तानी एकेडेमी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन से निरन्तर सम्बन्ध

रचना है। एकेडेमी की त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी' के सम्पादक मण्डल के एक सदस्य, और आजकल आप एकेडेमी के प्रधान मंत्री हैं। आप 'सम्मेलन पत्रिका' के सम्पादक, तथा भारतीय हिन्दी परिषद प्रयाग के संस्थापक हैं बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र देश जैसे अहिन्दी भाषी प्रदेश में भारतीयता के साथ साथ प्रादेशिक व्यक्तित्व की भावना जाग्रत करने के समर्थक हैं, राजनैतिक उद्देश्य से अस्वाभाविक द्वारा हिन्दी भाषा, लिपि और शैली के साथ खिलवाड़ किये जाने के विरोधी हैं। आपकी लिखी हुई, हिन्दी राष्ट्र, अष्टछाप, ग्रामीण हिन्दी, हिन्दी भाषा और लिपि लालाग, व्रज, व्रजभाषा, व्याकरण, यूरोप के पत्र, विचारधारा नामक प्रसिद्ध पुस्तक अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी साहित्य का इतिहास, तथा मध्यदेश का इतिहास नामक पुस्तकें अभी तक अप्रकाशित हैं। आप इस समय प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राफेसर तथा हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं।

अब तक डी० लिट उपाधि प्राप्त व्यक्ति और उनके विषय इस प्रकार हैं — (१) डा० बाबूराम सक्सेना—अवधी का विकास सन् १९३१, (२) डा० रमा शंकर रसाल – हिन्दी काव्य शास्त्र का विकास सन् १९३१, (३) डा० माता प्रसाद गुप्त—तुलसीदास के जीवन और कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन सन् १९४० (४) डा० दीनदयाल गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, सन् १९४५, (५) डा० उदय नारायण तिवारी—भोजपुरी का विकास सन् १९४५, (६) डा० हरदेव बिहारी—हिन्दी अर्थ विचार, सन् १९४५, (७) डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय—हिन्दी साहित्य और उसकी सांस्कृतिक पीठिका (सन् १७५७ १८५७ तक) सन १९४६ ई०।

अब तक डी० फिल० उपाधि प्राप्त व्यक्ति और उनके विषय इस प्रकार हैं – (१) डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५० स १९००) सन १९४०, (२) डा० श्रीकृष्ण लाल—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१९०० १९२५) सन् १९४१, (३) डा० जानकीनाथ सिंह— हिन्दी छंद शास्त्र, (४) डा० छैल बिहारी लाल गुप्त—आधुनिक मनोविज्ञान के प्रकाश में रस सिद्धान्त का समालोचनात्मक अध्ययन सन् १९४३, (५) डा० व्रजेश्वर वर्मा—सूरदास, सन् १९४५, (६) डा० व्रजमोहन गुप्त—हिन्दी काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ, सन् १९४६, (७) डा० कमल कुलश्रेष्ठ—हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य सन् १९४७, (८) डा० रामरतन भटनागर—हिन्दी समाचार पत्रों

का इतिहास, सन् १६४८, (६) डा० रघुवंश—हिन्दी साहित्य के भक्ति और रीति काल में प्रकृति और काव्य , सन् १६४८, (१०) डा० शैलकुमारी माथुर—हिन्दी काव्य में नारी भावना (१६००-१६४५), (११) डा० कामिल बुल्के—हिन्दी राम साहित्य की पीठिका के रूप में राम कथा का जन्म और विकास, सन् १६४६, (१२) डा० विश्वनाथ मिश्र—अंगरेजी का हिन्दी भाषा और साहित्य पर प्रभाव सन् १६५० (१३) डा० धर्मवीर भारती—सिद्ध साहित्य (१४) डा० भोलानाथ—आधुनिक हिन्दी साहित्य और उसकी पीठिका (१६२६ से १६४७) (१५) डा० लक्ष्मी नारायण लाल—हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति और विकास।

इसके अतिरिक्त डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत हिन्दी से सम्बन्धित अन्य निबन्धों और उनके लेखकों के नाम ये हैं —(१ डा० शैलवती मिश्र—हिन्दी साहित्य और वेदान्त प्रणालियाँ—सूर, तुलसी और कबीर का विशेष अध्ययन, सन् १६४८, डा० जयकान्त मिश्र—मैथिली साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक और उस पर अंग्रेजी का प्रभाव सन् १६४८।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० धीरेन्द्र वर्मा को पेरिस विश्वविद्यालय से 'ब्रज भाषा' विषय पर सन् १६३५ में डी० लिट० की और डा० रामकुमार वर्मा को नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास' पर पी० एच० डी० की उपाधियाँ मिल चुकी हैं।

डी फिल० उपाधि के लिए निम्नलिखित स्वीकृत विषयों पर खोज हो रही है—(१) डा० छैल विहारी लाल गुप्त 'राकेश'—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, (२) श्री हरीमोहन दास टण्डन—व्रज के वैष्णव सम्प्रदाय और उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, (३) टीकम सिंह तोमर—हिन्दी वीर काव्य १६०० १८००, (४) श्री रतनकुमारी—१६वीं शताब्दी में हिन्दी और बंगाल के वैष्णव कवियों की तुलनात्मक अध्ययन, (५) श्री जगदीश गुप्त—गुजराती और व्रज भाषा, कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, १५वीं शताब्दी से १७वीं शताब्दी तक (६) श्री हरिहर प्रसाद गुप्त—भारतीय ग्रामोद्योग से सम्बन्धित शब्दावली, विशेषतया आजमगढ जिले की तहसील फूलपुर में प्रचलित शब्दावली के आधार पर, (७) श्रीमती कान्तिकेशरी सिनहा—हिन्दी मुक्तक काव्य का जन्म और विकास, १८००, (८) कुमारी गोविन्दा आनन्द—

हिंदी साहित्य के रीतिकाल की मन्ति, (६) श्री पारस नाथ तिवारी—कबीर की रचनाओं के पाठ और पाठ सम्बन्धी समस्याओं का आलोचनात्मक अध्ययन, (१०) श्री मातावदल जायसवाल,—स्टैन्डर्ड हिन्दी की उत्पत्ति और विकास, (११) श्री भोलानाथ तिवारी—हिन्दी नीति काव्य, (१२) श्री कीर्तिकुमार अग्रवाल—स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन और उसका आधुनिक हिन्दी साहित्य पर प्रभाव (१८८५ १६४७), (१३) कुमारी हेमलता जनस्वामी—मध्य कालीन तेलगू और हिन्दी वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, (१४) श्री सत्य व्रत सिनहा—भोजपुरी लोक साहित्य, (१५) श्री चन्द्रप्रकाश वर्मा—अवधी लोक कथाओं और गीतों में चित्रित सांस्कृतिक और सामाजिक अवस्था (१६) श्री सुरेश चन्द्र वाजपेई—हिन्दी उपन्यासों की उत्पत्ति तथा विकास, (१७) श्री मूल चन्द अवस्थी—१६वीं शताब्दी के सुधारवादी आन्दोलन और उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव (१८) श्री हरेन्द्र प्रताप सिनहा—मीरा की जीवनी और रचनाएँ।

—

प्रयाग की सांस्कृतिक देन

काश्मीर की मनोरम घाटी से कन्या कुमारी तक और कच्छ के रेगिस्तान से सियाल कलकत्ता नगर तक भारत का त्रिकोण प्रायद्वीप फैला हुआ है। यही आर्यों का घर और हिन्दुओं की जन्मभूमि है। इसी के अन्तर्गत प्रजापति का प्रथम यज्ञ स्थान, गंगा, जमुना, सरस्वती के त्रिवेणी पर त्रिकोणात्मक भूमि पर प्राचीन आर्य संस्कृति तथा सभ्यता का केन्द्र स्थान प्रयाग नगर बसा हुआ है। प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के अनुसन्धान कर्ताओं और पुरातत्व के खोज करने वालों में यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि संसार में सभ्यता और संस्कृति के आठ प्राचीन केन्द्र रहे हैं—सिन्धु और सरस्वती के काँठे में, आदि भारतीय संस्कृति (मोहनजोदड़ो और हरप्पा की खुदाई से सिद्ध है) नील नदी के किनारे मिश्री संस्कृति, बोगाजकुई में खत्ती संस्कृति, जारडन नदी के किनारे मित्तनी संस्कृति, दजला और फरात के कछारों में सुमेरी संस्कृति, कास्पियन के किनारे ईरानी संस्कृति, होआंगहो के किनारे प्राचीन चीन की संस्कृति और गंगा और जमुना के हावे में आर्य संस्कृति। यही आर्य संस्कृति ही प्रयाग की वास्तविक संस्कृति है।

आर्य संस्कृति का प्रथम प्रभात किस पुण्य दिवस को दिखलाई दिया था, यह आज भी गवेषणा का ही विषय है। निश्चय ही आर्य संस्कृति का काल निर्णय करने के लिये बहुतेरे मनस्वी पुरुषों ने अथक परिश्रम किया है। मनस्वी बाल गंगाधर तिलक, हार्मन, जकाबि, मैक्समूलर, मैक्डानेल, विल्सन, वेबर प्रभृति प्राच्य विद्या विशारदों का नाम इस विषय में विशेष उल्लेखनीय है। परन्तु खेद का विषय है कि इनमें से किसी भी मत का दूसरे के साथ ऐक्य नहीं है। सभी विशेषज्ञ हैं, सभी तर्क और युक्ति उपस्थित करते हैं, परन्तु इनके मतों में इतनी विभिन्नता है कि किसी के मत को स्वीकार करने की इच्छा नहीं होती। पचीस हजार, आठ हजार, छः हजार, चार हजार और अन्ततः तीन हजार वर्ष पूर्व आर्य संस्कृति का अविर्भाव काल विभिन्न विद्वानों के मत से है। कुछ वर्ष पूर्व

सिन्धु नदी के तट भूभस्थ प्रदेश मोहन जो-दड़ो और हरप्पा के खण्डहरों का अन्वेषण हुआ है। इस अन्वेषण के बाद भारतीय इतिहास में बहुत बड़े परिवर्तन की सम्भावना दीख पड़ती है। यह ध्वसावशेष ६ हजार वर्षों से भी अधिक पूर्व की किसी सभ्यता का निदर्शन करता है। यह मत इस स्थान की अनुसन्धान समिति के परिचालक सर जान मार्शल का है। इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्र, पुराण, जनश्रुतियाँ, परम्पराएँ और किम्वदन्तियाँ तथा प्रयाग में स्नान के समय किये जाने वाले 'सकल्प' से सिद्ध होता है, और भारत की कोटि-कोटि नर नारियों की आस्था, श्रद्धा, भक्ति और जनता की मान्यताओं से सिद्ध है कि प्रयाग की सभ्यता और सस्कृति बहुत प्राचीन है, क्योंकि कहा जाता है कि प्रयाग म गगा जमुना के सगम पर 'प्रसिद्ध अक्षयवट' है। इसकी विशेषता यह है कि इसका नाश कभी नहीं होता। यहाँ तक कि जब ब्रह्माड महाप्रलय के समय जलमग्न भी हो जाता है। ब्रह्मा जी ने शखासुर से वेदों को पुन प्राप्ति के लिए प्रयाग में अश्वमेध यज्ञ किया था, इसी कारण इसे तीर्थराज कहते हैं। प्राचीन भारत में सप्त पुरियाँ— अयोध्या, मथुरा, माया, काची, काशी, अवन्तिका, पुरी, द्वारावती की बड़ी महिमा है, किन्तु इन सातों पुरियों में प्रयाग की महिमा सर्वोपरि है। इसे तीर्थराज कहते हैं और ये सातों पुरियाँ प्रयाग की रानियाँ है। इन तीनों उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि प्रयाग भारत का बहुत प्राचीन स्थान है। इसे आज के आधुनिक विद्वान् कल्पना और जनश्रुति कह सकते हैं, किन्तु ऐसा कहते समय उन्हें विचार भी करना चाहिये कि कल्पना, अपवाह और जनश्रुतियों की भी कुछ पृष्ठभूमि, एक आधार और विशिष्ट वातावरण हुआ करता है जिस पर वह विकसित और प्रचलित होता है। कुछ भी हो इस तथ्य के पीछे भारत के कोटि-कोटि नर-नारियों की मान्यता मौजूद है जो इस प्रयाग राज को मोक्ष का स्थान स्वीकार करते हैं और आर्यों के सस्कृति की नींव मोक्ष प्राप्ति है। प० जवाहर लाल नेहरू अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दोस्तान की कहानी' में कहते हैं—

"जमुना के नाम के साथ राम, नृत्य और क्रीड़ा की अनेक दन्त कथाएँ जुड़ी हुई हैं और गगा, जिससे बढ़कर भारत की कोई दूसरी नदी नहीं, जिसने भारत के हृदय को मोह लिया है और जो इतिहास के आरम्भ से न जाने कितने करोड़ लोगों को अपने तट पर बुला चुकी है। गगा की उसके उद्गम से लेकर सागर से मिलने तक की कहानी, पुराने जमाने से लेकर आज तक की भारत की सस्कृति

और सभ्यता के, साम्राज्यों के उत्थान और पतन की, विशाल और शानदार नगरों की, मानव के साहस और साधना की, जीवन की पूर्णता और साथ ही साथ त्याग और वैराग्य की, अच्छे और बुरे दिनों की, विकास और ह्रास की, जीवन और मृत्यु की कहानी है"।

वास्तव में गंगा काँठे की संस्कृति ही प्रयाग की संस्कृति है। गंगा तट पर आर्यों की सबसे पुरानी बस्ती कन्नौज में बसी। गंगा के किनारे अनेकों यज्ञ होने लगे, ऐसा इतिहास कहता है। इस कन्नौज के बसाने वाले प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) के चक्रवर्ती राजा पुरुरवा ऐल के पुत्र थे। जयचन्द्र विद्यालंकार ने अपने 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' में लिखा है

"हमारे देश का सबसे पहला राजा मनु वैवस्वत था। मनु के दस पुत्र थे, जिसमें इक्ष्वाकु सब से बड़े तथा अयोध्या के राजा थे। इक्ष्वाकु के समय के लगभग ही मध्यदेश में एक और प्रतापी राजा भी था जो इक्ष्वाकु वंश का नहीं था। उसका नाम पुरुरवा ऐल और उसकी राजधानी थी प्रतिष्ठान। प्रयाग के सामने झूँसी के पास अब भी एक गाँव है 'पीहन', जो उस प्रतिष्ठान का ठीक स्थान समझा जाता है। कहते हैं पुरुरवा की रानी उर्वशी अप्सरा थी। उनका वंश ऐलवंश या चन्द्रवंश कहलाता है (ऐलेश्वर महादेव का मन्दिर आज भी झूँसी में मौजूद है)। ऐल वंश ने शीघ्र ही बड़ी उन्नति की और दूर दूर के प्रदेशों तक अपना राज्य स्थापित कर लिया और उसकी शाखाएँ प्रतिष्ठान के ऊपर और नीचे गंगा के साथ साथ बढ़ने लगी। पुरुरवा के एक पुत्र ने ऊपर की ओर गंगा तट पर कान्यकुब्ज (कन्नौज) में एक नया राज्य स्थापित किया। प्रतिष्ठान वाले मुख्य वंश में पुरुरवा का पोता राजा नहुष हुआ जिसके पुत्र का नाम 'ययाति' था। ययाति के एक भाई ने नीचे गंगा के किनारे वाराणसी (काशी) में एक नया राज्य स्थापित किया, जो बाद में उसके वंशज राजा काश के नाम से काशी का राज्य कहलाने लगा। ययाति आर्यावर्त के इतिहास में सबसे पहिला चक्रवर्ती राजा था। इसके एक पुत्र का नाम 'पुरु' था। पुरु के पास प्रतिष्ठान राज्य रहा और उसके वंशज पौरव कहलाये। इसके ज्येष्ठ पुत्र का नाम 'यदु' था जिसके वंशज प्रसिद्ध यदुवंशी थे जिसमें श्री कृष्णजी का जन्म हुआ था।'

महाकाव्य काल—रामायण और महाभारत महाकाव्य कहलाते हैं। रामायण काल में प्रयाग कौशलेन्द्र महाराजा दशरथ जी के राज्यान्तर्गत था,

निषादराज गुह प्रयाग प्रान्त में अवध का करद राजा था। वर्तमान सिंगरौर (शृंगवेरपुर) उस समय प्रयाग की राजधानी थी। उसी समय महर्षि भरद्वाज वर्तमान आनन्द भवन के सामने गंगा तट पर रहते थे। यहाँ एक विश्वविद्यालय था जिसमें लगभग दस हजार विद्यार्थी संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करते थे। भरद्वाज ऋषि इस विद्यालय के कुलपति (Chancellor) थे। भरद्वाज ऋषि ने यहीं बैठकर 'सर्वतंत्र संग्रह' नामक एक वृहद पुस्तक लिखी थी, जिसका कुछ भाग आज भी बड़ौदा तथा मैसूर राज्य के पुस्तकालय में मौजूद है। इसमें उस समय के आविष्कृत सारे वैज्ञानिक कलाओं का वर्णन है। हवाई जहाज के बनाने, चलाने तथा मरम्मत करने की सब क्रियाएँ उसमें लिखी हैं, जिसका विशद वर्णन इसी पुस्तक में आगे किया गया है।

महाभारत के समय में चन्द्र वंश के राजा झूँसी में राज्य करते थे। महाजनपद काल में जब कि सारा भारत सोलह महाजनपदों में बँटा हुआ था इस भाग का वत्स राज्य कहते थे और महाराज उदयन उसके राजा थे, कौशाम्बी उनकी राजधानी थी। बौद्ध और जैन काल में प्रियदर्शी महाराज अशोक कौशाम्बी के महाराजकुमार के रूप में सूबेदार थे। इन्होंने राज्यारोहण के बाद अपने प्रेम और शांति के सन्देश को जिन सुदृढ़ और सजीव प्रस्तर स्तूपों तथा स्तम्भों पर अंकित करवाया था उसका एक स्तम्भ आज भी इलाहाबाद के किले में मौजूद है जो 'अशोक स्तम्भ' के नाम से जाना जाता है।

ईसवी दूसरी शताब्दी में भारशिव राजवंश ने 'गंगा' तथा शिव को अपना राज्य चिन्ह बनाया। गंगा तट पर किये गये उनके दश अश्वमेध यज्ञों की स्मृति आज भी प्रयाग के दशाश्वमेध घाट में जीवित है।

गुप्तकाल—भारशिवों के पश्चात् महान् गुप्तवंश का उदय हुआ। उनकी राजधानियाँ प्रयाग तथा पटना थीं। प्रयाग में सहजानी, जिसे आजकल 'भीटा' कहते हैं और जिसकी खुदाई अभी हाल ही में हुई है गुप्तवंश की राजधानी थी। प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ राय कृष्णदास जी लिखते हैं।

"गुप्तों ने देश को उदात्त, समृद्ध और सुव्यवस्थित बनाया। उन्होंने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और उन्होंने बड़े २ यज्ञ किये। उन्होंने बहुत ही कलापूर्ण स्वर्ण मुद्रायें चलाई। हूणों की आँधी को उन्होंने बैठ नहीं गँवाया। अपना अतुल पराक्रम लगाकर उन्हें देश के बाहर धकेल दिया। इस

काल मे हमारी कला, सगीत, वाङ्मय और सामाजिक व्यवस्था की सबसे अधिक उन्नति हुई, एव देशव्यापी एकरूपता मिली जा गगा की काठे से चलकर आस पास वाले द्वीपों, जावा, सुमात्रा आदि तक फैल गई । गुप्तों के राजाश्रय ने ही समार को 'कालिदास' प्रदान किया।"

गुप्त वश का प्रसिद्ध सम्राट समुद्र गुप्त जिसे भारत का नेपोलियन कहते हैं अपने विजय का वर्णन प्रयाग किला-स्थित अशोक स्तम्भ पर अंकित कराया और झूँसी मे समुद्रकूप का पुनरुद्धार कराया।

हर्षवर्धन काल—गुप्त सम्राटो के बाद कन्नौज मे मौखरि राज्य वश राज्य करने लगा, उस समय प्रयाग जिला के अन्तर्गत कड़ा को राजधानी बना कर एक राजपूत राजा राज्य करता था जिसके वशज 'यशपाल' थे और प्रसिद्ध महाराजा जयचन्द के पुरखा थे। सम्राट हर्षवर्धन मौखरि वश के थे। इनके विषय मे ह्वेनच्याग चीनी यात्री ने लिखा है कि "सम्राट हर्षवर्द्धन प्रयाग में त्रिवेणी तट पर, हर पाँचवे वर्ष आता था और अपना पूरा राजकोष दान पुण्य म समाप्त कर देता था। हर्ष के सुव्यवस्थित साम्राज्य मे ब्राह्मण और बौद्ध समन्वयात्मक प्रवृत्ति के साथ एकता के धागे मे बँधे हुए थे। कुम्भ मेले में हर्ष की ओर से सभी सम्प्रदायों के विद्वानो का सर्वधर्म सम्मेलन होता था।" यह सम्मेलन आज भी माघ मेला के रूप मे मौजूद है।

राजपूत काल में कड़ा राठौर वश के प्रसिद्ध राजा जयचन्द की उप राजधानी थी, जहाँ आज भी उनका किला कड़ा म, और उनके भाई मानिकचन्द का किला मानिकपुर में गगा उस पार खण्डहर के रूप मे वर्त्तमान है।

मुस्लिम काल मे वैष्णव धर्म के उद्धारक और वैरागियो के नेता स्वामी रामानन्द जी ने प्रयाग मे जन्म लिया जिसके विषय मे प० जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं—

"इस जमीर में से नये ढग के सुधारक उत्पन्न हुये, जिन्होने इस समन्वय के पक्ष मे निश्चय के साथ उपदेश दिये और वर्ण व्यवस्था की निन्दा या अवहेलना की। पन्द्रहवीं शताब्दी मे हिन्दू स्वामी रामानन्द हुये, और उनके अत्यन्त प्रसिद्ध चेले बनारस के कबीर हुये जो कि मुसलमान जुलाहे थे। उत्तर में गुरुनानक हुये जो कि सिक्ख धर्म के सस्थापक माने जाते हैं। इन लोगों का प्रभाव उन मतो तक

सीमित नहीं था, जो कि इनके नाम पर स्थापित हुये, बल्कि उसमें कहीं अधिक विस्तृत था। सारे हिन्दू धर्म पर इन नये विचारों का प्रभाव पड़ा और भारत का इस्लाम भी अन्य देशों के इस्लाम से भिन्न बन गया।"

कदाचित् इन्हीं उपरोक्त विचारों को लक्ष्य करके मौलाना अल्ताफ हुसेन हाली ने कहा था—

"वह दीने हिजाजी का बेबाक बेड़ा, निशां जिसका अक्साय आलम में पहुँचा।
मजारम हुआ कोई खतरा न जिसका, न अम्मा में ठिठका न कुलजम में झिझका।
किये पै सिपर जिसने साता समुन्दर, वह डूबा दहाने में गंगा के आकर।
हमेशा से इस्लाम था जिस पै नाजाँ, वह दौलत भी खो बैठा आखिर मुसल्माँ।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रागैतिहासिक काल से आज तक प्रयाग धर्मों और सम्प्रदायों, सभ्यताओं और संस्कृतियां, नियमों और व्यवस्थाओं का जन्मदाता, प्रश्रयदाता तथा केन्द्रस्थल रहा। वैदिक, महाकाव्य कालीन, पौराणिक, बौद्ध, जैन, सन्तमार्ग, सूफी आन्दोलन यहाँ के वातावरण में जलवायु ग्रहण करके फलते-फूलते रहे। यहीं भक्ति मार्ग और रहस्यवाद ने मिलकर प्रेम और शान्ति की परिणामस्वरूप मुक्ति की अलौकिक मन्दाकिनी बहाई है। यहीं अनेकों राजनैतिक उथल पुथल के बीच ग्राम्य स्वराज्य का उदय हुआ और यहाँ अब तक प्रयाग में त्रिवेणी तट पर लक्ष-लक्ष जनता प्रतिवर्ष एक महीने एकत्रित होकर भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक अखण्डता उद्घोषित करती है।

संस्कृति का स्वरूप—विद्वानों का राय है कि 'संस्कृति' शब्द का उद्गम् 'संस्कार' शब्द से है। संस्कार का अर्थ वह क्रिया है जिससे वस्तु का मल (दोष) दूर होकर वह शुद्ध तथा सिद्धि का साधन बनती है। जगद्गुरु शंकराचार्य अपने ब्रह्म सूत्र भाष्य में कहते हैं "जिसका संस्कार किया जाता है, उसमें गुणों का आधान अथवा उसके दोषों को दूर करने के लिये जो कर्म किया जाता है उसे संस्कार कहते हैं। प्रयाग ने संस्कृति में इन षोडश संस्कारों की प्रधानता है। अब गर्भाधान से शरीरान्त पर्यन्त आर्य जाति के संस्कारों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जाता है। संस्कार मुख्यतः १६ हैं, जिनकी मीमांसा वेद के 'धर्म मीमांसा' दर्शन में की गई है। संस्कार को मीमांसा शास्त्र में कर्म का बीज कहा है। जैसे बीज से वृक्ष की उत्पत्ति होती है वैसे ही संस्कार से कर्म प्रकट होता है। ये १६ संस्कार

सुकौशल पूर्ण उपायों द्वारा ऐसे बाँधे गये हैं। क्योंकि यदि विधिपूर्वक अनुष्ठान हो तो ये १६ संस्कार, मनुष्य को प्रथम ८ संस्कारों द्वारा प्रवृत्ति मार्ग में पूर्णोन्नति देते हैं, और शेष ८ संस्कारों द्वारा मुक्ति भूमि में पहुँचा देते हैं। इन सोलहों संस्कारों में प्रथम संस्कार गर्भाधान संस्कार है और अन्तिम संस्कार सन्यास संस्कार है।

आधानम्, पुंसवनम्, सीमन्तोन्नयनम्। जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशनम्, चौलम् उपनयनम् ब्रह्मव्रतम्। वेदव्रनम, समावर्त्तनम्, उद्वाह आग्नयाधानम् दीक्षा, महाव्रनम्, सन्यास।

ये हैं मीमांसा दर्शन के अनुसार षोडश संस्कार हैं। प्रथम संस्कार का नाम गर्भाधान, द्वितीय संस्कार का नाम पुंसवन है जो गर्भाधान को स्थित रखने के लिये तीसरे चौथे महीने के बाद किया जाता है। तृतीय सीमन्तोन्नयन, गर्भरक्षा के लिए गर्भाधान से आठवें महीने के बाद किया जाता है। चतुर्थ जातकर्म है, यह संतान के भूमिष्ट होते ही किया जाता है। यव और चावल के चूर्ण द्वारा और तत्पश्चात् सुवर्ण द्वारा घिसे हुये मधु और घृत लेकर सद्योजात संतान की जिह्वा में पिता लगाता है। पंचम संस्कार नामकरण है। सन्तान के उत्पन्न होने के अनन्तर दस रात्रियाँ बीतने पर उसका नाम रखना होता है। षष्ट संस्कार अन्नप्राशन है, पुत्र हो तो छठे, कन्या हो तो पाँचवे महीने पहिले पहल पिता मंत्र पढ़ता हुआ हवन करके और फिर सन्तान के मुख में अन्न का ग्रास देता है। सप्तम संस्कार का नाम चूड़ाकरण है। तीसरे साल शिशु का केश मुण्डन कराया जाता है और शिखा के अतिरिक्त गर्भ के सब बाल मूँड़ दिये जाते हैं। अष्टम संस्कार उपनयन है। द्विजाति के बालक इसी संस्कार के द्वारा ज्ञान शिक्षा के लिये शिक्षक आचार्य के पास जाता है। नवम संस्कार ब्रह्मव्रत है। द्विज बालक ब्रह्मचर्य व्रत को ग्रहण करके ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के पथ में अग्रसर होने के लिये प्रतिज्ञा तथा पुरुषार्थ करता है। दशम संस्कार वेदव्रत है। इस संस्कार द्वारा वेदारम्भ किया जाता है। ग्यारहवें संस्कार का नाम समावर्त्तन है। विद्या समाप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये ब्रह्मचारी अपने घर वापस आता है। बारहवें को 'विवाह संस्कार' कहते हैं। तेरहवें संस्कार का नाम आग्नयाधान है। इसमें स्त्री सहित सायं प्रातः श्रौताग्नि या स्मार्ताग्नि में हवनादि करने की विधि है। चौदहवें, पन्द्रहवें संस्कारों को दीक्षा और महाव्रत कहते हैं। गुरु द्वारा दीक्षित होकर

वानप्रस्थाश्रम का अधिकारी बनकर महाव्रत लिया जाता है, उसके अनुकूल साधना का उपदेश ग्रहण करता है। सन्यास सोलहवाँ संस्कार है। सन्तान, सम्पत्ति तथा यश की इच्छाओं को त्याग कर साधक संन्यास ग्रहण करता है।

अब यह देखना है कि आखिर प्रयाग की संस्कृति क्या है। गंगा जमुना के द्वावा के बीच जन्मी, पली पोसी, विकसित, पल्लवित और पुष्पित आर्य संस्कृति का केन्द्र स्थल प्रयाग है।

आर्य-संस्कृति का केन्द्र प्रयाग—गंगा जमुना के अन्तर्वेद की संस्कृति आर्य संस्कृति है। गंगा जमुना के संगम पर बसा हुआ प्रयाग इस संस्कृति और सभ्यता का केन्द्र है। वैदिक आर्यों ने वेदों के शिक्षा के आधार पर एक विशेष सभ्यता स्थिर की है, जो आदि सृष्टि से लेकर आज पर्यन्त जीवित है। पारलौकिक मोक्ष प्राप्ति की सुदृढ़ भूमिका पर आर्यों ने अपनी सभ्यता की इमारत स्थिर की है। उन्होंने अन्तिम ध्येय मोक्ष को ही माना है। किन्तु मोक्ष भी इसी संसार के द्वारा ही प्राप्त होता है। इसलिए मुमुक्षु को इस संसार के तत्व का और उसके उचित उपयोग का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। संसार का तत्व ज्ञान और उसका उचित उपयोग ही मोक्ष का साधन है। इसीलिये आर्यों ने संसार का उपयोग करते हुए मोक्ष प्राप्त करने की विधि को अपनी सभ्यता और संस्कृति का मूल ठहराया है और उस विधि का चार भागों में—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के नामों से विभक्त किया है।

प्रयाग का शिष्टाचार—किसी भी समाज के शिष्ट अथवा सभ्य पुरुष जिस प्रकार के व्यवहारों को अच्छा मानते हैं, वही व्यवहार उस समाज का शिष्टाचार अथवा सभ्यता कहलाती है। प्रत्येक समाज के शिष्टाचार में वहाँ की आकांक्षा, आदर्श और मर्यादाएँ होती है। प्रयाग समाज के शिष्टाचार की आधार भूमि बहुत दृढ़ है। अवश्य ही काल एवं परिस्थितियों ने उसे बहुत प्रभावित किया है, किन्तु ये प्रभाव विकृतियाँ ही है, उनको अपनाया नहीं गया है बल्कि उनका निवारण तथा उपेक्षा की गई है। यहाँ की सभ्यता में अभिवादन, आशीर्वाद, अरमाल, आसन, वार्तालाप, अतिथि सत्कार नित्य कर्म, वस्त्र, सभ्य शुद्ध व्यवहार, सामान्य शिष्टाचार सम्मिलित हैं।

अभिवादन—हम जैसे ही किसी दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, एक दूसरे

या अभिवादन आवश्यक होता है। यहीं से शिष्टाचार का प्रारम्भ है। अभिवादन दो प्रकार का होता है, छोटा अपने से बड़े को करता है और समान व्यक्ति एक दूसरे को करता है। अपने से बड़े के आने पर उसे देखते ही खड़े हो जाता है और स्वयं आगे बढ़कर उसे प्रणाम, साष्टांग प्रणाम, चरण स्पर्श, दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक झुका कर करता है, तब बड़ा भी दोनों हाथों की अञ्जुलि सम्मुख करके आशीर्वाद देता है। अधिक स्नेह प्रकट करने के लिये परस्पर अंकमाल देने की प्रथा है। प्रियजन, मित्र, सम्बन्धी, सुहृद एक दूसरे को अंकमाल देते हैं। अतिथि के आने पर उन्हें सम्मानपूर्वक आसन पर बैठाकर चरण धोते हैं। बैठने, भोजन शौच, लघु शंकादि सबके लिये भिन्न भिन्न प्रकार के आसन निश्चित हैं।

शिष्टाचार का सबसे महत्वपूर्ण अंग है 'बोलना'। इससे व्यक्ति की क्षमता, योग्यता, स्वभाव, शील सबका आभास मिल जाता है। मित, मिष्ट और हित— ये तीन वार्त्तालाप के मूल तत्व हैं। किसी के साथ बोलते समय हमें स्वयं ही नहीं बोलते जाना चाहिये। अनाप शनाप बात को बढ़ाते नहीं जाना चाहिये। दूसरे को भी बोलने का अवकाश देना चाहिये और स्वयं सुनना चाहिये। किन्तु सर्वथा चुप्पी साधना भी गर्व, उपेक्षा का सूचक समझा जाता है। बोलने में असत्यता, कटुता न हो, साथ साथ उससे किसी को उद्वेग न हो, नाहीं किसी का अहित हो।

यहाँ का शिष्टाचार है कि आगत के लिये पहिले उसके बैठने, स्नान, भोजनादि की व्यवस्था की जाती है। अगर वह निद्रा क्लान्त होता है तो भोजनोपरान्त उसे भली प्रकार सोने का प्रबन्ध कर देते हैं। जब वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओं से निश्चिन्त होकर स्वस्थ चित्त हो जाता है तब कुशल क्षेम की वार्त्ता छेड़ी जाती है।

अतिथि सत्कार—यहाँ के समाज का प्राण आतिथ्य सत्कार है, बल्कि उसका मुख्य धर्म है। अतिथि को लोग देवता की भाँति सम्मानित करते हैं। यहाँ के लोगों में यह दृढ धारणा है कि गृहस्थ जीवन की सफलता ही यह है कि उसके द्वारा अतिथि सेवा हो। अतिथि का वर्ण, आश्रम, जाति पाँति, अवस्था, योग्यता नहीं देखी जाती है, वह तो आराध्य है। कहा जाता है कि जिस घर से अतिथि निराश लौटता है उस गृहस्थ के समस्त पुण्य वह ले जाता है और अपने सब पाप वहां छोड़ जाता है। वह घर साँप का बिल है जहाँ अतिथि का स्वागत नहीं होता।

नित्य कर्म—यहाँ के लोगों में सामान्यतः यह चलन है कि वे प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में शय्या त्याग देते हैं। सूर्योदय के पश्चात् सोना दरिद्रता का चिह्न समझा जाता है। शौच-स्नान, सन्ध्या भोजनादि के सम्बन्ध में इसके पूर्व ही बताया जा चुका है।

नारी-शिष्टाचार—यहाँ के स्त्रियों के लिए यह नियम है कि वे सर्वदा अपने पूरे शरीर को ढके रहें। लज्जा ही नारी का भूषण है। स्नान, नित्यक्रिया, भोजनादि सब उसे पुरुषों की दृष्टि बचा कर ही करना चाहिये। उसे खुले केश किसी पुरुष के सामने नहीं आना चाहिये। दोनों हाथों से मस्तक नहीं खुजलाना चाहिये। बिना किसी निकटस्थ सम्बन्धी के साथ लिये घर से बाहर नहीं निकलना चाहिये। नारी को पुरुषों के सामने हँसना या आलस्य का भाव प्रकट करना सर्वथा अनुचित है। पर पुरुष के साथ हास-परिहास नहीं करना चाहिये। नारी को स्वयं अस्त-व्यस्त न रक्खे। उसे अपने पति तथा पति के सम्बन्धियों को अपनी सेवा, शील, सद्व्यवहार से सन्तुष्ट रखना चाहिये। उच्च स्वर से बोलना, झगड़ना, जोर से हँसना, दौड़ना ये सब कार्य नारी के लिये अशिष्टता का द्योतक समझा जाता है।

यहाँ की सभ्यता धन कुबेरों से न तो प्रभावित होती और न वे शिष्टाचार के आदर्श माने जाते हैं। यहाँ के शिष्टाचार के आदर्श तो त्यागी और तपस्वी जन हैं। यहाँ एक करोड़पति या अरबपति अशिष्ट और असभ्य हो जायगा, यदि उसने शास्त्रीय आचार का त्याग किया और एक लँगोटधारी दरिद्र शिष्ट माना जायगा, यदि वह धार्मिक मर्यादाओं का पालन करता है। यहाँ के शिष्टाचार का मूल सद्गुण एवं सदाचार है। सद्गुण, सदाचार, स्वच्छता संयम—ये यहाँ के शिष्टाचार के मूल स्तम्भ हैं।

गंगा, जमुना तथा अदृश्य सरस्वती का हमारा पवित्र संगम भारत की समन्वयात्मक भावना का साकार प्रतीक है। सम्राट् हर्ष ने यहीं सर्व धर्म समभाव की शिक्षा ग्रहण की थी। यहीं सम्राट अकबर ने एक विराट धर्म सम्मेलन का आयोजन किया था। और उसी अवसर पर अकबर ने केवल गंगा जल पान की शपथ ली थी। औरंगजेब आलमगीर जैसा उद्धत सम्राट भी यहाँ आकर समन्वयात्मक प्रेम धारा में विभोर हो गया था। यहीं के किले में बैठकर उसने

संगम तट पर स्थित सोमेश्वर नाथ महादेव के मन्दिर को अपने दस्तखती परमान से एक बड़ी जागीर प्रदान की थी। अनेकों सन्तों, सूफियों और भक्तों का प्रयाग साधना तीर्थ रहा है।

इलाहाबाद की भाषा—इस जिले में जो भाषा सामान्यतः बोली जाती है उसे किसी एक नाम से नहीं पुकारा जा सकता। यहाँ की भाषा एक मिश्रित भाषा है। डाक्टर ग्रियर्सन जो भाषा विज्ञान के एक सुविख्यात आचार्य समझे जाते हैं, उनका कहना है कि इलाहाबाद के जिले में 'पूर्वी हिन्दी' बोली जाती है, जो पहिले समय में बोली जाने वाली 'अर्ध मागधी' प्राकृत के जगह पर उत्पन्न हुई है। इस जिले के बोल चाल को अगर एक नाम दिया जाय तो वह नाम 'अवधी' है। शहर में कुछ कुछ खड़ी बोली बोली जाती है। शिक्षित लोग स्पष्ट खड़ी बोली बोलते हैं, किन्तु अशिक्षित और गाँवों के अन्दर इस बोली का प्रयोग होता है, जैसे, कल तुमरा अमरूद आईगा कि नै, उनने कहा हैगा कि हमरा काम जरको न बिगड़ै नहीं तो अच्छा न होइहै। वह आपको बुलाते हैंगे। पहिले इस जगह एक मकान बना भया था, इत्यादि। दूसरी जगह कुछ थोड़ा बहुत स्थानिक भेद जरूर हो गये हैं जैसे परगना बारा और खैरागढ़ के दक्खिनी भाग में बोली में कुछ 'बघनी' और कुछ छत्तीस गढ़ी मिली हुई है। तहसील मेजा के टप्पा चौरासी में तथा उसके आर पार गंगा के उत्तर तहसील हड़िया की बोली में अन्तर पड़ गया है अर्थात् इन परगनों में जैसे जैसे पूरब की ओर जाइए 'पश्चिमा भोजपुरी' का आभास मिलता है। गंगा पार में परगना सिकन्दरा, मिर्जापुर चौहारी, सोरांव, नवाबगंज और द्वाबा के पश्चिमी भाग परगना कड़ा, करारी और अथरबन की भाषा में कुछ कुछ भेद मालूम होता है। इन तीन परगनों में 'पश्चिमी अवधी' से मिलती जुलती 'बैसराड़ा' की बोली बोली जाती है।

इस जिले के तीन प्राकृतिक भाग—गंगापार, जमुनापार तथा द्वाबा में मे तीन प्रकार की बोली प्रचलित है जिसे गाँव की ठेठ भाषा कहते हैं और जिसको प्रत्येक नर नारी आबाल वृद्ध समझते और अपने दिन रात के व्यवहारों म प्रयोग करते हैं। नमूने के तौर पर जन प्रचलित चार कहानियाँ दी जाती हैं।

गंगा पार की ग्रामीण भाषा—अइसे अइसे एक गाँव मे एक राजा रहेन। त ऊ एक ठी तलाउ खनायन। त ऊ तलौना में पानी न होय। त गाँव के सब पडितन का बोलायन। उ कहैंन कि कहिजा हमरे तलौना मा पानी नाहीं

होत रहे। त सब कहिन लागिन कि तू हरे क अपना बरदा और जेठ बेटवा का लरिका का बोलाय के उही मां बलि दे। होत होत छट्ठा क दिन परा। राजा कहेन कि पतोहू तू अपने नइहरे चली जा, काहे से कि तोहार महतारी बोलाय पठयेन है। पतोहिया मकिनयान, ऊ कहेस बाबा हमरे नइहरं काहे पठवत हये। आज छट्ट है। राजा एको न सुनेन न मानेन। चेरिया लौंडिया के संगे चार ठे कहार कहरन नइहरें पठइ दिहिन। कहारे सियाना उठायन जब पतोह चली गई। त राजा उनके बेटवा का औ अगले हरे के बरधा का उही तलाउ मां बल देहेन। त ओहमां पानी भार के अटम्म टूट लाग। पतोह जब नइहरे पहुँची त महतारी कहेस कि बिटिया तू आज का तरह का हिया आइउ है। त उ कहेन कि हमका राजा पठइन हैं कि आज तोहार महतारी तोहके बोलाए बा। उ कहेन कि हम तो तोहका नाहीं बोलावा। जा तू अपने ससुरे चला जा। राजा अपने घरे न पानी का दरस होय। पुन (फिर) वही चार कहारे के डोली डोला रानी लौटी। रस्ते मा कहारे से कहेन कि हमार राजा जउन सगरवा खनायन रहेन त चलिके हमका देखाय द्या। त रानी तलाउ मा गईं। देखेन पानी भरा रहे औ पुरइन क पान लहर लहर लहरात रहा। उही पाते पर ओनकर बेटवा लोटत पोटत किलकारत रहें औ हरे क बरदा उही तलाउ मां चरत रहे। घरे मा सास ससुर कहार ओठराइ क मुह मूँदे ओलरा रहेन कि अब पतोहिया के कइसन क मुह देखाउब। पतोहू पहुँचि गइ। बेटवा कोरा में लेहे रही। आगे आगे बरधा हाँकत आवत रहे त राजा से कहेन तेतार खोल। छट्ठा माता हमका एक टो बेटवा देहेन ह। सास ससुर देखि क गदगल होइ गइन। राजा खुशी रहइ लागेन

गंगा जमुना के बीच की भाषा—एक टो किस्सा सुनत जा। अइसे अइसे एक रहेन राजा वन। उ अपन परजा से कुच्छ नाहीं लेत रहेन, एसे बहुत गरीबी मे गुजर होत रहा। उनके रानी क गहना गुरिया कुच्छौ नाहीं रहा। न कोउ नोकर चाकर रहा। अपने हाथेन से सब काम काज करत रहेन। रोज सवेरे उनकर रानी माटी क कच्चा घड़ा कच्चे सूत मां लटकाइ क पोखरा क पानी भरइ जात रही। हुआ पुरइन क पत्ता पर गोड़ धइ के गगरी बोर लियावें। उनका परजा बहुत सुखी औ तालेवर रही। एक दिना रानी देखेन

कि गउवा क मेहररुग्रन सुन्दर लहर पटोर औ अच्छे अच्छे जड़ाऊदार कापड़ा पहिरे रहें। ऊ इ देखि क बहुते सरमानी। अपने मन मा सोचेने कि राजा जो एको एक कौड़ी सब परजन पर मगुल लगाई देंइ तौ नेहू के अपसरयौ न करी औ हमरेउ गन के कपड़ा लत्ता औ गहना गुरिया होइ जाय। घरे लौटि क राजा से कहेन कि आज से परजन पर एक एक कउड़ी भेजा (चन्दा) लगावो। ओसे हमहूँ का कापड़ा लत्ता औ गहना गुरिया बनवाइ देय। सब मेहररुग्रन के आगे नथी बुची होइ के पानी भरइ जाइथा त सरम लागत है। राजा सुनेन औ कहेन अच्छा तो। गावन मा डुग्गी पिटवाय देहेन कि सब कोउ एक एक कउड़ी लियावे जब ढेर के कउड़ी जुराइ ग ता राजा नहो स रानी के बरे अच्छा अच्छा कपड़ा लत्ता औ गहना गुरिया बनवाय देहेन। रानी ओसा पहिर के तलरी पर पानी भरइ गई। जो पुरइन के पत्ता पर गोड़ धरेन औ कच्चा घड़ा कच्चा सूत मे लटकाय के पानी मा बोरेन। त चम्म से गाड़ उहि मां बूड़िगा। रानो निसवाद उठिन। रोउतै रोउतै घरे आइन। राजा से कहेन कि एक सब का वेचि के सब क कउड़ी लउटाओ। हम बाजि आइन एसन गहना गुरिया पहिरबे से। तब राजा हँसेन औ पुनि सब का भेजा लौटाइ दिहेन। औ रानो पहिलेन के तरह फिर पुरइन के पत्ता पर गोड़ धइ के कच्चा सूत औ कच्चा घड़ा से पानी भरइ लागिन। तब से एक ठी कहाउत बनि ग कि जस राजा क नियत होत है वैसइ बरक्कत होत है।

जिले की दक्षिणी भाषा—एक ठी रहा कोरी। त ओनकर मेहरारु कपड़ा बिनइ लागी। त उ बिन चुकी त कोरी राम से कहेस कि तू एके बेंचि आवा। टका घाट टका बाढ, त उ बजार में आइ। त कउनौ महाजन के हाथे एक ठी थान दुइ टका में देहेन। त बजार मा देखिन कि उ पान खाए रहा। त उ कहेन कि का तुम्हरेन पल्ले पइसा अहै। जाइथ हमहूँ पान खाइ। त उ आइन बरइन के हिया। पान खाइन औ बजारे मा घूमइ लागेन। त घूमत रहें त एक चिकवा गोस बनाए रहा। त ओसे कहेन कि एक पाई क हमैं गोस दइ दे। त चिकवा कहेसि कइ कहा क उल्लू आय कि एक पाई क गोस माँगथ। कहूँ एक पाइयो क गोस मिलथ। त ई कहेन कि नाहीं भाय दई द्यौ एक पाई का गोस। त ऊ दइ देहेस। त चील्ह मेड़रात रहै। त उ ओसे कहेन कि गोस लइ जा। हमरे घरे दइ दिहे। हमरे मिहरारु से कहेजि देहे कि गोस

चनइ रुपिहीं। त चोन्हिया क दइ देन्हि? त चीन्ह लइ क गार लेहेस। त बाजार में आपन चले। त इतनेन में उनका रास्ता गोह गा। तौ रस्ते में एक खेत मिला। ओहमा गाँस भूर फुलान रहा। त उनकी जान में नदिया आय बाटा है। त उ जेकर खेत रहा कहेन ओसे कि हमका पार कइ देवा। आधा टका उतराई देब। त उ ओनका पाटा पर से लागेन घिसियावै। त उनकर देह मगल चीरि उठा, ओमें कासे क छिरोरा लागन लागन। त कोरी राम ओनका आधा टका उतराई देहेन, औ चलेन घरे का। त घर मा गए। त ओकर मेहरारू पूँछेसि कि रस गजी बेंचि आया। त उ कहेन कि हाँ गजी बेंचि आइन। टका घाट। न उन मउदा लइके पटै दीन, चीलही के हाथे गोस। ओकर मेहरारू कहेसि कि भला चील कहूँ सउदा पहुँचाएस। ऊ अपनै खाइ लिहिस होई। तू अस मुग्गा अहै कि इतनौ नाहीं जनते। त तू का बजार करत होवः हाँलाका अब आज से हम हाट बजारे बेंचइ जाबै। तू घर ताका।

जमुना पार की भाषा—एक रहे सेठ महाजन। ओ एक सुग्गा पाले रहें। ओकर नाव धराए रहेन हीरामनि। एक दिना ऐसन भवा कि सुग्गाराम महाजन से कहेन कि मालिक जउ हमके छोड़ि देत त हमहूँ कहूँ घूमि घामि आइत। महाजन हसेन औ कहेन कि भला तू पच्छी क जात अहः कतौ उड़ि जात्यौ पुनि घूमि क न अउत्यौ। हीरामनि बोलेन कि नाहीं चला अउबै। हमके एक दाईं छुट्टी दइ देव। महाजन कहेन कि अच्छा जा। हीरामनि उड़ते उड़त बहुत दुरिया निकरि गयन। जब कुछ दिना के पीछे लउटइ लागेन त सोचेन कि कउनौ ऐसन चीज अपने मालिक बरे लइ चला कि जउने ऊ खुस होइ जाँहि। ढूँढ़त ढूँढ़त एक फल अइसन पाएन कि जउ ओके बौनौ बुढवा मनई खाइ लेइ तौ जवान होइ जाय। जब घरे पहुँचेन त ऊ फर मालिक के देहेन औ ओकर गुन बताइ क पिंजरा में घुसुरि गयन। महाजन सोचेन कि जउ हम एके खाइ लेइब त एकइ बेरी के होइ। अइसन करी कि एके बोइ देई जउने हमेसा बरे होइ जाइ। ऐसन सोचि क ओके बोइ देहेन। जब पेड़ बाढ़ि क बड़ा होइ गवा त एक दिना एक पाकि क गिरा। ओके कीरा फूकि देहेसि। जब भिनसार भवा, त मालो ओके लइके महाजन के देहेसि। महाजन सोचेन कि पहिले पहिल पर हम न खाई। त ऊ केहू बम्हने के दइ देई। ई सोचि क अपने उपरोहित के दइ

देहेन। बम्हनऊ अपने लड़िका के दइ दिहेसि कि इहइ गाड़ लेइ। हम का करब। श्रोस्र गुन त जनतइ न रहेन। लड़िक्वा जब खायसि त तुरन्तइ मरिगा। काहे कि ओके हीरा सूँघि लेहे रहा। अउ ई बात पेहू जानत नाहीं रहा। ऊ बाम्हन गा महाजन के आगे रोवइ लाग। औ सब हाल कहेसि। महाजन झट्ट उठेन अउ सुग्गा के पकरि क पटकि देहेन। चिरऊ मुग्गाराम मरि गयन।

उही गाँव माँ एक ठी धोबी धोबइन बहुत बुढ़ापा रहत रहेन। ओनक्र वेटवा पतोहु राजइ कजिया करइ। धोबिया कहेसि कि चलुरे महाजन के बगइचा माँ ओही फरवा खाइ लेई, मरि जाई रोज रोज के कजिया से छुट्टी पाई। दुइनउ जने गयन। ओके खायन झट से जवान होइ गयन। अब वेटवा पतोहु पूछे मानइ लागेन। धोबी उही महाजन के हियाँ कपड़ा आनइगा, त राजा पूछेन कि करे तई जवान कइसन क होइ गये। त ऊ बोला कि तोहार इहइ फरवा विनि क खाइ लिहा, त जवान होई गये। तब महाजन के चोट लगा औ हाइ हमार हीरामनी काहि के मरि गयना जइसन सुने रहे तइसन कहा। न कहनइया क दोष न सुनइया के दोष। जे विहिनी उपराजै तेने दोष।

———

संस्कृति-संस्कृत-संस्कारों के पुनरुद्धार में सचेष्ट

एक अनुपम दम्पत्ति (मुंशी तथा लीलावती)

महामान्य श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी तथा उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती लीलावती मुंशी देश में एक ऐसी अनुपम दम्पति है जो प्राण पण से भारतीय संस्कार, आर्य संस्कृति तथा संस्कृति भाषा को उच्च स्थान दिलाने में सचेष्ट है। महामान्य मुंशी आज हमारे उत्तर प्रदेश के जिसकी राजधानी इलाहाबाद है, राज्यपाल के रूप में हमारे पथ प्रदर्शक, संचालक तथा नीति निर्णायक है। आपको अपने बीच पाकर हमारी स्वाभाविक कांक्षा होती है कि हम आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का अलग अलग दर्शन करें, किन्तु प्रबन्ध कुशलता, तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता, स्वतन्त्र विचार पर दृढ रहने का साहस, एवं त्याग की अपूर्व क्षमता ये सब आपके ऐसे गुण हैं जिनसे सभी परिचित है। अत इस विषय में और कुछ कहने में संकोच-सा होता है। बम्बई प्रदेश के गृह मंत्री पद पर रह कर शान्ति स्थापना के हेतु आपने जिस प्रबन्ध कुशलता का परिचय दिया था, वह उदाहरणीय है। बम्बई हाईकोर्ट की वकालत के समय का सुख और वैभव तथा आज का आपका साधारण जीवन देखकर हमारी कल्पना आश्चर्य में पड़ जाती है। इस जिले म आते ही आपने सबसे प्रथम ग्रामीण आयोजन में भाग लिया और कई बार जिले के भिन्न भिन्न स्थानों पर जाकर ग्रामीणों के स्वावलम्बन कार्य का निरीक्षण कर उनके उत्साह को बढाया। इलाहाबाद के गावों के ग्रामीणों के बीच जाने का आपका यह कार्य्य देहात में रहनेवाली जनता के प्रति आपकी रुचि और विचार दृष्टि का परिचायक तथा पूज्य बापू के पदानुसरण का व्यवहारिक आदर्श है।

हमारे देश में जिन महान व्यक्तियों ने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया है उनम से बहुत कम ऐसे है जिन्होंने अपनी लेखनी तथा साहित्य प्रतिभा द्वारा देश को जीवन प्रदान किया हो। आपने गुजराती भाषा में जिस अमर साहित्य का

सृजन किया है वह गुजराती के लिए ही नहीं वरन् भारतीय वाङ्मय की वर्त्तमान निधि तथा धरोहर है। आपके कुलपति के पत्र इस प्रदेश के सच्चे चित्र और आपकी कल्पना को समाज के समक्ष रख रहे हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति आपके हृदय में जिस प्रकार प्रेम प्रवाहित हो रहा है उसका दिग्दर्शन सोमनाथ की पुनर्स्थापना, विश्व संस्कृति परिषद् का संगठन और बम्बई की भारतीय विद्या भवन, तथा उसकी भारतव्यापी शाखाएँ करा रही हैं।

महामहिम डा० के० एम० मुन्शी, बी० ए०, एल० एल० बी०, डी० लिट० राज्यपाल उत्तर प्रदेश का जन्म २९ दिसम्बर १८८७ ई० को हुआ। बड़ौदा कालेज में शिक्षा प्राप्त करके सन् १९१३ में बम्बई हाईकोर्ट के एडवोकेट हुये। सन् १९१५ में यंग इंडिया अखबार के संयुक्त सम्पादक हुये। १९१९-२० में बम्बई होमरूल लीग के मंत्री, सन् १९२२-३१ तक 'गुजरात' के सम्पादक, सन् १९२५ से बम्बई और बड़ौदा विश्वविद्यालय के फेलो तथा सन् १९२६ में बड़ौदा विश्व विद्यालय कमीशन के मेम्बर थे। सन् १९२६ में गुजरात प्रान्त की प्रसिद्ध लेखिका लीलावती सेठ से विवाह हुआ। सन् १९४६ में गुजरात विश्व विद्यालय कमीशन के चेयरमैन, सन् १९३७ से ४६ तक बम्बई विश्वविद्यालय निर्वाचन क्षेत्र से एम० एल० ए० रहे।

महामहिम श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

एप्रिल १९३० में नमक सत्याग्रह में ६ महीने की सजा हुई। सन् १९३० से अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य, सन् १९३० से ३६ तक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे और सन् १९४७ तक बराबर उसके

सदस्य बने रहे। जनवरी १६३२ में आपको सत्याग्रह युद्ध में २ साल की कड़ी सज़ा भुगतनी पड़ी। सन् १६३४ में कांग्रेस पार्लियामेन्टरी बोर्ड के मेम्बर रहे। सन् १६३७-३६ तक बम्बई सरकार के गृह मंत्री, सन् १६४८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन उदयपुर के सभापति थे। सन् १६३२ में भारतीय विद्याभवन के अध्यक्ष और सन् १६४०-४६ तक 'सोशल वेलफेयर' के सम्पादक थे। सन् १६४०-४१ में डिफेन्स आफ इण्डिया एक्ट के अनुसार आप नजरबन्द थे। भारतीय विधान परिषद के सदस्य, उसके ड्राफ्टिंग कमेटी के सदस्य तथा बाद में पार्लियामेंट के सदस्य हो गये। हैदराबाद जीते जाने के बाद आप उसके भारत सरकार के एजेन्ट जनरल नियुक्त किये गये। कृषि कालेज आनन्द के आप सन् १६३० से उप-समापति हैं। कस्तूर बा गांधी नेशनल मेमोरियल ट्रस्ट, तथा हंसराज मोरार जी पब्लिक स्कूल बम्बई के ट्रस्टी हैं। सन् १६५० में केन्द्रीय सरकार के खाद्य तथा कृषि विभाग के मंत्री थे। आजकल आप उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल हैं। गुजराती भाषा में आपके बहुत से उपन्यास, कहानी, नाटक, प्रबन्धावली, संस्करण प्रकाशित हुये हैं। अंग्रेज़ी भाषा में आपने गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर, आई फालो महात्मा, अखण्ड हिन्दोस्तान, इम्पीरियल गुजरात, भगवत्‌गीता एण्ड माडर्न लाइफ, क्रियेटिव आर्ट्स आफ लाइफ आदि प्रमुख पुस्तक लिखे हैं।

श्रीमती लीलावती मुंशी—भारतीय नारी संसार में शायद ही कोई ऐसी नारी हो जो देश के सभी संस्थाओं की अग्रगण्या, तथा सर्वतोन्मुखी प्रतिभा शालिनी हो। आप भारतीय विद्या भवन के उपाध्यक्ष, सन् १६३७-४६ तक बम्बई प्रदेश की एम० एल० ए०, भारतीय मर्चेन्ट्स चैम्बर के सदस्य (१६३३-५०), बम्बई म्युनिसिपल कारपोरेशन की सदस्या (१६३५-४६), बम्बई विश्वविद्यालय के सिनेट की सदस्या. हरिजन सेवक संघ बम्बई के अध्यक्ष, बम्बई प्रेसीडेन्सी ओमिन्स कौंसिल के अध्यक्ष, अवैतनिक प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट, जस्टिस आफ पीस, अखिल भारतीय विमेन्स काउंसिल के उपाध्यक्ष तथा आजकल कौंसिल आफ स्टेट की सदस्या हैं।

गुजराती साहित्य परिषद् तथा गुजराती साहित्य संसद की सदस्या हैं। आपने बहुत से जीवन चरित, छोटी-छोटी कहानियाँ, प्रबन्ध तथा अनेकों मासिक, दैनिक पत्रों के लिए प्रसिद्ध लेखमाला लिखी हैं। महाराष्ट्र प्रान्तीय कांग्रेस की सदस्या (१६३१-३४), अखिल भारतीय, तथा बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की सदस्या,

कांग्रेस नुमाइश (१९३५) की मन्त्रिणी भी रह चुकी हैं।

आपको नमक सत्याग्रह में सन् १९३० में ३ महीने, सन् १९३३ में सत्याग्रह संग्राम में १ साल तथा सन् १९४० में सत्याग्रह आन्दोलन में ४ महीने की कड़ी सजा भुगतनी पड़ी थी।

टैक्स्ट बुक कमेटी, भारत सरकार के फिल्म एडवायजरी बोर्ड, फिल्म सेन्सर केन्द्रीय बोर्ड, कृषि सम्बन्धी अनुसन्धान कौंसिल की सदस्या तथा भारतीय संगीत शिक्षा पीठ, यूरोपियन संगीत समिति, भारतीय कला केन्द्र की अध्यक्षा हैं। इनके अतिरिक्त स्त्री तथा कई बालक सम्बन्धी संस्थाओं की अध्यक्षा व सदस्य हैं।

श्रीमती लीलावती मुंशी

आप बम्बई जीवन बीमा कम्पनी, स्वदेशी प्राविडेन्ट फन्ड इन्स्योरेन्स कंपनी, अवध चीनी मिल्स, लल्लूभाई सामलदास सहकारी बैंक, देवकरन नानजी प्रिंटिंग प्रेस की डाइरेक्टर हैं और राजकमल प्रकाशन की अध्यक्षा हैं।

श्री रामप्रसाद जी—आपने अपने आचार विचार तथा आहार व्यवहार द्वारा नगर में एक ऐसा स्थान प्राप्त कर लिया है जिसे प्रयाग में प्राचीन आर्य संस्कृति तथा आधुनिक सभ्यता के सम्मिश्रण के उदाहरण के रूप में पेश किया जा सकता है। शुद्धाचार, समय का उचित उपयोग और साथियों से करने के लिये बाध्य करना, व्यवहार में सफाई, शुद्ध विवेक, मधुर व्यवहार, प्रखर मस्तिष्क, सहानुभूतिपूर्ण भावना, आर्य संस्कृति में मिलाये जाने योग्य विचारों को ग्रहण करना, छोटों के प्रति सहानुभूति और प्रेम से ओत प्रोत रहना ही आपका सहज स्वभाव है।

आप स्वदेशी आन्दोलन के समय अर्थात् १९०७ से ही शुद्ध स्वदेशी वस्त्रों तथा वस्तुओं का उपयोग कर रहे हैं। आप प्रत्येक ऋतु और काल में काल वस्त्र का ही प्रयोग करते हैं। आप नगर के एक प्राचीन उच्च तथा प्रतिष्ठित खत्री परिवार के वंशज हैं। आपका परिवार सदा से सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों क्षेत्रों में ही सर्वप्रिय रहा है। आपके पितामह राय बहादुर ठाकुर प्रसाद तथा पिता राय बहादुर सावलदास इसी जिले में डिप्टी कलेक्टर रह चुके थे। आपके पिता को ही अधिकार प्राप्त था कि महामना मालवीयजी को 'मदन' कह कर पुकारते थे। आप एक धनी, जमींदार और रईस होते हुये भी सब के साथ सादगी और सहानुभूति के साथ मिलते-जुलते हैं। नगर तथा जिले का कोई एक भी उल्लेखनीय सार्वजनिक संस्था नहीं है जिसके आप जिम्मेदार कार्यकर्त्ता न हों। प्रयाग के प्रसिद्ध 'हरिजन आश्रम' तथा 'स्वदेशी लीग' आदि संस्थाओं के आप एक संस्थापकों में गिने जाते हैं। आपके सहोदर भाई रायबहादुर कामता प्रसाद कक्कड़ प्रयाग नगर पालिका के लगभग १५ साल तक चेयरमैन रह चुके थे। आपके पिता को राजस्थान के एक बड़े राज्य की ओर से 'हाथी नशीनी' तथा पैर में सोने का कड़ा पहिनने का अधिकार प्राप्त था।

श्री रामप्रसाद जी

तीर्थराज प्रयाग के मेले

तीर्थराज प्रयाग सारे ससार में माघ महीने मे लाखो की संख्या में एकत्र हो स्नान करने वाले यात्रियों के कारण प्रसिद्ध रहा है। माघ महीने में तो यहाँ इतना बड़ा मेला लगता ही है; परन्तु साल भर प्रयाग नगर और जिले में मेलों का ताँता लगा रहता है। प्रस्तुत लेख मे हम प्रयाग के सभी मेलों का वर्णन संक्षेप में करेंगे और अन्त में माघ मेला के इतिहास पर भी कुछ प्रकाश डालेंगे।

रामलीला—प्रयाग की रामलीला भारत में बहुत प्रसिद्ध है। इस मेले के चार केन्द्र हैं। दो नगर में, एक दारागज और एक कटरे में। शहर का एक दल हाथीराम और दूसरा बेनीराम का कहलाता है। बाबा हाथीराम शाहगज के रहने वाले वैष्णव वैरागी थे। वे हमेशा उसी मुहल्ले मे रामलीला कराते, विजय दशमी के दिन हनुमान दल के साथ भगवान राम की सवारी चौक में ले आते और ककरहे घाट पर जाकर रावण वध की लीला समाप्त कराते थे। रात में चौक में मशाल और गैंदे की रोशनी कराई जाती थी।

शनैः शनैः लीला की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा और शाहगंज के बदले पजावा के मैदान में रामलीला होने लगी। हाथीराम बाबा के बाद इस दल का प्रबन्ध खत्रियों ने अपने हाथ में लिया। अब यह खत्रियों का दल कहलाता है।

दूसरे दल के कर्त्ता धर्त्ता और नींव डालने वाले कड़े के रहने वाले बाबू बेनी प्रसाद कायस्थ थे जो यहाँ वकालत करते थे। कहा जाता है कि उक्त बाबू साहब दशहरा और मुहर्रम दोनो के कराने में काफी रुपया खर्च करते थे। दशहरे में वह मलाका के समीप पथरचट्टी के मैदान में रामलीला कराते थे। इनका दल केवल दशहरा के दिन मुट्ठीगज के चौराहे से होता हुआ भारती भवन से गुजर कर हाथीराम के दल के पीछे सायकाल मे चौक पहुँचता था

और फिर दशहरे घाट पर जाकर समाप्त होता था। रात को दोनों ओर से रोशनी कराई जाती थी। दोनों का भरत मिलाप भी रात को चौक में होता था।

उक्त बाबू साहब के स्वर्गवास हो जाने के बाद बाबू दर्शनलाल वकील के अगुवाई में अग्रवालों ने इस दल का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया। अग्रवालों ने इसकी बड़ी उन्नति की। धन एकत्र करके पथरचट्टी का मैदान खरीद कर उसके चारों तरफ चहार दीवारी बनवा दी। तब से इसका नाम रामबाग हो गया है।

आगे चलकर इन दोनों दलों के अगुआ, खत्रियों और अग्रवालों में काफी लाग डाँट हो गई। एक दूसरे से बढ़ जाने की होड़ सी लग गई। हर साल नई चौकियों की संख्या बढ़ने लगी। विजय दशमी के पहिले हर रात को चौक में कुछ थोड़े से झाड़ फानूस की रोशनी के साथ दोनों पक्षों के राम सीता और लक्ष्मण का अनेक प्रकार शृंगार होता है। कभी मोतियों का, कभी फूलों का, कभी जड़ाऊ काम का शृंगार होता है। दशहरे के दिन रोशनी गुड़ की मंडी से लेकर सलोरी मंडी तक पहुँच जाती है। रोशनी अब बिजली की होती है और लगभग पाँच बजे सुबह तक रहती है।

तीसरा दल कटरे का है। इस रामलीला को पहिले फौज के सिपाही किया करते थे जो उसके निकट चैथम लाइन्स में रहा करते थे। बाद में जब उनकी पलटन नई छावनी में चली गई तो मेले का प्रबन्ध भारद्वाज के एक योगी ने अपने हाथ में ले लिया। कुछ दिनों के बाद कटरे के और दूसरे लोग भी इसमें सहायता देने लगे। यहाँ का दल केवल अष्टमी को निकलता है और उसी दिन रात को चौराहे पर रोशनी होती है। रामलीला मुस्लिम बोर्डिङ्ग हाउस के पीछे मैदान में हुआ करता है। भरत मिलाप दीवाली के बाद अक्षयनवमी पर कर्नलगंज के चौराहे पर हुआ करता है। उसी दिन रात को रोशनी होती है और आतशबाजी छूटती है। यहाँ का राम लीला और दल इतना प्रसिद्ध हो गया था कि सन् १८२४ ई० में बिशप हेबर ने और सन् १८२६ ई० में एक प्रसिद्ध अंग्रेज महिला फैनी पार्क्स ने इसका वृत्तान्त लिखा था।

सन् १९२४ ई० में कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में विघ्न उपस्थित करने के लिए अंग्रेजों ने हिन्दू मुसलमानों को लड़ा देने वाली नीति के कारण और मस्जिद के सामने बाजे के प्रश्न ने राम लीला बन्द कर देने के लिये

हिन्दुओं को निराश किया। पंडित मदनमोहन मालवीय, कपिलदेव मालवीय तथा हिन्दू सभा के नेताओं ने इस प्रश्न को सुलझाने के लिए वृहद आन्दोलन किया। सन् १९२८ तक यह प्रश्न हल नहीं हुआ। निराश होकर हिन्दू लोग हर साल आश्विन के नवरात्र के अन्त में किसी हिन्दू नेता के अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा करके, अंग्रेजों की तीव्र आलोचना करके साल भर तक चुप रहते थे। इस कार्य में शिथिलता और नैराश्य की प्रधानता हो गई। यह राम लीला राजनैतिक क्षेत्र के हिन्दू नेताओं तथा कांग्रेस नेताओं के दाँव पेंच का अखाड़ा मात्र रह गया।

उस समय पं० मोतीलाल नेहरू स्वराज्य पार्टी के नेता थे और पं० मदन मोहन मालवीय हिन्दुओं के, दोनो ही व्यक्ति भारत के सारी शक्तियों और साधनों को अपनी अपनी पार्टियों को चुनावों में विजयी कराने के लिए उपयुक्त कर रहे थे। राम लीला करने का आन्दोलन चुनाव की पार्टी बन्दी के दल में फंसा देखकर सभों ने अपना अपना हाथ खींच लिया। इधर वे रईस या व्यापारी जिनके यहाँ रामचन्दी और धर्मादा इकट्ठा हो रहा था, सार्वजनिक अपमान से निर्भय होकर अन्दर ही अन्दर ऐसा षड्यंत्र रचते रहे कि राम लीला न होने पावे, क्योंकि ऐसा होने पर कुल रुपया उनको देना पड़ता और साथ साथ सोने चाँदी के मूल्यवान वस्तुओं को भी, जिसे वे देना नहीं चाहते थे।

इधर रावी नदी के तट पर लाहौर में बापू ने पं० जवाहर लाल नेहरू से स्वतन्त्रता का पाँचजन्य फुँकवाया। सारे भारत में नवीन स्फूर्ति स्पन्दित होने लगी। पारस्परिक वैमनस्य के कारण वे हिन्दू तथा कांग्रेस के नेता जो जनता में स्वार्थ के कारण हेय दृष्टि से देखे जाते थे बरबस इस आन्दोलन में अपने पिछले पाँच सालों के सार्वजनिक पापों को धोने के लिये कूद पड़े। राम लीला का कार्य ऐसी आँधी में तृणवत हो गया।

इसी समय श्री बद्रीप्रसाद सिनहा ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया। उपयुक्त परिस्थिति में उन्हें अकेले इस आन्दोलन को चलाना पड़ा। चार साल के आन्दोलन के बाद वे सफल हुए। राम लीला चार दिन तक होती रही, किन्तु नेताओं और राम चन्दी रखने वाले व्यापारियों ने उनका विरोध किया।

अन्त में उन्हें राजा गणेश प्रसाद के दत्तक पुत्र श्री हरीराम जी की सहायता प्राप्त हुई। उक्त बाबू साहब की सहायता से सिनहा जी सन् १९३६ ई० में राम

लीला कराने में सफल हुए। ३ साल तक खूब धूम धाम से यह होती रही। मार्च सन् १६३६ में कीटगंज में कालीमाई के मन्दिर में होने वाले नवरात्र के अखण्ड पाठ में मुस्लिम लोग वालों ने अड़ंगा डाला और हिन्दुओं ने विवश होकर बाजा न बजाने की लिखित शर्त कलेक्टर साहब के सामने मान लिया। प्रयाग के लिये यह बड़े कलंक की बात थी। श्री बद्री प्रसाद सिनहा अकेले ही इस काम में जुट पड़े, अन्त से लड़ भिड़कर शर्त तुड़वा दिया और आज तक अखण्ड पाठ दोनों नवरात्रों में निर्विघ्न हो रहा है।

सन् १६४२ ई० में स्वतन्त्रता युद्ध के फलस्वरूप जन क्रान्ति के कारण राम लीला फिर बन्द हो गया। सन् १६४४ ई० में सरकारी राम लीला शुरू हुआ। जिसके अगुआ यहाँ के तात्कालिक कोतवाल खान बहादुर अब्दुल रशीद थे। १६४७ ई० में जब बापू के तपस्या के फलस्वरूप भारत आजाद हुआ तब से अब तक मेला के रूप में राम लीला हो रहा है। अब कोई रोक टोक नहीं है।

इन प्रसिद्ध मेलों के अतिरिक्त जिले के अन्तर्गत विभिन्न स्थानों पर विविध तिथियों पर मेले लगते हैं। जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है—

तहसील चायल—करेलगंज में कार्तिक सुदी नवमी को अक्षय नवमी का मेला और शिवरात्री का मेला फागुन सुदी तेरस को होता है। अलोपीबाग में चैत और असाढ बदी अष्टमी को अलोपी देवी का। एलियापुर में चैत सुदी अष्टमी को कल्यानी देवी का मेला होता है। कीटगंज में जमुना जन्मोत्सव का मेला कार्तिक सुदी दशमी को। सैदपुर में बनखण्डी महादेव का मेला अगहन के अन्तिम सोमवार को होता है। उस्मानपुर में कार्तिक स्नान का मेला कार्तिक सुदी द्वितीया को होता है। सिपहदारगंज में देवगिरवा का मेला भादों सुदी पचमी को होता है। बारूद खाना में शिवकोटी महादेव का मेला सावन सुदी अष्टमी को, रसूलाबाद में जन्माष्टमी का मेला भादों बदी अष्टमी का होता है। मीरापुर में गुड़िया का मेला सावन सुदी पचमी को होता है। दारागंज में नागवासू का मेला सावन सुदी पचमी को होता है। दरियाबाद तथा जलालपट्टी में गाजी मियाँ का मेला जेष्ठ के तीसरे इतवार को। सीलपुर मेहदौरी में शाह अली अब्दाल का मेला मुसलमानों के नवें महीने शाबान में होता है। बम्रु

मोढ़ा में समिया देवी का मेला अगहन के अन्तिम सोमवार को नरनान, मनौरी, भरवारी में कुवार सुदी दशमी को विजयदशमी का, तिलहापुर और मूरतगज में अगहन सुदी पंचमी को धनुर यज्ञ का मेला होता है। नड़गाँव और सैयदसराँवाँ में अमावस्या का मेला भादों अमावस की। काजू में नरेछा का मेला भादों सुदी पंचमी को होता है। सराय अकिल में कुवार सुदी दशमी को रामलीला होता है। किशुनपुर मे अम्बारी देवी का मेला प्रत्येक सोमवार और शुक्रवार को। मलकरनपुर में कार्तिक सुदी पूरणमासी को कंस लीला होता है।

तहसील सिराथू—कड़ा में भादो अमावस, माघ अमावस, कार्तिक सुदी पूरणमासी दरगाह सैयद कुतुबुद्दीन, तथा चैत बदी अष्टमी, अषाढ़ बदी अष्टमी; सावन बदी अष्टमी को शीतला जी का मेला लगता है। संवरई बुजुर्ग में भादों अमावस को जल विहार का मेला। मुल्तानपुर में रज्जब की दूसरी तारीख को ख्वाजा कड़क साहेब का जन्मोत्सव। नारा, शम्साबाद, शहजादपुर में रामलीला और चैत सुदी तीज को गनगौर का मेला। तौगाइन, कुंदरौ, चेनी, निजामपुर, मुहम्मदपुर ऐंठा, केमन, पूरबसरीरा, योन में चैत सुदी तीज से एकादशी तक गनगौर का मेला। अकबरपुर में गगा-स्नान, माघ संक्रान्ति, तथा जेठ के गंगा दशहरा पर मेला। मझनपुर में गनगौर का मेला चैत सुदी तीज को। निदौली और अगिआना में आषाढ़ सुदी अष्टमी को सीतला देवी का मेला। पच्छिम सरीरा मे भादों सुदी पचमी को झकझुलनी का मेला। एदिलपुर मे भादों सुदी पचमी को नरेछा का मेला। कनैली मे कार्तिक सुदी एकादशी को कस लीला। करारी, पालो, ढिकाई, गौरा तयाबपुर, दानपुर, अथौली, गौराजू में रामलीला का मेला। पच्छिम सरीरा में भादों सुदी तेरस को झकझुलनी का मेला। पभोसा मे पारसनाथ के यात्रा का मेला माघ की संक्रान्ति को होता है।

तहसील सोरांव—सोरांव-मुथा, हाजीगंज में सावन सुदी सप्तमी, पूर्णमासी को शिवकोटी का मेला और हाजीगज में देवी जी का मेला। शिवगढ़ में अषाढ़ सप्तमी को देवी जी का और भादो बदी अष्टमी को शिवकोटी का मेला लगता है। फाफामऊ में हर महीने के तेरस और पूरणमासी को गगा स्नान। जैतवार डीह में फागुन बदी तेरस को पड़िला महादेव का मेला। मऊआइमा,

इस्माइलगंज, सुल्तानपुर, बीरपुर, हरीसनगंज में रामलीला। मोहनगंज में भादों बदी अष्टमी या जन्माष्टमी का मेला। खिगरौर, सुरसापुर, मलाक हरिहर में रामलीला, शिवराटी तथा देवी जी का मेला। फूलपुर में रामलीला, गानामिया (ज्येष्ठ के दूसरे इतवार) और सिकन्दरा में गाजी मियां का मेला होता है। परसाडीह में कार्तिक सुदी पूरणमासी को वारुणी स्नान होता है। झूँसी में ईद की आठवीं तारीख को शेख तकी का मेला, रामलीला और हरिहर का मेला कार्तिक सुदी एकादशी को होता है। केंवरा कोटरा में सावन बदी पचमी को दुर्वासा का मेला। भुलईक पुरवा में १४ वीं रबी उलौवल को सिकन्दर अली का मेला होता है।

तहसील हंडिया—हंडिया में कुआर में रामलीला होता है। मदारीपुर तथा ककूहा में गाजी मियां का मेला जेठ का पहला इतवार। कन्दौरा में फागुन और सावन बदी तेरस को महादेव का मेला।

तहसील करछना—अरैल और मनइया में मकर सक्रान्ति को खिचड़ी का मेला, नैनी में भादों सुदी पचमी को सैनी का मेला। देवरख में सोमेश्वर महादेव का मेला फागुन बदी तेरस को। पुरवाराम में जेठ के द्वितीया को गाजी मियाँ का मेला। देवरिया में कातिक सुदी दुइज तथा चैत बदी दुइज का जम-दुतिया का मेला, सोनबरसा में पूस और फागुन बदी तेरस को महादेव का मेला। पचवढ में चैत सुदी अष्टमी को भैरव जी का मेला। खेहा में चैत सुदी अष्टमी को देवी जी का तथा जेठ के पहिले इतवार को गाजीमियाँ का मेला। अमिलिया में अमिलियन देवी का मेला असाढ बदी अष्टमी को लगता है।

तहसील मेजा—मना में भादो सुदी के पहले इतवार को बोलन महादेव का मेला, मांडा, सिरसा और खीरी में रामलीला का मेला, परानीपुर में बरमदेवता का मेला, बामपुर में माघ संक्रान्ति का मेला, रामनगर में असाढ सावन के प्रत्येक मगल को मेला लगता है। औंता में सावन के अन्तिम मगल को महावीर जी का मेला, हनुमानगज में हनुमान जी का मेला प्रत्येक मगल को होता है। बड़ोखर में हर मगल को हनुमान जी का मेला, सोहास और मदरहा में पूस बदी तेरस को महादेव का मेला लगता है।

इन मेलों के दिनों में साधारण यात्री का बहुत कुछ ध्यान रखा जाता है।

एक विशेष प्रकार के पुजारी अथवा एक विशेष प्रकार का समुदाय जिन्हे पंडा के नाम से पुकारा जाता है यात्रियों को सुविधाजनक वास धाम और यात्रियों के मनोकामना सिद्ध करा देने अथवा उनके भावी मुक्ति मार्ग के सम्बन्ध में सहायता देने के लिये सदा प्रतीक्षा में रहता है। जहाँ जहाँ शिव जी के मन्दिर हैं वहाँ पर गोसाईं और जहाँ देवी जी के मन्दिर है वहाँ माली, जहाँ गाजीमियाँ पुजते हैं वहाँ मुस्लिम मुजाविर, जहाँ बड़े-बड़े मेले लगते हैं जैसे रामलीला इत्यादि वहाँ स्थानीय भद्र पुरुषों की कमेटी के चतुर अधिकारी, और माघ मेला में प्रयाग वालों का एक समुदाय है जो यात्रियों को उनके सारे धार्मिक कृतियों को विधिवत् कराने में मन्त्री का कार्य करता है।

प्रयाग का माघ मेला

तीर्थ-स्थान के रूप में इलाहाबाद की प्रसिद्धि के सम्बन्ध में स्वयं हिन्दू ही भिन्न भिन्न कारण बतलाते हैं। अयोध्या के राजा भगवान रामचन्द्र अपनी पत्नी सीता के सहित १४ वर्ष के बनवास में यहाँ स्नान और पूजा करने आये थे। यहाँ तीन नदियों का संगम भी है। इनमें से दो—यमुना और स्वर्ग से आई हुई गंगा तो सबको दर्शन देती हैं, तीसरी सरस्वती केवल भक्तजन को ही दर्शन देती हैं। ये इलाहाबाद से ४०० मील दूर पश्चिम मरुहिन्द की भूड़ से जमीन के नीचे नीचे आकर यहाँ जमीन तोड़कर मिल जाती हैं, संगम के आगे जल के भंवर

संगम

नदियों के मिलने का प्रमाण देते हैं। यहाँ से 'त्रिवेणी' एक नदी के रूप में गंगासागर या बंगाल के आखात की ओर बहती है।

इस स्थान की पावनता और इसकी यात्रा एवं माघ भर यहाँ निवास करने आदि के पुण्य-फल की वार्ता के आधार पुराण ग्रन्थ हैं। प्रायः सभी हिन्दू

धार्मिक कर्मों और अनुष्ठानों का प्रमाण और विधान पुराणों में ही मिलता है। प्रयाग माहात्म्य, जिसमें मुख्यत प्रयाग की महिमा का वर्णन है, मत्स्य पुराण का एक अश है। यह पुराण अठारण पुराणों में गिना जाता है। इनकी रचना का श्रेय महाभारत के प्रणेता कृष्ण द्वैपायन व्यास को दिया जाता है।

पुराणों की, तदनुसार प्रयाग माहात्म्य की प्राचीनता को मानते हुए ऐसे भी ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे प्रकट होता है कि यहाँ के होनेवाले समारोहों को एक हजार वर्ष से भी पहले विदेशी यात्रियों ने अपनी आँखों देखा था। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेंन्साग ने जिसने सन् ६४४ में भारत की यात्रा की थी, लिखा है कि पौराणिक 'अक्षयवट' नाम से प्रसिद्ध वटवृक्ष से भारतीय तीर्थयात्री पवित्र नदिया में अपने को डाल देते हैं। इस प्रकार डूब मरने की अनुमति प्रयाग-माहात्म्य में है। इससे प्रमाणित होता है कि ऐसी बातों का जिन्हें हिन्दू—उन दिनों भी बडे प्रेम से करते थे जब उक्त चीनी यात्री भारत आया था, जिस ग्रन्थ में समर्थन है वह जरूर ही बहुत ही अधिक पुराना होगा।

परम्परा ने इस स्थान को अलौकिक और धार्मिक रूप दे दिया है, जिससे धर्मभीरु यात्री यहाँ की यात्रा करते हैं। वे इसे तीर्थराज समझकर यहाँ स्नानार्थ दौडे आते हैं। भारत के उन तीन स्थानों में एक इलाहाबाद भी है जहाँ हिन्दुओं का अत्यन्त आवश्यक श्राद्ध कर्म किया जाता है और इसका प्रयाग नाम इस बात का प्रमाण है कि भूतकाल में *किसी समय* यहाँ यज्ञ होते रहे हैं।

इतिहास में इस बडे मले का सबसे पहले उल्लेख चीनी यात्री ह्वेंन्साग के यात्रा विवरण में हुआ है। यह यात्री महाराज हर्ष के शासन काल में सन् ६४४ मे भारत आया था। महाराज हर्ष ने उससे बतलाया था कि वे तीस वर्ष से नदियों के सगम पर प्रति पाँचवें वर्ष एक बड़ी सभा करते है और दीन-दुखियों म अपना धन बाँट देते हैं। ऐसी एक सभा म ह्वेंन्सांग भी शामिल हुआ था, उसम सामन्त, राजा एकत्र हुए थे। पाँच लाख के लगभग लोग आये थे। इसम उत्तरी भारत के भिन्न भिन्न भागा के ब्राह्मण और प्रत्येक सम्प्रदाय के साधु सन्त शामिल थे। यह मेला डेढ महीने तक लगा हुआ था। इसका प्रारम्भ बडे समारोह के साथ हुआ था। राजाओं और उनके सरदारा का विशाल जुलूस निकला था।

प्रयाग में महाराज हर्ष की सभा—उपर्युक्त सभा का व्यापार वर्णन इस प्रकार है—"दोनों नदियों के संगम के पश्चिम एक बड़ा मैदान है। यह समतल है और शीशे की तरह स्वच्छ है। प्राचीन काल में इस स्थान पर दान पुन्य करने के लिये भिन्न भिन्न राजे महाराजे आते रहे हैं। इससे यह 'पुण्य क्षेत्र' कहलाता है। यह परम्परा है कि यहाँ का एक पाई का दान अन्य स्थानों के हजार पाइयों के दान से अधिक फलदायक है। इस कारण प्राचीन काल से इस स्थान की महिमा रही है। इस मैदान में महाराज हर्ष ने दान पुण्य करने के लिये बासों का एक चौकोर बाड़ा खड़ा किया था। यह हजार कदम लम्बा चौड़ा था। बीच में बीसों झोपड़ियाँ थीं, जिनमें सोना, चाँदी, हीरा, मोती आदि दान करने के लिये संग्रह किये गये थे। इन्हीं के पास सैकड़ों भण्डार गृह थे। इनमें रेशमी और सूती कपड़े, चाँदी और सोने के सिक्के तथा और और वस्तुयें भरी हुई थीं। बाड़े के बाहर भोजन करने के लिये स्थान बनाये गये थे। भिन्न भिन्न भण्डार-गृहों के सामने महाराज ने ऐसी सैकड़ों इमारतें बनवा दी थी जिनमें हजारों आदमी बैठकर विश्राम कर सकते थे। ये सब हमारी राजधानी के बाजारों जैसे थीं। इस तैयारी के कुछ समय पहले ही महाराज हर्ष ने पाँचों द्वीपों में घोषणा करके श्रमणों, धर्म विरोधियों, निर्ग्रन्थों, गरीबों, अनाथों तथा उदासियों आदि को इस पुण्यक्षेत्र' में दान लेने के लिये बुलवाया था।

"पहले दिन के पहले पहर में उन्होंने पुण्य क्षेत्र के एक झोंपड़े के भीतर बुद्ध की एक मूर्ति स्थापित की। उन्होंने इसके बाद प्रथम श्रेणी की बहुमूल्य वस्तुओं और वैसे ही वस्त्रों का दान किया और उत्तम भोजन प्रदान किया, साथ ही वे बाजों के बजने पर पुष्प वर्षा भी करते जाते थे। दिन के अन्त में वे अपने अपने वास स्थानों को चले गए।

"दूसरे दिन उन्होंने आदित्यदेव की मूर्ति स्थापित की और पहले दिन की आधी के परिणाम में बहुमूल्य वस्तुएँ और वस्त्र वितरित किए।

"तीसरे दिन उन्होंने ईश्वर देव की मूर्ति स्थापित की और दूसरे दिन की भाँति दान किया।

"चौथे दिन भिन्न भिन्न श्रेणी के दस हजार साधुओं को दान किया गया। प्रत्येक को सौ मुहरें, एक मोती, एक सूती पोशाक और भिन्न भिन्न प्रकार के पेय

श्रौर भोज्य पदार्थ, फूल श्रौर सुगन्ध द्रव्य दिए जाते थे। दान का कार्य समाप्त हो जाने पर वे सब चले गए।

"पाँचवाँ प्रबन्ध ब्राह्मणों को दान करने का था। इनको दान देने का कार्य बीस दिन तक जारी रहा।

'छठा नम्बर धर्म विरोधियों का था। ये दस दिन तक दान पाते रहे।

"इसके बाद उनकी बारी श्राई जो दान लेने के लिये ही सुदूर स्थानों से श्राए थे। ये दस दिन तक दान पाते रहे।

"श्राठवाँ दल गरीबों, श्रनाथों श्रौर श्रापद्ग्रस्तों का था। इन्हें महीना भर तक दान मिलता रहा।

"श्रन्त में उस समय तक पाँच वर्ष की जमा की हुई सम्पत्ति समाप्त हो गयी। केवल घोड़े, हाथी श्रौर फौजी सामान बचा था, जो राज्य की रक्षा करने श्रौर शान्ति कायम रखने के लिये श्रावश्यक थे। इनके सिवा महाराज हर्ष ने श्रपने रत्न श्रौर श्रपना सामान, श्रपने वस्त्र श्रौर कण्ठे, कान की बालियाँ, बाजूबन्द, हार, गले में धारण करने की मणि तथा सर के मुकुट के हीरे मुक्तहस्त होकर दान कर दिए।

"इस प्रकार सर्वस्व दान कर चुकने पर महाराज हर्ष ने श्रपनी बहन राज्यश्री के पहने हुए साधारण वस्त्र माँगे। उन्हें पहन कर उन्होंने दसों लोकों के बुद्धों की पूजा की। हाथ जोड़ कर स्तुति करते समय जब उन्हें श्रानन्द का लाभ हुश्रा तब कहा, "इस सारी सपत्ति का सग्रह करते समय मुझे इस बात का सदा भय रहा कि यह सुरक्षित नहीं है, परन्तु इसे धर्म मे दान करके मै श्रब कह सकता हूँ कि यह श्रच्छे काम में लगाई गई है। श्रच्छा हो कि मे श्रपने सभी भविष्य जन्मों में भी इसी तरह श्रपनी सम्पत्ति मनुष्यों को दान करूँ, जिससे मैं श्रपने में बुद्ध की स्वाधीन शक्तियाँ पूर्ण करूँ।" (बील—लाइफ श्राफ ह्वेनसाग)

इस प्रकार महाराज हर्ष का यह विशाल धार्मिक समारोह श्रन्तिम बार सदा के लिये समाप्त हो गया। इस सम्बन्ध मे श्रपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हाउ इंडिया फाट फार फ्रीडम' में डाक्टर एनीबिसेन्ट ने लिखा है—"वह बड़ा मेला श्राज भी प्रति बारहवें वर्ष लगता है, परन्तु उसमें न तो महाराज हर्ष हैं, न दान-पुन्य है

और न उपदेश ही। यदि ऐसा कोई राजा हो तो इतनी सम्पत्ति दान कर सके।"

मेले का प्रारम्भ मकर-सक्रान्ति से होता है, जब सूर्य मकर राशि में आता है। अपनी 'हिन्दूइज्म' नामक पुस्तक में सर मानियर विलियम्स मकर सक्रान्ति के सम्बन्ध में इस तरह लिखते हैं :—

'मकर सक्रान्ति या आकाश में सूर्य के उत्तरी मार्ग का प्रारम्भ इस दिन सौर माघ मास के प्रथम दिन (लगभग जनवरी के प्रारंभ में) सूर्य (हिन्दू गणना के अनुसार), अत्यन्त दक्षिणी स्थान पर पहुँचकर उत्तरी मार्ग (उत्तरायण) ग्रहण करता है। उसकी यह चाल जून के अन्त तक जारी रहती है। इस काल में सर्वत्र बड़ी धूमधाम होती है विशेष कर प्रयाग (इलाहाबाद) में गंगा-यमुना के संगम पर जहाँ प्रसिद्ध धार्मिक मेला लगता है। दक्षिण भारत में यह समारोह 'पोंगल' कहलाता है, इसी समय से तामिल वर्ष शुरू होता है। वहाँ पशु फूल मालाओं से सजाये जाते हैं, उनका जलूस निकलता है, उनके साथ विशेष आदर का व्यवहार होता है और उनसे काम नहीं लिया जाता है।"

'हिन्दू हालीडेज' के लेखक राय बहादुर बी० ए० गुप्त इस मकर सक्रान्ति के संबन्ध में लिखते हैं "इस दिन सूर्य मकर क्रान्ति में प्रवेश करता है, जो १२ या १३ जनवरी को प्रत्येक वर्ष पड़ता है। यह समय मार्गशीर्ष या पूस में आता है। यदि पूस में आता है तो वह चोरों, बदमाशों और शिकारियों के लिये अशुभ सूचक है। ऐसा ही विचार उस समय भी किया जाता है जब सूर्य का सक्रमण काल के किसी खास दिन या ग्रहों के किसी खास मेल पर सघटित होता है।

सक्रान्ति स्त्री बताई जाती है। वह जिस वाहन पर सवार होती है, जो वस्त्र पहनती है, जिन रत्नों को धारण करती है, उन सब की गणना से वर्ष का भविष्य शुभाशुभ बताया जाता है। इस सम्बन्ध में ब्रह्मगुप्त का प्रमाण माना जाता है।"

'हिन्दू फास्ट्स एन्ड फीस्ट्स के प्रणेता रायबहादुर ए० सी० मुकर्जी लिखते हैं "मकर सक्रान्ति इलाहाबाद के वार्षिक धार्मिक मेले का पहला दिन है। अधिकारी इसे माघ मेला कहते हैं। यह महीने भर लगता है। इस अवसर पर धार्मिक हिन्दू प्रति दिन सूर्योदय के पहले त्रिवेणी में स्नान करते हैं, दिन में अन्न

नहीं खाते, गंगा के समीप झोपड़ियों में रहते हैं। ये झोपड़ियाँ उन्हीं के रहने के लिए खड़ी की जाती हैं, यथासम्भव ये कगार के समीप ही पड़ती हैं। नदी के तट पर झोपड़ियों में लोग प्राय: पूरे माघ भर रहते हैं। यह धर्म भाव 'कल्प वास' कहलाता है।

विशेष मामलों के समय यह निवास-काल कम कर दिया जाता है। जो लोग विशेष कार्यवश अपना अधिक समय नहीं दे सकते वे तीन दिन के कल्पवास से ही ३० दिन के कल्पवास के पुण्य के भागी हो जाते हैं। परन्तु ऐसा विशेष बात होने पर ही किया जाता है। पूरा माघ भर स्नान होता है, परन्तु कुछ तिथियों का विशेष महत्व माना जाता है। सक्रान्ति को छोड़कर वे इस प्रकार हैं (१) अमावस्या (२) वसन्तपचमी (माघ शुक्ल) (३) अचला सप्तमी (४) एकादशी (५) माघी पूर्णमासी।

कुम्भ मेला—कुम्भ का अर्थ घड़ा है। और एक राशि का भी नाम है। पुराणों में एक कथा है। देवताओं और असुरों द्वारा जब समुद्र मन्थन किया गया और उसमें से चौदह रत्नों में अमृत का एक कुम्भ भी निकला। इस कुम्भ को लेकर देवतागण भागे, और राक्षसों ने उनका पीछा किया। बारह दिन तथा रात्रि तक बराबर यह दौड़ होती रही और इसी छीना झपटी में वह कुम्भ चार स्थानों में पृथ्वी पर गिर पड़ा, अर्थात् हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जैन में। वृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा और शनि ने उस कुम्भ की रक्षा की थी। उसी घटना के स्मारक रूप इन स्थानों में बारी बारी से प्रति बारहवें वर्ष कुम्भ लगता है।

यहाँ यह याद रखना चाहिये कि मनुष्य का एक साल देवताओं के एक दिन रात के बराबर होता है। जब तक सूर्य उत्तरायण में रहता है तो दिन और जब दक्षिणायण में रहता है तब रात रहती है। चूंकि यह देवासुर संग्राम १२ दिन तक हुआ था इसलिये कुम्भ हर बारहवें साल पड़ता है।

प्रयाग का सबसे बड़ा मेला माघ मेला है। इसमें हर साल १० लाख यात्री त्रिवेणी स्नान के लिये बाहर से आते हैं। किन्तु हर छठवें साल, अर्धकुम्भी के अवसर पर २०-२५ लाख, और हर बारहवें साल जब कुम्भ लगता है तब यात्रियों की सख्या ३५-४० लाख अनुमान किया जाता है। यह मेला मकर की

संक्रान्ति से लेकर एक महीना माघ की पूर्णमासी तक रहता है। इस अवसर पर यहाँ बड़े मठ तथा अखाड़ा के हजारों साधुओं का जमघट होता है।

इलाहाबाद का किला जिसमें पातालपुरी का मन्दिर है
(किले का विस्तृत वर्णन पृष्ठ १५ पर है)

मुख्य मुख्य पर्व के दिन साधुओं के अखाड़े बड़ी धूम धाम से निकलते हैं। जिनका क्रम इस प्रकार है—सबसे पहले निर्वाणी फिर निरंजनी, फिर 'जूना', फिर वैरागी, फिर दिगम्बर, तब 'निर्मोही', उनके पीछे 'उदासी' और अन्त में 'निर्मला' साधुओं की सवारी निकलती है। संक्रान्ति तथा अमावस्या स्नान की मुख्य तिथियाँ हैं।

— —

तीर्थ गुरु समाज

राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं के अथक तथा अनवरत तपस्या के फल स्वरूप निराश, शिथिल, तथा मरणासन्न भारतीय राष्ट्र के अंग-प्रत्यंग, रग रग में, नवीन जीवन, प्राण, जागरण, चेतना तथा स्फूर्ति सञ्चालित हो गया है। फिर प्रयागवाल समाज इसका अपवाद कैसे हो सकता है। आज इस समाज में बी० ए०, वकील, व्याकरणाचार्य उत्पन्न हो गये हैं जो अपने समाज को राष्ट्र के प्रथम पंक्ति में रखने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। अपने समाज में सुधार पैदा करने के लिये प्रयागवाल महासभा सगठित किया है जो भारतीय विधान के अनुसार रजिस्टर्ड हो चुका है। इनका सर्वप्रथम प्रयास इस ओर हुआ है कि वे अपने उत्पत्ति के विषय में प्रचलित भ्रम का निवारण कराएँ। उनका कहना है कि वे तीर्थ गुरु हैं। जब से यह तीर्थराज प्रयाग है, तभी से तीर्थ गुरुओं (पंडों) का आविर्भाव है। इस तीर्थराज प्रयाग में सतयुग के समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सोम, अग्नि, वरुण, कुबेर प्रभृति देवताओं ने यज्ञानुष्ठानादि का सम्पादन कर इस तीर्थ के महत्त्व को बढाया। यज्ञ सम्पादनार्थ आचार्यत्व का कार्य भार प्रयागवासी ऋषि महर्षियों ने निर्वाह किया। उन्हीं ऋषि महर्षियों के परम्परा में त्रेता युग में महर्षि भरद्वाज ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र का वन गमन के समय यहाँ स्वागत किया और त्रिवेणी स्नान, दान, पूजनादि क्रिया का सम्पादन करवाया। द्वापर युग में षोडश कला के अवतार भगवान कृष्ण के अग्रज श्री बलराम जी ने अपनी अन्य तीर्थ यात्राओं में प्रयाग को विशेष स्थान दिया था। इन्हीं भरद्वाज, गौतम, दुर्वासा, अत्रि, मनु आदि महर्षियों के बने आश्रमों से आज भी प्रमाणित है कि इन तीर्थ गुरुओं के पूर्वज उच्च महर्षि गण कितनी ख्याति को प्राप्त कर चुके थे। इन्हीं ऋषि महर्षियों के वंशज आज भी तीर्थ गुरु के रूप में प्रयाग मण्डल में वर्तमान हैं। देश, काल तथा पात्र के परिवर्तन के साथ साथ इन तीर्थ गुरुओं की वृत्ति निरपेक्ष से परिवर्तित होकर सापेक्ष होती गई। यहाँ तक कि यह वृत्ति अब जीविका रूप में परिणत हो

गई है। इतिहास के आदर से यह प्रमाणित है कि हिन्दू राजस्थान में महाराजा एवं रर सामन्तों गण प्रयाग आकर सम्पूर्ण राज सम्पत्ति को इन तीर्थ गुरुओं को अर्पण कर अपने को कृतकृत्य समझते थे। यवन काल में भी इन तीर्थ गुरुओं के परम्परागत अधिकारों की रक्षा की गई। सम्राट अकबर, जहाँगीर, औरंगजेब ने समय समय पर फरमान प्रदान किये हैं जिनकी मूल प्रतियाँ ताम्रपत्रादि पर तत्सम्बन्धी पंडों के पास अब तक सुरक्षित हैं। विक्टोरिया के घोषणापत्र के अनुसार इनके अधिकारों की रक्षा की गई है। अभी हाल में अमेरिका के यू० पू० राष्ट्रपति की पत्नी श्रीमती ई० रूजवेल्ट ने त्रिवेणी पूजन कर पंडों को दक्षिणा प्रदान करके उनके परम्परागत दान लेने की प्रथा को नवीन शक्ति प्रदान की है। आज भी भारतवासी नरेशों की ओर से इन्हें वृत्ति रूप में जागीरें एवं गाँव जमीनें आदि प्राप्त हैं।

ऐसी किम्वदन्ती है कि किसी समय प्रयाग में १४८४ घर पंडों के, किन्तु आज उनकी संख्या बहुत उदार गणना करने पर भी १५० २०० तक ही पहुँचती है। इन तीर्थ गुरुओं की रजिस्टर्ड संस्था प्रयागवाल महासभा के उद्देश्य निम्नांकित हैं—

(१) प्रयागराज की तीर्थ मर्यादा की रक्षा तथा अन्य प्राचीन पौराणिक एवं ऐतिहासिक तीर्थ स्थानों की रक्षा करना तथा उनकी दशा में सुधार करना।

(२) प्रयागवाल समाज के हेतु विशेषकर, तथा अन्य समाज अथवा जातियों के हेतु सामान्य रूप से धर्मशालाएँ, कुएँ विद्यालय, वाचनालय, देव मन्दिर तथा इसी प्रकार के अन्य संस्थाओं का उचित प्रबन्ध तथा संचालन करना।

(३) प्रयाग आने वाले तीर्थ यात्रियों को विधर्मियों एवं दलालों से बचाने के लिए स्वयं सेवकों द्वारा, इलाहाबाद, नैनी, प्रयाग तथा अन्य निकटवर्ती रेलवे अथवा मोटर स्टेशनों, त्रिवेणी तट तथा अन्य स्थानों पर उनके धन, धर्म, मान, मर्यादा अथवा अन्य व्यावहारिक, सामाजिक तथा नागरिक स्वत्वों की रक्षा करना।

इस संस्था के मुख्य कार्यकर्त्ताओं तथा प्रमुख सदस्यों की नामावली निम्नांकित है।

नाम	पता	ध्वजा चिन्ह
१ माधवराम गोकरन प्रसाद	मोतिम गंज, नई सड़क	पेटारी
२ गोकुलप्रसाद कोटेश्वरनाथ मिश्र,	६७नईबस्तीकीटगंज,	चाँदी का कटोरा नारियल
३ बेनीप्रसाद श्यामलाल भरत तिवारी	दारागंज	चार चकवाले

४ चिन्दा भगवती विश्वनाथ मिश्र — दारागंज — सिल लोढी

५ शिवशंकर शेषनारायण शोखटा ८४८ — दारागंज — शीशा भमिया
एम० ए० वकील

६ गुरु प्रसाद रामकृष्ण भरद्वाजी — ४६ नईबस्ती कीटगंज — लाल कटार

७ माधोलाल मदनमोहन भरद्वाजी — कीटगंज — श्रीकृष्ण

८ रामचन्द्र छुन्नू लाल पीलीकोठी — कीटगंज — पाँच तिलगा

९ रामकृष्ण राधाकृष्ण त्रिभुवननाथ श्रजैन — ६४ पद्मनिवास कीटगंज — हाथी

१० महादेव बच्चू लाल — देवरी करछना — सूर्य चन्द्रमा

११ रघुवीर प्रसाद चन्द्र नाथ काला — कीटगंज — महादेव पार्वती

१२ मदन गोपाल प० छेदीलाल शर्मा करमहा — ६६९ दुर्गा निकेत एटियापुर — चटापटी (पटापटी)

१३ महादेव भागीरथ पशुपति नाथ शर्मा — " — महावीर जी

१४ गोविन्द प्रसाद रामचन्द्र — " — सूर्य्य

१५ महावीर प्रसाद राम रामसहाय भरद्वाजी — १६८ कीटगंज — श्रीकृष्ण

१६ काशीराम चन्द्रशेखर गंगाधर, — कीटगंज — हाथी

प्रयाग की आर्थिक देन

जिस प्रकार प्रयाग धार्मिक संसार में 'तीर्थ राज', राजनैतिक क्षेत्रमें 'राजतीर्थ', साहित्यिक संसार में 'शारदा तीर्थ' सांस्कृतिक क्षेत्र में आर्य-संस्कृति का केन्द्र, ऐतिहासिक क्षेत्र में खोज और कौतूहल की वस्तु, और अनुसन्धान कर्त्ताओं के बीच आश्चर्य की वस्तु समझा जाता है, उस प्रकार से आर्थिक, व्यापारिक तथा औद्योगिक क्षेत्र में कुबेर का भण्डार नहीं समझा जाता, क्योंकि प्रयाग तो 'मुक्ति दाता' है। तुलसीदास जी की यह लोकोक्ति 'जहां राम तहां काम नहिं, जहां काम नहिं राम' शायद प्रयाग के आर्थिक क्षेत्र के लिये अधिक चरितार्थ होता है। प्रयाग मुक्ति दे सकता है, धन अथवा धनोपार्जन का साधन नहीं। फिर भी यहाँ की जनता के लिये काम चलाऊ व्यापार अवश्य होता है।

पहले यहां से अन्न, तेलहन और कपास नावों द्वारा जलमार्ग से देसावर को जाया करता था। सन् १८८१ ई० के पहिले इस प्रकार की लगभग ३०० नावें चला करती थीं। यहां नावें बनाये जाते तथा बेंचे भी जाते थे किन्तु अब उनकी संख्या नगण्य हो गई है। फिर भी पन्द्रह से बीस लाख रुपया का हर साल सोना चाँदी बम्बई कानपुर से आकर यहाँ बिकता है। पत्थर का भी व्यापार होता है। सतना इटावा आदि से आकर लगभग ५, ६ हजार मन घी यहाँ बिकता है। इलाहाबाद में गंगापार से गुड़, मनौरी, भरवारी, करमा, सिराथू, इस्माईलगंज और फूलपुर से विभिन्न प्रकार के अन्न आते हैं। साथ ही तरफ से गेहूँ, अरहुआ, बारी बारी से चावल, जसरा और रामपुर से चना आता है। शहर में रानीमण्डी की मण्डी, मुट्ठीगंज की मंडी और देहात में सिरसा और दारागंज अन्न की बहुत बड़ी मण्डियाँ हैं। यहाँ से चना, अरहर, मटर, गेहूँ और चावल देसावर को जाता है। चीनी बाहर प्रतापपुर, भरना, और बक्सर से आती है। इसके अतिरिक्त नैनी की भी चीनी बिकती है। सिरसा और बलरामपुर के बाजार में दक्षिण की ओर से कपास अधिक आता है। शहर में अधिकांश कपास आगरे से आता है।

नगड़ा का व्यवसाय देहात में अधिकांश हंडिया, करमा, लालगंज, उजहिनी, मरवारी और मऊआइमा के बाजारों में होता है।

यहाँ बाड़ी का व्यापार होता है, जिसके लिये तम्बाकू गुजरात, बम्बई और कलकत्ता से और पत्ते बांदा और जबलपुर की ओर से आते हैं। बीड़ियाँ बनकर अल्मोड़ा, बनारस और फैजाबाद आदि स्थानों को भेजे जाते हैं। इस जिले में सन के केन्द्र जसरा, शिवगढ, इस्माईलगंज और नवाबगंज हैं। सन यहाँ से कलकत्ता और बनारस भेजा जाता है।

घरेलू कला कौशल—अधिकांश पीतल के बर्तन, शम्साबाद, सरायअकिल और इलाहाबाद शहर में बनते हैं। नमक शहजादपुर में बनता है। लगभग १५ हजार मन नमक तैयार होकर बाहर भेजा जाता है। इसके अलावा थोड़ा बहुत नमक हंडिया, मझनपुर और फूलपुर तहसील के गाँवों में भी बनाये जाते हैं। कड़े में गोटा, पैमक और लचका इत्यादि पहले बहुत बनते थे वहाँ लगभग १०० घर कारीगरों के थे परन्तु अब बहुत कम रह गये हैं, जो कच्चा गोटा बनते हैं।

जरदोजी के कारीगर यहाँ बहुत कम हैं। जो कुछ हैं वे सलमा, कलाबत्तू और कामदानी का काम आर्डर देने पर बनाते हैं। कुछ दिन पहिले जड़ाऊ और मीनाकारी के काम करने वाले दारानगर में ५० घर थे किन्तु अब यह कारीगरी शहर ही में रह गई है। लोहे के मजबूत ताले, तिपाई, मोढे और किश्तियाँ फूलपुर में बनती हैं। तिपाई और किश्तियों में रंग भी दिया जाता है जिससे वे बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं। यहाँ जूते भी बना करते हैं। बाँस और बेंत के मोढे, कोच, मेज और बक्स बनाने का काम यहाँ शहर में लगभग १०० कारीगर करते हैं। छोटे बांस जबलपुर, बिलासपुर रियासत रीवा और कटनी की तरफ से आते हैं, बड़े बांस इसी जिले के गंगापार से आते हैं। बेंत लखनऊ से आते हैं। लाख की चूड़ियाँ भी यहाँ बहुत बनती हैं। लाख मिर्जापुर से और पन्नी बम्बई से आती है। रंग चपड़ा से बना लिया जाता है। यहाँ से चूड़ियाँ, कड़ा, शहजादपुर, दारानगर, मानिकपुर, मैहर, सतना, मिर्जापुर, फतेहपुर, काशी, लखनऊ, बदायूँ और बरेली तक जाती हैं। पत्थर की प्यालियाँ इत्यादि यहाँ

मादा, हमीरपुर और चरखारी की रियासत से बनकर आती हैं। सिलबट्टा और चकी शिवराजपुरी पत्थर से बनाया जाता है। कंघी बनाने का काम भी यहाँ होता है, लकड़ी और मिट्टी के खिलौने भी बनने लगे हैं।

किसी समय में कड़ा में कागज बहुत बनता था। परन्तु मशीनों के कारण अब यह काम बन्द सा हो गया है। यहाँ का कागज सफेद, मोटा और चिकना बही के कागज के समान होता था। मूज का बाध अकुवा, भरवारी, अफजलपुर, सातों और लालगज की ओर बहुत बनता है। ताड़ के पत्ते से छोटे छोटे पखे और चटाइयाँ भी यहाँ बनाई जाती हैं।

कपड़े की रगाई और छपाई का काम भारतगज, फूलपुर और शहजादपुर में होता है। फूलपुर और शहजादपुर में रगाई, तोशक और जाजिम आदि मोटे कपड़े पर छापे जाते हैं। रग का ममाला कानपुर कटनी और बम्बई से आता है और ठप्पे मिर्जापुर और लखनऊ से आते हैं। भारतगज में अधिकाश दोगे छापे जाते हैं। खानेजहापुर (सोराम) में चुदरी रगी जाती है जो अधिकाश विन्ध्याचल को जाती है। शहर में सोना बुनने के कई छोटे कारखाने खुले हैं जिनका अधिकाश माल यहीं खप जाता है। ऊनी कालीन कुछ भारतगज और उससे अधिक इमामगज (हड़िया) में बनते हैं। आजकल सूती और ऊनी कपड़े की धुलाई और रगाई की दूकानें कई जगह शहर में खुल गई हैं। इस जिले में बुनकरी का काम भी होता है।

बुनकरी का काम—प्रकृति ने ही इलाहाबाद जिले को तीन हिस्सों में बाँट रखा है—गंगापार, जमुनापार और दोआबा। या तो थोड़े बहुत करघे इन तीनों हिस्सों में हैं लेकिन सबसे ज्यादा तादाद में और खास काम तैयार करने वाले करघे गगापार में ही हैं। गगापार के इलाके में इलाहाबाद जिले की तीन तहसीलें लगती हैं सोराम, फूलपुर, और हड़िया। इन तीनो में भी बुनकरो की ज्यादातर आबादी सोराम और फूलपुर की तहसील में है और जिले भर में बुनाई का सबसे बड़ा केन्द्र सोराम तहसील के प्रसिद्ध स्थान मऊआयमा में है जो उत्तर रेलवे की इलाहाबाद-प्रतापगढ शाखा पर इलाहाबाद से २१ मील की दूरी पर है।

इलाहाबाद जिले में चलने वाले करघे ज्यादातर दो तरह के हैं—१ निनी

कारखाने का जो मालिक वही मजदूर। २ मजदूरी पर—महाजन से सूत या रेशम लेकर मजदूरी पर बुनना। जिले में आमतौर से काम भी दो तरह का तैयार होता है:— १ खंडाला-बारीक रेशमी कपड़ा। २ मोटी जनानी साड़ी या गाढ़ा-जिसमें ताना और बाना दोनों मोटे सूत के रहते हैं।

खंडाल का काम—उत्तर प्रदेश में खंडाले का काम केवल इलाहाबाद जिले में ही होता है। इसमें ताने में बनावटी रेशम यानी केला और बाने में बारीक सूत (३५ से ५५ तक) इस्तेमाल किया जाता है। यह एक तरह का चिकना कपड़ा है, जो लगभग छः गज लम्बा और तीस इंच चौड़ा होता है। इसमें ढाई से छः इंच तक का चौड़ा किनारा रहता है। एक एक कपड़े में आठ आठ चोलियाँ निकलती हैं जिनको ज्यादातर महाराष्ट्र की औरतें इस्तेमाल करती हैं। खंडाला का कपड़ा सादा चारखानेदार या फूलदार होता है। फूलों के नाम के लिहाज से इस कपड़े के भी अलग अलग नाम होते हैं जैसे चमेली, तोड़ा, कुल्ला कैरी, नागमूड़ी, गेंदा आदि। यहाँ पर यह काम पिछले पचास बरस से होना शुरू हुआ है। इसके पहले लोग मोटा कपड़ा या गाढ़ा बुनते थे।

मऊआयमा कस्बे की आबादी ग्यारह हजार से ऊपर है जिसमें लगभग आधे बुनकर हैं। यहाँ पर करघों की तादाद लगभग बारह सौ है जिनमें इस समय लगभग सौ चल रहे हैं और वह भी ज्यादातर मजदूरी पर। पिछले पाँच छः महीने में यहाँ से पाँच सौ नौजवानों के करीब रोज़ी की खोज में बम्बई, नासिक, अहमदाबाद चले गये हैं। कुछ आसपास के इलाके में इलाहाबाद शहर में गारा मिट्टी ढोने, होटल में बरतन माजने या इसी तरह के दूसरे काम करते हैं। आज यह दशा है कि मऊआयमा और उसके आसपास के इज्जतदार घरों की औरतें, जो कभी पर्दे से बाहर नहीं निकलती थी, बटहा नाम के गाव में (जो मऊआयमा से कुछ फर्लांग पर ही है) नीमर राम बदलू राम के अहाते में सनई कूटने और इसके गट्ठे बाधने का काम करती हैं। इससे उनको छः आना रोज मजदूरी मिलती है।

जनानी साड़ी—इस काम में ताना और बाना दोनों मोटे सूत के रहते हैं जिसका नम्बर बीस या उसके आसपास रहता है। मऊआयमा से लगभग ६ मील की

दूरी पर बहरिया नाम का एक गाँव है जो फूलपुर तहसील में पड़ता है और जहा चार सौ से ऊपर करघे हैं। इन करघों पर रूमाले का बारीक और जनानी धोती दोनों काम होते हैं।

बहरिया गाव के लगभग डेढ सौ आदमी घर छोड़कर बाहर चले गये हैं। हम यहाँ इतना और कहेंगे कि क्या मऊआइमा और क्या बहरिया इन इलाकों में जो करघे चल रहे हैं उसके लिए यहाँ के लोग मऊआइमा के एक दिलदार खानदान के, जो अहमदुल्ला के नाम से प्रसिद्ध हैं, अहसानमन्द हैं। ज्यादातर करघों पर इन्हीं का सामान मजदूरी पर बुना जा रहा है।

इस ग्राम में भी ताना और बाना, दोनों मोटे सूत के रहते हैं। इस तरह का माल बुनकर आम तौर से ही तैयार किया करते हैं।

कारखाने—छापाखाना के लिए इलाहाबाद प्रसिद्ध ही है। यहाँ लगभग २२५ प्रेस हैं। सबसे बड़ा गवर्नमेन्ट प्रेस है, उसके बाद लीडर, इंडियन, ला जर्नल, और चाँद प्रेस हैं। सबसे प्राचीन प्रेस मिशन प्रेस है जो सन् १८५७ के बलवे से पहिले ही स्थापित हुआ था। टाइप की ढलाई के यहाँ १०-१२ छोटे बड़े कारखाने हैं।

स्टील ट्रंक अर्थात् लोहे की पतली चादरों के रंगीन सन्दूक यहाँ बहुत बनते हैं। वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्र का यहाँ एक बड़ा कारखाना है जिसका नाम 'साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट कम्पनी लिमिटेड' है। तेल का सबसे बड़ा कारखाना यहाँ मनौरी में था जो सन् १९३० ई० में टूट गया। यहाँ रेंड़ी का तेल देसी कोल्हों द्वारा निकाला जाता था इसके अलावा कुछ निजी लोगों के कारखाने मनौरी, सिरसा सिराथू और लालगंज आदि में हैं। इनमें रेंड़ी के अतिरिक्त महुआ और नीम का तेल भी निकाला जाता है। लकड़ी का सामान—मेज, कुर्सी और आलमारियाँ यहाँ लगभग १० लाख रुपय का साल में बनता है और लखनऊ, कानपुर और काशी को भेजा जाता है। लकड़ी के पीतेदार खलौने भी कुछ समय से यहाँ बहुत बनने लगे हैं।

डिस्ट्रिक्ट जेल में सूती कालीन, दरी, मूँज की चटाई, दोसूती, गाढा झाड़न, निवाड़, आसन, चिक और कड़वा तेल आदि कुलियों द्वारा बनता है और

बेंचा जाता है। सेन्ट्रल जेल नैनी में रेंडी का तेल, लाठी के पशाव दाने, पायदान, लकड़ी की आलमारियाँ, मेज, कुर्सी आदि, मिट्टी के इलाहाबाद टायल, दातुती गाड़ा, निवाड़, दरी, रुपये की थैलियाँ और हाथ के करघे आदि बनाये और बेंचे जाते हैं।

ईंट, चूने और टायल के लगभग २०० कारखाने हैं जिनका माल शहर और जिले में खप जाता है, आटे की चक्कियाँ तो गली गली खुल गई हैं किन्तु सबसे बड़ा कारखाना मिलिंग कम्पनी लूकरगंज का है जो सन् १९०६ ई० में स्थापित हुआ था, इसमें लगभग ३००० मन आटा रोज तैयार होता है। बर्फ के भी तीन-चार कारखाने हैं। चीनी का कारखाना सबसे पहिले नैनी में राजनाथ पेंशनर सब जज के अगुवाई में कुछ लोगों ने मिलकर खोला था, जिसको बाद में कानपुर के मेसर्स बेग सदरलेंड ने मोल ले लिया था, अन्त में झूँसी के लाला किशोरीलाल ने इस कारखाने को लेकर बड़ी सफलतापूर्वक उन्नति के साथ चलाया। इन्होंने झूँसी में भी चीनी का मिल खोला था जो आपसी झगड़े के कारण अब बन्द सा हो गया है। चीनी का एक कारखाना जघई में भी है। इस कारखाने में केवल माघ और फागुन में गुड़ से चीनी बनती है।

काँच और शीशे का कारखाना नैनी का ग्लास वर्क्स है जिसको सन् १९१३ ई० में रायबहादुर जगमल राजा ने खोला था। इसी तरह का दूसरा कारखाना कामेश्वर प्रसाद और विष्णुदत्त का है। और तीसरा एक छोटा सा कारखाना त्रिवेनी ग्लास फैक्टरी है। इसके अतिरिक्त कुछ दिनों से सुतली के तल्ले के जूते का कारखाना, महालक्ष्मी वीविंग इन्स्टिट्यूट और इलाहाबाद ब्रुश कम्पनी लिमिटेड खुले हैं।

इस जिले में लगभग १०० बाजार होंगे, जिनमें से मुख्य मुख्य के नाम इस प्रकार हैं।

शहर में—खलीफा की मंडी, मुट्ठीगंज की मण्डी, गुड़ की मण्डी, गऊघाट की मण्डी।

गंगापार में—लालगंज, फूलपुर, हंडिया, बरौत, सैदाबाद, बलरामपुर, धोवहा, जघई, जौहिहार, इस्माईलगंज, शिवगढ़।

जमुनापार—सिरसा, जारीवांटी, कोरॉव, करमा, जसरा, भारतगन, घड़ोगर।

दुआवा—भरवारी, सरायग्रखिल, दारानगर, मनौरी, शहजादपुर, कड़ा, अमुआ, शम्साबाद।

आने-जाने का मार्ग—इस जिले में यों तो आने-जाने के लिए सड़कें और नदियाँ हैं किन्तु रेल ही इसके लिये मुख्य साधन है। रेलवे का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है। सन् १८५७ ई० में पहिले पहिल ईस्ट इंडियन रेलवे कलकत्ते से सिर्फ मिर्जापुर तक आई थी। यहाँ केवल लाइन बनाने के लिये सामान ले आने और लेजाने के लिये सरकारी स्टेशन तक रेल बनी थी। इसी बीच बलवा हो जाने से सारा काम बन्द हो गया। बलवा बन्द हो जाने के बाद ३ मार्च सन् १८५६ ई० से प्रयाग से कानपुर तक रेल चलने लगी। परन्तु जमुना के पुल न होने के कारण केवल किले के स्टेशन तक गाड़ी आती जाती थी। टास का पुल बन जाने पर मिर्जापुर से जमुना उस पार तक अप्रैल १८६४ से रेल चलने लगी। उसके बाद १५ अगस्त सन् १८६५ को जमुना का पुल तैयार होकर खुला, तब इधर प्रयाग के बड़े स्टेशन तक रेल आने लगी।

सन् १८६७ से नैनी से जबलपुर लाइन खुली और सन् १६०७ से बम्बई मेल के लिये छिऊँकी लाइन निकाली गई। पहिले जमुना का पुल एकहरा था, पीछे दुसरी लाइन होने के कारण पूरब वाला भाग बनाया गया। कोठियाँ पहिले से चौड़ी था, केवल लोहा रक्खा गया और सन् १६१५ में पुल का वह भाग खोला गया।

सन् १६०५ ई० में इलाहाबाद से फैजाबाद तक दूसरी लाइन निकली, जिसके लिये फाफामऊ का पुल बनाया गया। इसके बनवाने में लगभग ४० लाख रुपया लगा। सन् १६१२ ई० में बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे की छोटी लाइन जिसे अब श्रो० टी० आर० कहते हैं इलाहाबाद से बनारस तक निकली और इसके लिये दारागंज का पुल बनवाया गया। यह पुल एक मील लम्बा है।

प्रसिद्ध व्यापारिक परिवार—पहिले ही बताया जा चुका है कि

आर्थिक अथवा व्यापारिक दृष्टि से प्रयाग का महत्त्व बहुत ऊँचा नहीं है किन्तु इस जिले में कुछ ऐसे प्राचीन और प्रतिष्ठित परिवार हैं जो प्रयाग की आर्थिक प्रतिष्ठा बनाए रखने में सदा प्रयत्नशील रहे हैं। इनमें से कुछ परिवारों का संक्षिप्त वर्णन नमूने के तौर पर इस प्रकार है।

लाला मनोहरदास मनमोहनदास—इस वंश के मूल पुरुष लाला

बन प्रसाद टण्डन एम० एल० सी

कन्हैयालाल थे, जिन्होंने 'गप्पूमल कन्हैयालाल' के नाम से एक कारखाना

पहिले पहिल चौराहे में खोला था। इस वंश में लाला मनोहरदास बड़े ही प्रतिभाशाली व्यक्ति हो गये हैं। अंगरेजी सरकार से इन्हें सिराथू तहसील से कुछ गाँव भी मिले थे। इनके मरने के बाद इस वंश की तीन मुख्य शाखाएँ हो गईं। एक शाखा के वर्तमान प्रसिद्ध व्यक्ति रायबहादुर लाला बिहारी लाल जी हैं। दूसरे के डिप्टी शम्भूनाथ के पुत्र लालजी टण्डन हैं। तीसरी शाखा के सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति और नगर के प्रमुख रईस लाला मनमोहनदास उर्फ बच्चा जी थे, जिन्होंने अपने पिता लाला माधोप्रसाद के बाद कोठी की बड़ी उन्नति की और अपने आचार, विचार, समाज सेवा तथा उदारता के कारण नगर में बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त किया। आप दूध पूत दोनों से ही सम्पन्न थे। आपके पाँच पुत्र और चार पुत्रियाँ हैं जिनमें ज्येष्ठ पुत्र बाबू बेनी प्रसाद टण्डन एम० ए०, एम० एल० सी, बाबू नरोत्तमदास एम० एल० सी, तथा पुरुषोत्तमदास टण्डन अपनी समाज सेवाओं तथा व्यावहारिक कार्य के लिये काफी प्रसिद्ध हैं।

नरोत्तमदास टण्डन एम० एल० सी०

लाला बेनीमाधो बेनी प्रसाद अग्रवाल—इस परिवार के पूर्वज लाला अमरसिंह इटावा के निवासी थे जिनके पाँचवीं पीढ़ी में लाला हरसहाय एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये हैं। इनके तीन पुत्र थे, जिनमें दो पुत्र निःसन्तान मर गये। लाला द्वारिका प्रसाद ज्येष्ठ पुत्र थे जिन्होंने अपना कारबार इलाहाबाद में चलाया। आप इलाहाबाद गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में भूगोल और इतिहास के अध्यापक थे। अवकाश प्राप्त करने के बाद आपने पुस्तक व्यवसाय को

ग्रार ध्यान दिया, जा ग्राज बहुत उन्नति एव सम्पन्न ग्रवस्था में हैं, ग्रापके दो पुत्र लाला रामनारायन लाल तथा रामदयाल जी थे। जिन्होंने ग्रपने पिता के स्मारक स्वरूप 'श्री द्वारिका प्रसाद गर्ल्स स्कूल' का स्थापना की। लाला राम नारायन लाल इस परिवार मे भाग्यवान ग्रौर प्रतिभाशाला व्यक्ति हो गये हैं। ग्रापने १८८४ ई० में 'लाला रामनारायन लाल बुक्सेलर' के नाम से पुस्तका का व्यवसाय ग्रारम्भ किया, जो ग्राज उत्तर प्रदेश म प्रथम पक्ति म गिना जाना है। लाला रामनारायन जी के दा पुत्र—लाला बनीमाधव तथा लाला बेनीप्रसाद जी ग्रग्रवाल एम० ए०, एल० एल० बी० हैं।

लाला बेनीमाधव—का जन्म सन् १८८७ ई० म हुग्रा है। ग्राप शान्त, नम्र स्वभाव तथा दानशील सज्जन हैं। ग्राप ग्रपने विस्तृत पुस्तक व्यवसाय को उत्तमता पूर्वक सचालित कर रहे हैं। प्रयाग क प्रत्येक उपयोगी सस्थाग्रा को ग्राप मुक्त हस्त से ग्रार्थिक सहायता देते हैं। ग्रापके बाबू प्रयागदास तथा बाबू पुरुषोत्तमदास नामक दो पुत्र हैं।

बाबू बेनीप्रसाद ग्रग्रवाल—का जन्म सन् १८९८ ई० में हुग्रा है। ग्राप सार्वजनिक कार्य में बड़ उत्साह ग्रौर प्रेम से सहयोग देते हैं। इलाहाबाद नगरपालिका क प्रमुख सदस्य समझे जाते हैं। इस समय ग्राप नगरपालिका के सीनयर वायस चेयरमैन हैं। ग्रापक श्री नरोत्तमदास, श्री लक्ष्मणदास, श्री मोतीलाल, श्री रामबाबू ग्रादि पाँच पुत्र हैं।

लाला किशोरीलाल बेनीप्रसाद ग्रग्रवाल—सगम के उस पार नई झूँसी म लाला किशोरीलाल की कोठी है जो 'रामदयाल माधोप्रसाद' क नाम से प्रसिद्ध है। इस कोठी की कई शाखाए कलकत्ता, मद्रास ग्रादि विभिन्न स्थानो म चल रही थीं। पच्चीस साल पहल इस परिवार म प्रसिद्ध व्यक्ति किशोरीलाल जी के मरने क बाद से इस वश की दशा उतनी ग्रच्छी नहा रहा। इस वश की एक शाखा नैनी में है जिसम श्री बनप्रसाद ग्रग्रवाल जा भक्त ग्रौर दान शील समझे जाते हैं, ग्रब भी ग्रपन भाग का कारबार सतुलनशील बनाए हुए है। प्रयाग म चीनी के व्यापार का सब श्रेय इसी परिवार को है। इस परिवार न सन् १९१७ ई० में 'त्रिवेणी शुगर वर्क्स' क नाम से एक शक्कर का मिल

योग्य पिता और योग्य पुत्र

लाला हरकुलसिंह
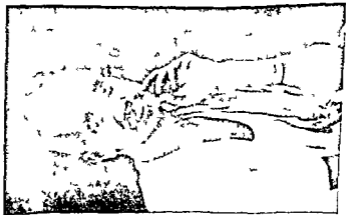
श्री विश्वेश्वरदयाल मित्तल

अतिरिक्त श्री बदलूमल मित्तल, श्री बनारसीदास मित्तल, तथा श्री मुतसद्दीलाल मित्तल तीन और पुत्र हैं जो अपने अपने व्यापार में दत्तचित्त हैं। श्री विश्वेश्वर दयाल जी मित्तल की शिक्षा दीक्षा आरम्भ से ही प्रयाग में सम्पादित हुई है, और यहीं आपने बड़े भारी पैमाने पर व्यापार आरम्भ कर दिया है। तबसे आप यहाँ के रईस व्यापारियों में गिने जाते हैं। आपने इस प्रदेश के बाहर मध्यप्रदेश में धातु की खान (एशियन मिनरल सप्लाइज) का काम भी आरम्भ कर दिया है। इस प्रदेश में लोहे और स्पात की इतनी बड़ी फाउन्डरी और पाइप बनाने वाली कम्पनियाँ कम संख्या में उपलब्ध हैं। इस कम्पनी की सर्वप्रथम ठोस देन यह है कि इस कारखाने की बनी हुई २७ इंच माइल्ड स्टील पाइप, प्रयाग स्थिति 'जमुना पुल' पर 'सलेज यूटोलायेजेशन' म्युनिसिपल बोर्ड प्रयाग के स्कीम के अन्तर्गत, प्रयोग में सफलता पूर्वक लाया गया है जिसकी लम्बाई ३००० फीट है।

चौधरी महादेवप्रसाद—प्रयाग प्रान्त के कायस्थ परिवारों में सबसे अधिक प्रतिष्ठित रईसों में सबसे बड़े रईस, उदार, दानी तथा भगवत भक्त थे। आप कक्षा के रहने वाले रायबहादुर चौधरी रुद्रप्रसाद साहेब के इकलौते पुत्र थे, जिन्होंने सर्व प्रथम प्रयाग पंचकोशी पथ चक्र का पता लगाया था और इस पथ चक्र में स्थित टूटे फूटे मन्दिरों का यथाशक्ति पुनर्निर्माण कराया तथा पुनः मूर्तियाँ स्थापन कराया था। चौधरी महादेव प्रसाद में दो विशेष गुण थे। एक तो स्वभाव से दानी तथा दूसरा को खिलाने में सुख अनुभव करते थे, दूसरे नित्यप्रति स्वयं ब्रह्म मुहूर्त में चार बजे प्रातःकाल से ७ बजे दिन तक भगवती दुर्गा का तान्त्रिक विधि से पूजन करते थे। अँग्रेजी राज्य के मध्यानकाल के रईस व ताल्लुकेदार बने रहकर भी किसी अँग्रेज अधिकारी से नहीं मिले और न उनकी परवाह किया। आप अपने इसी स्वाभिमान के कारण पैतृक रायबहादुरी के उपाधि से वंचित रहे। आपके जायदाद का अधिकांश भाग अर्थात् लगभग डेढ लाख की आमदनी की जमीन्दारी बिहार प्रदेशान्तर्गत जिला मुजफ्फरपुर में थी और शेष पचास हजार का प्रयाग प्रान्त में स्थित था। आपके कोई सन्तान न थी केवल एकमात्र पुत्री भगवती देवी हैं जो बिस्वा के ठाकुर विश्वम्भर नाथ सिंह से विवाहित थीं, जिनसे दो पुत्र चौधरी ठा० विश्वनाथ सिंह तथा चौधरी शिवनाथसिंह हुए। पुत्री और उनके दो औरस पुत्र के होते हुए भी आपने अपनी सारी जायदाद कायस्थ पाठशाला को

चौधरी महादेव प्रसाद साहब
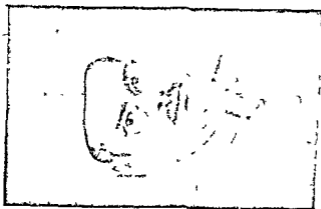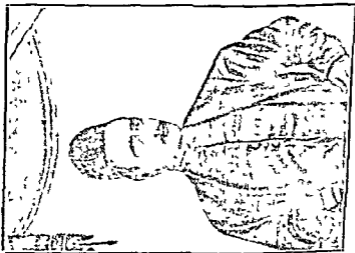
कुँवर नौनिहाल सिंह

दे दी ताकि उससे गरीब विद्यार्थियों को वजीफा दिया जा सके, जो अब तक बराबर दिया जा रहा है। आपके नाती ठा० विश्वनाथ सिंह का स्वर्गवास हो गया है, उनके पुत्र कुँवर नोनिहाल सिंह इस समय पुरानी कोठी एहियापुर के प्रतिनिधि हैं।

बंगाली परिवार—सन् १८५७ के बलवे के बाद उत्तर प्रदेश की राजधानी जब आगरे से उठकर इलाहाबाद आ गई तो बहुत से प्रसिद्ध अधिकारी परिवार वहाँ से इलाहाबाद आ गये। उन बाहर से आनेवाले परिवारों में मुख्य कुछ बंगाली परिवार हैं जो अब यहीं के नागरिक हो गये हैं और जिनके पुरखों ने प्रयाग के राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, कानूनी तथा शिक्षा के विकास और प्रचार में पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। इनमें कुछ मुख्य मुख्य परिवारों का उल्लेख आवश्यक है।

साहित्यिक क्षेत्र में सबसे बड़ा काम स्वर्गीय मेजर वामन दास बसु का है। आप फौज के सार्जन थे। सन् १९०७ में पेन्शन लेकर आपने धर्म, इतिहास और चिकित्सा पर बहुत सी पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित कराईं और कुछ दुर्लभ पुस्तकों को फिर से छपवाया। आपने हिन्दुओं के पवित्र पुस्तकों की एक माला 'दि सेक्रेड बुक्स आफ दी हिन्दूज' के नाम से निकाली थी। आपकी लिखी सबसे अधिक प्रसिद्ध पुस्तक इन्डियन मेडिसनल प्लान्ट्स', 'राइज आफ क्रिश्चियन पावर इन इन्डिया', 'कन्सालीडेशन आफ दी क्रिश्चियन पावर इन इन्डिया' तथा 'रुइन आफ इन्डियन ट्रेड एण्ड इन्डस्ट्रीज' हैं।

आपकी एक विराट योजना 'रिसर्च इन्स्टीट्यूट' नामक संस्था स्थापित करने की थी, उसके लिये आपने अपनी कुछ जमीन तथा निजी पुस्तकों और अन्य पुरातत्व सम्बन्धी बहुमूल्य वस्तुओं का संग्रह प्रदान करने वाले थे किन्तु असामयिक मृत्यु के कारण आपका मनोरथ सिद्ध न हो सका। आपके बड़े भाई श्रीशचन्द्र जी भी प्रकाण्ड पण्डित, तथा विद्याप्रेमी थे। इनका अष्टाध्यायी का भाष्य सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ था। सन् १८९१ ई० में आपने प्राचीन पुस्तकों के प्रकाशनार्थ पाणिनी आफिस' के नाम से एक संस्था खोली थी, जिसके द्वारा बहुत सी अलभ्य प्राचीन पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। श्री रवीन्द्रनाथ बसु सिविल कोर्ट के प्रसिद्ध वकील तथा डा० एस० एन० बसु इन्हीं के पुत्र रत्न हैं।

बंगाली परिवार में हिन्दी साहित्य-सेवियों में गिरिजा बाबू का नाम भ

उल्लेखनीय है जिन्होंने हिन्दी साहित्य विकास के आदिकाल में पर्याप्त सहायता पहुंचाई थी।

कानून के क्षेत्र में सर्वश्री योगेन्द्र नाथ चौधरी, ज्ञानेन्द्रचन्द्र बनर्जी, सतीशचन्द्र बनर्जी—श्री सत्याचरण मुकर्जी, जस्टिस प्रमादाचरन बनर्जी, जस्टिस ललित मोहन बनर्जी, जस्टिस लालगोपाल मुकर्जी, जस्टिस सुरेन्द्रनाथ सेन, हरीमोहन बनर्जी तथा वर्तमान समय में फौजदारी के प्रसिद्ध वकील श्री बटुककृष्ण बनर्जी हैं जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

श्री बटुककृष्ण बनर्जी—आपके पूर्वजों का सम्बन्ध बंगाल प्रदेश के अन्तर्गत चौबीस परगना से है। आपके पिता का नाम आर० सी० बनर्जी, क्लर्क ट्रेजरी था जिनका स्वर्गवास सन् १६०० में हुआ। आपका कुटुम्ब बंगालियों में प्रयाग के प्राचीन परिवारों में समझा जाता है। आपके दो चचा इसी प्रान्त में डिप्टी कलेक्टर थे। इनमें एक चचा श्री के० सी० बनर्जी संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान् समझे जाते थे। बटुक बाबू इस समय लगभग ७० वर्ष के हैं। आपकी शिक्षा दीक्षा कायस्थ पाठशाला प्रयाग में हुई। वकालत पास करने के बाद आपने कुछ दिनों तक वकालत किया, तत्पश्चात् कुछ दिनों के लिये आप मुन्सिफ नियुक्त हुए थे। आप सन् १६०८ से वकालत कर रहे हैं। कुछ दिन तक सरकारी वकील भी थे। इस समय फौजदारी के आप सबसे पुराने वकील हैं। कानूनी क्षेत्र में जनसेवा के भाव की प्रधानता के कारण आप एक अच्छे वकील

श्री बटुक कृष्ण बनर्जी

समझे जाते हैं। बगाली होते हुए भी शुद्ध उर्दू और हिन्दी मे बहस करने के कारण आप और भी जनप्रिय हो गये हैं। आपके नाम से स्थानीय नगरपालिका ने एक सड़क का नाम 'बटुक कृष्ण बनर्जी रोड' रख दिया है।

ग्रे कम्पनी—बा० हरीमोहन और बा० दीना नाथ डे दो मध्यम श्रेणी के सहोदर भाई यहाँ इण्डियन रेलवे आफिस इलाहाबाद मे क्लर्क थे। वे मुलाजिमत की दशा मे भी कलकत्ते से नारियल, ढाका की धोती आदि बगालियो में खपने योग्य वस्तुएँ मँगाते और दोस्तों तथा नातेदारों में बेचते थे। इन्हीं दोनो भाइयो ने मिलकर १८७६ ई० में अंग्रेजी दवाइयो की एक छोटी सी दूकान जानसेनगज मे खोला, जिसका नाम हरीबाबू के भूरे बाल होने के कारण 'ग्रे कम्पनी' रखा गया। १८८१ मे जब हरीबाबू ने नोकरी से अवकाश प्राप्त किया तो इस काम को अपने निजी परिश्रम से खूब बढाया, यहाँ तक कि इस कम्पनी की एक शाखा अलीगढ में तथा दूसरी जौनपुर मे खोली गई। सन् १९१६ ई० मे हरीबाबू का स्वर्गवास हो गया उसके बाद से उनके योग्य पुत्र श्री अमूल्य चन्द्र डे ने इस कम्पनी के काम को खूब सँभाला और बढाया। इन्होने हिवेट रोड, दारागज तथा कटरा में इसकी शाखाएँ खोली और इतना नाम कमाया कि २१ जनवरी सन् १९२३ को सर विलियम मैरिस तत्कालिक छोटे लाट ने इनको अपना केमिस्ट नियुक्त किया। इस कम्पनी मे देश विदेश की बनी हुई दवाइयों का व्यापार होता है। इसके अतिरिक्त क्लोरिन गैस तथा 'डिस्टिल्ड वाटर' भी यहाँ तैयार होता है। आजकल इस कम्पनी की शाखाएँ रायबरेली, प्रतापगढ, फतेहपुर तथा सुल्तानपुर मे स्थापित हो गई हैं।

सप्ततिक्त कषाय के आविष्कारक—डा० अविनाश चन्द्र बनर्जी कालीघाट कलकत्ता के निवासी थे और इनका जन्म सन् १८५४ ई० में हुआ। आप इलाहाबाद सन् १८८० ई० म आये और डाक्टरी करने लगे। शान्ति प्रकृति, सादे जीवन तथा सहानुभूति पूर्ण स्वभाव ने नागरिकों को आपकी ओर आकृष्ट किया और थोड़े ही दिनों में आपकी गणना यहाँ के सबसे ऊँचे डाक्टरों मे होने लगी। यहाँ तक कि आप सर आशुतोष मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महाराजा दरभगा आदि राजाओं के कौटुम्बिक चिकित्सक नियुक्त हुए। आपने गरीबों, निस्सहायो के लिए ३ लाख का एक ट्रस्ट 'लक्ष्मी दामोदर इन्डाऊमेन्ट ट्रस्ट' के नाम से स्थापित किया था। आपने मलेरिया बुखार के लिये अमोघ औषधि

'सतविच बगाय' (Seven Biters) का आविष्कार किया था, जिसका प्रचार आज तक तमाम उत्तरी भारत में है। 'पागलपन की दवा' (Insanity Powder) का भी आविष्कार किया था। आपके पुत्र डा० प्रयागदेव बनर्जी थे जिनका जन्म १८८१ में प्रयाग में ही हुआ था। आपकी शिक्षा दीक्षा इलाहाबाद, लाहौर और विदेश में एडिनबर्ग में हुई थी। आप योग्य पिता के योग्य पुत्र की भाँति प्रयाग मे फलती फूलती डाक्टरी करके अभी हाल ही में स्वर्गारोहण कर गये। आपके दो पुत्र देवीदास तथा शिवदास बनर्जी हैं जो अपने पैतृक कार्य को कर रहे हैं।

श्री कामतानाथ भार्गव—लाला कामता नाथ भार्गव एक प्रसिद्ध रईस व महाजन थे जो तोड़ीराम के वंशज थे। तोड़ीराम अठारहवीं शताब्दी में पंजाब के अन्तर्गत बहरोर से आकर इलाहाबाद में एक कारखाना तोड़ीराम सीताराम के नाम से खोला, जिसकी शाखाएँ बाँदा, कालपी और जबलपुर में खोली गई। इनके पुत्र सीताराम ने कारोबार में पर्याप्त सम्वर्द्धन किया और आगरा, फर्रुखाबाद, फरिहा, मिरजापुर, बनारस, गाजीपुर, शिकोहाबाद, राजापुर, करमा, कानपुर और कलकत्ता में आढ़त की दूकाने खोलीं। इन्होंने ही करमा आदि की जमीन्दारी खरीदी और ग्यारह जिला के सरकारी खजान्चीं भी थे। इनके पुत्र वशाधर थे जिन्होंने मिरजापुर और फर्रुखाबाद को छोड़कर सब जिलों की खजाचीगिरी का परित्याग कर अपना सारा जीवन धर्म और भक्ति में व्यतीत किया। सन् १८६८ ई० में इन्होंने सवा लाख रुपये की लागत की रामायण की प्रतियाँ छपवाई और बिना मूल्य पंडितो और साधुओ म वितरण करा दिया। इनके बाद इनके पुत्र रामकिशोर इस कोठी के मालिक हुए जिन्होंने व्यापार की अपेक्षा जमीन्दारी की ओर अधिक ध्यान दिया। इनके मरने के बाद इनके पुत्र लाला कामतानाथ की नाबालिगी के कारण इलाहाबाद के कारोबार को छोड़कर सब व्यापार बन्द कर दिया गया। इनके दो पुत्र श्री त्रिलोकी नाथ श्री अमरनाथ भार्गव थे जो जवानी म ही असामयिक मृत्यु को प्राप्त हुए। आजकल दोनो स्वर्गीय भाइयो के एक एक पुत्र श्री पृथ्वीनाथ भार्गव तथा श्री सूर्यनाथ भार्गव हैं जो अपनी कोठी की व्यवस्था को तथावत् बनाए रखने में सतत प्रयत्नशील हैं।

आविष्कार तथा खोज सम्बन्धी प्रयाग की देन

हवाई जहाज के आविष्कारक भरद्वाज ऋषि—यह बात सत्य है कि भारतीय ऋषियों के चिन्तन का केन्द्र प्राय. प्रिय का सत् अर्थात् चेतन अंश रहा है। असत् अंश की उन्होंने उपेक्षा ही की है। उनकी दृष्टि में मल-मूत्र मात्र, अस्थिचर्मावयवविशिष्ट पार्थिवता का कोई महत्त्व नहीं है। यह तो साधन है। साध्य वस्तु इससे भिन्न है। हमारे ऋषियों ने इस साध्य वस्तु को आत्मतत्व कहा है और उच्च स्वर से उद्घोषित किया है कि "आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय और मननीय है।" हमें उसी की चिन्ता करनी चाहिये। उसी के लिए अन्य वस्तु प्रिय लगती है।

भारतीय ऋषि परमार्थ प्रिय थे। प्रत्यक्ष से नहीं, वे परोक्ष से प्रेम करते थे। उनका कहना था कि परोक्ष सिद्ध हो गया तो प्रत्यक्ष अपने आप बन जायगा। किन्तु यह सब होते हुये भी ऋषि गण अपने उस राज्य अथवा राजा के लिए जिसके राज्य में उनका आश्रम होता था अथवा जिस राज्य की सरक्षण में वह रहते थे उनके लाभार्थ कुछ न कुछ भौतिक ससार के लिये भी आविष्कार किया करते थे।

भरद्वाज ऋषि ऐसे ही ऋषियों में से थे जो प्रयाग में गगा तट पर त्रेता के उत्तरार्द्ध भाग म रहते थे। उन्होंने वैमानिक कला का आविष्कार किया था। पाठकगण इसको सुनकर आश्चर्य में पड़ गये होंगे। किन्तु आज हमारे समक्ष प्रमाण के लिए एक ऐसा ग्रन्थ रत्न उपस्थित है, जिससे यह स्वीकार करना ही होगा कि भरद्वाज ऋषि ने जिस उच्च कोटि का वैज्ञानिक तत्त्व ढूँढ निकाला था, उसे आज भी पाश्चात्य विज्ञान वेत्ता खोज निकालने में असमर्थ है। यह ग्रन्थ है प्राचीनतम महर्षि भरद्वाज का बनाया हुआ 'यत्र सर्वस्व'।

यह ग्रन्थ बड़ोदा राज्य के पुस्तकागार में हस्तलिखित मौजूद है और जिसको

चर्चा यदा कदा आज के दैनिक पत्रों में भी हो रही है। इसका कुछ भाग नष्ट हो गया है। इस पुस्तक का 'वैमानिक प्रकरण' बोधानन्द की बनाई हुई छप चुकी है। इसके प्रथम विषय में प्राचीन विज्ञान विषय के लगभग पच्चीस ग्रन्थों की एक सूचीपत्र है, जिसमें अगस्त्य ऋषि का बनाया हुआ 'शक्तिसूत्र', ईश्वर ऋषि कृत 'सौदामिनी कला' (बिजली की कला), भरद्वाज ऋषि द्वारा लिखित 'अंशुम तंत्र', 'आकाश तंत्र' तथा 'यन्त्र सर्वस्व', शाकटायन द्वारा लिखित 'वायुतत्व प्रकरण' नारदमुनि द्वारा लिखित 'वैश्वानर तंत्र', धूम प्रकरण (गैस की कला) आदि हैं। पुस्तक के आरम्भ में बोधायन लिखते हैं

निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भारद्वाजो महामुनिः
नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्र सर्वस्व रूपकम्
प्रायच्छत् सर्वलोकानामीप्सितार्थ फलप्रदम्
तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम्
नाना विमान वैचित्र्य रचना क्रम बोधकम्
अष्टाध्यायैर्विभजितं शताधिकरणैर्युतम्
सूत्रैः पंच शतैर्युक्तं व्योमयान प्रधानकम्
वैमानिकाधिकरणं मुक्तं भगवता स्वयम्

अर्थात —भरद्वाज मुनि ने वेद रूपी समुद्र का मन्थन करके यन्त्र सर्वस्व नामका ऐसा मक्खन निकाला है जो मनुष्य मात्र के लिये मनोवांछित फल देने वाला है। उसमें उन्होंने चालीसवें अधिकरण में वैमानिक प्रकरण कहा है, जिस प्रकरण में हवाई जहाज बनाने के क्रम कहे गये हैं। यह आठ अध्याय में विभाजित किया गया है। जिसमें एक सौ अधिकार और पाँच सौ सूत्र हैं। उसमें हवाई जहाज रचना का विषय प्रधान है।

एवं विधाय विधिवन्मंगलाचरणं मुनिः
पूर्वाचार्यांश्च तद्ग्रन्थान् द्वितीय श्लोकतोऽब्रवीत्
विश्वनाथाक्त नामानि तेषां वक्ष्ये यथा क्रमम्।
नारायणः शौनकश्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा।
चाक्रायणिर्धुंण्डि नाथश्चात्र शास्त्र कृतः स्मृताः
विमान चन्द्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथैव च
यन्त्र कल्पो यानबिन्दु खेटयानप्रदीपिका

तथैव व्योमयानार्क प्रकाशश्चेति षट् क्रमात्
नारायणादि मुनिभिः प्रोक्तानि ज्ञान वित्तमैः

अर्थात् :—भरद्वाज ऋषि ने इस प्रकार से विधि पूर्वक मंगला चरण करके दूसरे श्लोक से विमान शास्त्र के पहिले हुये आचार्यों और उनके बनाये हुए पुस्तकों के नाम भी बताये हैं। उनके नाम विश्वनाथ के कथनानुसार इस प्रकार हैं— नारायण, शौनक, गर्ग वाचस्पति, चाक्रायणि और धुण्डिनाथ। ये छः ग्रन्थकार हैं तथा विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानविन्दु, खेटयानप्रदीपिका और व्योमयानार्कप्रकाश—ये छः क्रम से इनके बनाये ग्रन्थ है। विमान क्या है इस पर उनका कथन है कि

पृथि व्यव्स्वन्तरिक्षेषु खगवद् वेगतः स्वयम्
यः समर्थो भवेद गन्तु स विमान इति स्मृतः

अर्थातः—जो पृथ्वी, जल और आकाश में पक्षियों के समान वेग पूर्वक चल सके उनका नाम विमान है।'रहस्यज्ञोऽधिकारी' (भरद्वाज सूत्र अ० १ सू० २)

वैमानिक रहस्यानि यानि प्रोक्तानि शास्त्रतः
द्वात्रिंशदिति तान्येव यानयन्तृत्वकर्मणि
एतेन यानयन्तृत्वे रहस्यज्ञान मन्तरा
सूत्रेऽधिकार ससिद्धिर्नेति सूत्रेण वर्णितम्
विमान रचने व्योमारोहणे चालने तथा
स्तम्भने गमने चित्रगति वेगादि निर्णये ॥
वैमानिक रहस्यार्थ ज्ञान साधनन्तरा
यतोऽधिकार ससिद्धिर्नेति सम्यग्विनिर्णितम्

अर्थात :—विमान के रहस्यों को जानने वाला ही उसके चलाने का अधिकारी है। शास्त्रों में जो बत्तीस वैमानिक रहस्य बतलाये गये हैं; विमान चालकों को उनका भली भांति ज्ञान रखना आवश्यक है और तभी वे सफल चालक कहे जा सकते हैं।

इससे यह प्रमाणित हुआ कि रहस्य जाने बिना मनुष्य हवाई जहाज चलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। क्योंकि विमान बनाना, उसे पृथ्वी से आसमान मे ले जाना, खड़ा करना, आगे बढाना, टेढी-मेढ़ी गति से चलाना या चक्कर

लगाना और विमान के वेग को कम अथवा अधिक करना आदि हवाई जहाज सम्बन्धी रहस्यों का पूर्ण अनुभव हुये बिना हवाई जहाज चलाना असम्भव है।

विमान चलाने के बत्तीस रहस्य कहे गये हैं। उनमें से कुछ चुने हुए रहस्यों का यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जा रहा है, जिनके द्वारा यह ज्ञान होता है कि पाश्चात्य विद्वानों की वैज्ञानिक कला प्राचीन भारत की वैज्ञानिक कला से कितनी पीछे है।

(३) कृतकरहस्यो नाम—विश्वकर्मा छायापुरुष मनुमयादि शास्त्रानुष्ठान द्वारा तत्तच्छक्त्यनुसन्धान पूर्वक तात्कालिक सङ्कल्पानुसारेण विमान रचना क्रम रहस्यम्।

अर्थात्—उन बत्तीस रहस्यों में से यह कृतक नामक तीसरा रहस्य है। विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु, मयदानव आदि विमान शास्त्रकारों के बनाये हुये शास्त्रों का अनुशीलन करने से उन धातु क्रिया आदि में जो सामर्थ्य हैं—उनका अनुभव होने पर इच्छा के अनुसार नवीन विमान रचना करनी चाहिये।

(५) गूढरहस्यो नाम—वायु तत्व प्रकरणोक्तरीत्या वातस्तम्भाष्टम परिधिरेखापथस्य यासा वियासा प्रयासादिवात शक्तिभिः सूर्य किरणान्तर्गत तमश्शक्तिमाकृष्य तत्सयोजन द्वारा विमानाच्छादन रहस्यम्।

अर्थात्—गूढ नामक पाँचवा रहस्य है। वायु तत्व प्रकरण में कही गई रीति के अनुसार वातस्तम्भ की जो आठवीं परिधि रेखा है उस मार्ग की यासा, वियासा, प्रयासा इत्यादि वायु शक्तियों के द्वारा सूर्य किरण में रहनेवाली जो *अन्धकार शक्ति है उसका आकर्षण करके विमान* के साथ उसका सम्बन्ध कराने पर विमान छिप जाता है।

(९) अपरोक्षरहस्यो नाम—शक्तितंत्रोक्त रोहिणी विद्युत् प्रसारणेन विमानानाभि मुखस्थ वस्तूनां प्रत्यक्ष निदर्शन क्रिया रहस्यम्।

अर्थात्—अपरोक्ष नामक नवें रहस्य के अनुसार शक्ति तंत्र में कही गई रोहिणी विद्युत् (एक विशेष प्रकार की बिजली) के फैलाने से विमान के सामने आने वाली वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

(२२) सार्पगमन रहस्योनाम—दण्डवक्रादिसप्त विधमारुतेष्वार्क किरण शक्तीराकृष्य यानमुखस्थवक्रप्रमारण केन्द्र मुखे नियोज्य पश्चात्तदाकृष्य

शक्त्युद्गमन नाले प्रवेशयेत । तत तत्काली चालनाद्विमानस्य सर्पवद् गमन क्रिया रहस्यम् ।

अर्थात् :—सार्पगमन नामक बाईसवें रहस्य के अनुसार दण्ड, वक्र आदि सात प्रकार के वायु और सूर्य किरणों की शक्तियों का आकर्षण करके हवाई जहाज के मुख मे जो तिरछे फेंकने वाला केन्द्र है, उसके मुख मे उन्हें नियुक्त करके पश्चात् उसे खींचकर शक्ति पैदा करने वाले नाल में प्रवेश कराना चाहिये । तब उसके बटन दबाने से विमान की गति साँप के समान टेढी हो जाती है ।

(२५) परशब्दग्राहकरहस्यो नाम—सौदामिनीकलोक्त प्रकारेण विमानस्थ शब्दग्राहकयन्त्र द्वारा परविमानस्थ जन संभाषणादि सर्व शब्दाकर्षण रहस्यम् ।

अर्थात् .—परशब्दग्राहक पचीसवें रहस्य के अनुसार 'सौदामनी कला' मे कही गई रीति से विमान पर जो शब्द ग्राहक यन्त्र है, उसके द्वारा दूसरे विमान पर के लोगों की बातचीत आदि शब्दों का आकर्षण किया जाता है ।

(२६) रूपाकर्षणरहस्यो नाम—विमानस्थ रूपाकर्षण यन्त्र द्वारा परविमानस्थित वस्तु रूपाकर्षण रहस्यम् ।

अर्थात् .—रूपाकर्षण नामक छब्बीसवें रहस्य के अनुसार विमान मे स्थित रूपाकर्षण यन्त्र द्वारा दूसरे विमान मे रहने वाली वस्तुओं का रूप दिखलाई देता है ।

(२८) दिक्प्रदर्शनरहस्यो नाम—विमानमुखकेन्द्र कीली चालनेन दिशाम्पति यन्त्रनालपत्रद्वारा परयानागमन दिक्प्रदर्शन रहस्यम् ।

अर्थात् ·—दिक् प्रदर्शन नामक अट्ठाइसवें रहस्यानुसार विमान के मुख केन्द्र की कीली (बटन) चलाने से 'दिशाम्पति' नामक यन्त्र की नली मे रहने वाली सुई द्वारा दूसरे विमान के आने की दिशा जानी जाती है ।

(३१) स्तब्धकरहस्यो नाम—विमानोत्तर पार्श्वस्थ सन्धि मुखनालादपस्मार धूम सग्राह्य स्तम्भनयन्त्रद्वारा तद्धूम प्रसारणात परविमानस्थ सर्वजनाना स्तब्धीकरण रहस्यम् ।

स्तब्धक नाम के रहस्य के अनुसार विमान की बाँई बगल मे रहनेवाली सन्धिमुख नाम की नली के द्वारा अपस्मार नामक विशेष छेद से निकलने वाले

धूँए को इकट्ठा करके स्तम्भन यंत्र द्वारा दूसरे विमान में रहने वाले सब व्यक्ति स्तब्ध (बेहोश) हो जाते हैं।

(३२) कर्षणरहस्यो नाम—स्वाविमान महारार्थ परविमानरस्मग गमने विमानाभिमुखस्थवैश्वा नरनालान्तर्गत ज्वालनी प्रज्वालन द्वारा सप्ताशी तिलिङ्क प्रमाणाष्ण्य यथाभवेत तथा चक्रद्वय कीलचालनात् शत्रु विमानोपरिवृत्त लाकारेण तच्छक्ति प्रसारण द्वारा शत्रु विमान नाशन क्रिया रहस्यम्।

अर्थात्—कर्षण नामक बत्तीसवां रहस्य है। उसमें अपने विमान का नाश करने के लिए शत्रु विमानों के आने पर विमान के मुख में रहनेवाली वैश्वानर नाम की नली में ज्वालिनी (एक गैस का नाम) को जलाकर सत्तासी लिंक (लिंक डिगरी की भाँति माप का नाम है) गर्मी हो, इतना दोनों चक्रों की कीली (बटन) चलाकर शत्रु विमानों पर गोलाकार से उस शक्ति को फैलाने से शत्रु के विमान नष्ट हो जाते हैं।

इस उपरोक्त वर्णन से भली भाँति प्रत्यक्ष है कि भरद्वाज ऋषि ने हवाई जहाज रचना के विषय में एक पुस्तक लिखी थी। उसमें वर्णित रहस्यों को देखने से पता लगता है कि आधुनिक वैज्ञानिक विमान द्वारा जिन विभिन्न कलाओं का उपयोग करते हैं वे सभी कलाएं इस पुस्तक में वर्णित हैं। नवें रहस्य से ज्ञान होता है कि दूरबीन की तरह कोई दूरदर्शक यंत्र उनके पास था। पच्चीसवें रहस्य से मालूम होता है कि बेतार का रेडियो भी उनके पास था। अट्ठारहवें रहस्य में आधुनिक वैज्ञानिकों की तरह दूर से ही शत्रु विमान का पता लगा लेने की कला भी उनके पास थी। इसी प्रकार बत्तीसवें से गैस, बम आदि द्वारा शत्रु संहार करने के लिए शस्त्रास्त्रों का उपयोग करने की कला, छब्बीसवें से टेलीविजन पर बात करने वाले की आकृति दिखा देनेवाले टेलिवीजन नामक यंत्र, विमानों का ग्रहण करने की कला वर्णित है। विस्तार भय के कारण उन सब कलाओं का वर्णन नहीं किया जा रहा है जिन कलाओं के आविष्कार में आज का वैज्ञानिक संसार संलग्न है।

जब भारत में विमान बना—मैसूर स्थित संस्कृत रिसर्च की अन्य राष्ट्रीय संस्था के संचालक ने वैज्ञानिक शास्त्र पर महर्षि भारद्वाज की जिस खण्ड लिपि का पता लगाया था उसी के आधार पर एक वायुयान का निर्माण कर १८९० ई० के लगभग उसे उड़ाने की परीक्षा की गई थी। बम्बई के मराठी

में प्रकाशित होने वाले एक पत्र में हाल ही में एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें इस बात की चर्चा की गई थी।

उक्त लेख में कहा गया है कि बम्बई कला विद्यालय के एक अध्यापक श्री शिवकर बापू जी तालपडे ने महर्षि भारद्वाज के वैज्ञानिक शास्त्र के आधार पर एक विमान का निर्माण किया और उस पर यात्रा भी की। सर्वप्रथम श्री तालपड़े ने उक्त शास्त्र के आधार पर विमान का एक नमूना प्रस्तुत किया। सन् १८६० में बम्बई कला समाज की ओर से आयोजित प्रदर्शिनी में इसका प्रथम प्रदर्शन भी किया गया। अपनी सफलता से प्रेरित होकर श्री तालपडे ने संस्कृत के पंडित अपनी पत्नी की सहायता से बड़े वायुयान की रचना किया। इसमें इनके एक मित्र श्री मिल्कर ने भी सहायता की। भारद्वाज ने 'मरुतसखा' या 'पुष्पक' के विषय में जिन जिन बातों का उल्लेख किया था उन्हीं के आधार पर इन्होंने अपना वायुयान बनाया। ऋग्वेद के २० वें अध्याय में वायुयान के विषय में सामान्य रूप से चर्चा की गई है। वायुयान का निर्माण जब पूरा हो गया तो उन्होंने उसे स्वर्गीय महादेवगोविन्द रानाडे को दिखाया जिन्होंने यह कहा कि इसके विषय में आगे क्या किया जाय, इसकी सलाह किसी योरोपीय विशेषज्ञ से ले ली जाय। श्री तालपडे को यह बात कुछ जँची नहीं और उन्होंने किसी योरोपीयन से इस विषय में राय लेनी उचित नहीं समझी। साथ ही उन्होंने यह सोचा कि उनका यह आविष्कार शायद उनके पास सुरक्षित न रह सके। 'मरुत सखा' ने अपनी पहली और आखिरी उड़ान शायद १८६५ में चौपाटी में ली थी। इसके देखने वालों में बड़ौदा के शासक सयाजीराव गायकवाड़, बम्बई के एक प्रमुख नागरिक लाल जी नारायण प्रमुख थे। वायुयान १५०० फीट की ऊँचाई तक गया था। बताया जाता है कि इसमें ऐसे भी स्वय चालित पुर्जे थे जिससे कुछ निश्चित ऊँचाई तक जाने के बाद वायुयान नीचे की ओर आ जाता था।

प्रयाग विश्वविद्यालय का कौशाम्बी संग्रहालय

राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी द्वारा प्रयाग विश्वविद्यालय के कौशाम्बी संग्रहालय का ८ अगस्त सन् १९५२ को उद्घाटन उत्तर प्रदेश के इस सबसे पुराने विश्वविद्यालय के इतिहास में एक अत्यन्त महत्व की घटना का द्योतक है। इस संग्रहालय में संग्रहीत सभी ऐतिहासिक वस्तुएँ श्री गोवर्द्धन राय शर्मा के नेतृत्व में प्रयाग विश्वविद्यालय के पुरातात्विक अभियान दल द्वारा जनवरी १९४९ से १९५० के बीच कौशाम्बी में किये गये उत्खनन कार्य के दौरान में मिला था। यद्यपि संग्रहालय अभी अपनी शैशवावस्था में ही है तदपि इसमें संग्रहीत प्रत्येक ऐतिहासिक सामग्री किस स्तर पर मिली है, यह ज्ञात होने के कारण उसकी तिथि भी निश्चित है।

कौशाम्बी के खंडहर उस महान् नगरी का मूक यशोगान करते हैं जो महाभारत युद्ध की समाप्ति के १०० वर्षों के ही भीतर पांडवों की राजधानी बन गई थी और नंदों तथा मौर्यों के साम्राज्य के अन्तर्गत समस्त मध्यप्रदेश के एक होने तक जो उत्तर भारत के जीवन तथा राजनीति में एक प्रमुख स्थान रखती थी। अनेक संस्कृत एवं पाली ग्रंथों के नायक महाराज उदयन, जो भगवान बुद्ध के समसामयिक थे, इसी नगरी के थे। इसके तीन विहार—घोषिताराम, कुक्कुटा-राम तथा पावाराम—की ख्याति दूर दूर तक थी और इन्होंने बुद्ध के जीवन काल में ही कौशाम्बी को बौद्धधर्म का एक गढ़ बना दिया था।

कौशाम्बी अभियान—(१९४९–१९५०) विश्वविद्यालय अभियान दल ने प्रथम दो सत्रों में अशोक स्तम्भ के निकट एक स्थान पर खुदाई की थी। उसमें ३७ फीट मोटा निवास स्तरों का भूखंड मिला जिसे मृत्तिका उद्योग के आधार पर इन चार सांस्कृतिक अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है

(१) कौशाम्बी के भूरे रंग के पात्र वाली संस्कृति, (२) उत्तरी भारत में मिलने वाले चिकने काले पात्रों वाली संस्कृति, (३) चिकने काले पात्रों वाली संस्कृति के बाद की संस्कृति तथा (४) भवन-निर्माण के बाद की संस्कृति।

'भूरे पात्र की संस्कृति' का प्रतिनिधित्व कौशाम्बी में प्राप्त मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े करते हैं जिनका रंग भूरा है तथा जिनकी गर्दन एवं कोरों पर सादी रेखाओं की डिजाइनें हैं। इस संस्कृति का समय ईसा सन् से ७५० वर्ष पूर्व के लगभग है।

ईसा के पूर्व छठीं शताब्दी से प्रथम शताब्दी ई० पू० तक चित्रनईदार मिट्टी के पालिशदार काले बर्तन बनाने का उद्योग कौशाम्बी में अत्यंत विकसित अवस्था में था। ये बर्तन तथा बहुत से शिलालेखों और सिक्कों की सहायता से वैज्ञानिक ढंग से तथा पक्के तौर पर सामग्री का समय निर्धारण उत्तरी भारत में पुरातात्विक उत्खनन् एवं अनुसंधान में एक महत्वपूर्ण योग प्रदान करेगा।

कौशाम्बी में जो उत्खनन् हुआ है उससे २५० ई० पू० से २०० ई० तक ईंटों के द्वारा भवन निर्माण की ६ अवस्थाओं का भी पता चला है। इन छहों कालों में बनी तथा मरम्मत की गई एक सड़क का भी पता चला है। कौशाम्बी के निवासियों के मकानों के आगे गलियाँ थीं, जो एक मुख्य सड़क में जाकर मिलती थीं। इन गलियों के साथ ही खुली नालियाँ भी थीं, जिनसे मकानों का गंदा पानी बाहर निकल जाता था। गंदे पानी को बाहर निकालने के लिये इनके अलावा गोलाकार गढे तथा पानी सुखाने के गढे भी रहते थे।

अपने पहिले दो सत्रों में अभियान-दल ने भारी संख्या में (६०० से अधिक) सिक्के, मन के-सादे और नक्काशीदार, मुहरें, लोहे और ताँबे के औजार तथा हथियार इकट्ठे किये। महाराज कनिष्क की अब तक ज्ञात एक मात्र मुहर द्वितीय अभियान में प्राप्त हुई थी। खुदाई के दौरान में मृण्मूर्त्तियाँ भी बहुत भारी संख्या में मिली हैं, और इनकी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनमें विभिन्न प्रकार की शक पार्थव मृण्मूर्त्तियाँ भी हैं, जो ईसा की प्रथम शताब्दी में उत्तरी भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन पर शक पार्थव प्रभाव के परिणामों तथा भारत और पार्थव केन्द्रों के बीच सांस्कृतिक संपर्क के बारे में बहुमूल्य साक्ष्य प्रदान करती हैं।

कौशाम्बी के इतिहास एवं गौरव के पुनरुद्धार की अनवरत चेष्टा में रत विश्वविद्यालय के अभियान दल ने जब तीसरी बार वहाँ उत्खनन् किया तो उसे सबसे एक मूल्यवान वस्तु हाथ लगी और वह था एक अभिलेख, जो इंगित करता था कि वह जिस स्थान पर मिला है वहीं पर प्राचीन बौद्ध बिहार घोषिता

म्युनिस्पिल अजायबघर तथा संग्रहालय

भारत के प्रथम पक्ति का म्युनिस्पिल अजायबघर तथा सग्रहालय रायबहादुर कामता प्रसाद कक्कड़ के चेयरमैनी के समय में रायबहादुर प० बृजमोहन व्यास द्वारा सन् १६३१ में सस्थापित किया गया था। इस अजायबघर में निम्नाकित विभाग हैं।

(क) **पुरातत्व विषयक सामग्री**—इस विभाग में शिल्पकला के सुन्दर नमूने, मिट्टी के बर्तन और खिलौने, मुहरें और शिला लेखों का अपूर्व सग्रह तथा शिल्पकला के भारुत कटहरा के ५४ अपूर्व इकाइयाँ हैं जो सारे संसार में पाए हुए इस प्रकार के कटहरों में द्वितीय श्रेणी का समझा जाता है। भूमरा से प्राप्त वैभवशाली गुप्तकाल के चैत्य, झरोखे, खजुराहो से प्राप्त नमूने की वस्तुएँ यहाँ पर रखे हुए हैं। इसके अतिरिक्त मथुरा, कौशाम्बी, गुरजी, रीवाँ, सारनाथ, गान्धार और अन्य कई प्राचीन स्थानों की प्राचीन २ प्राप्त वस्तुएँ यहाँ रखी हुई हैं। कुशनकाल का प्रथम शिलालेखयुक्त बोधिसत्व का शिर हीन मूर्ति जो कौशाम्बी से प्राप्त हुआ है यहाँ रखा हुआ है।

(ख) कौशाम्बी में उत्खनन द्वारा प्राप्त लगभग २०००० मिट्टी के बर्तन और खिलौने विभिन्न शैली तथा विभिन्न सामाजिक संस्कृति से सम्बन्धित यहाँ पर सग्रहीत हैं। इस प्रकार की वस्तुओं का सग्रह भी है जो मथुरा तथा राजघाट (काशी) से प्राप्त हुई हैं।

(ग) २०० ई० पू० से लेकर सन् १००० ई० तक के विभिन्न समय के मूल्यवान शिलालेख और मुहरें भी यहाँ रखे हुए हैं। इस सग्रह के मुहरों से कौशाम्बी के १२ राजाओं के नाम प्राप्त हो सके हैं जो अभी तक इतिहासकारों को दुर्लभ थे। इसके अतिरिक्त लगभग १५००० मुद्राएँ गोदाम में रखी हुई हैं जो अभी तक साफ नहीं की जा सकी हैं। लोगों को आशा है कि इन मुद्राओं से इतिहास पर एक नया प्रकाश पड़ेगा।

(घ) इस अजायबघर में १८००० पत्थर मनकों (माला के दाना) का भी

संग्रह है जो उत्तरी भारत में पाये गये हैं। ये सब मनकों के काटने की कला के आदर्श स्वरूप हैं। कहा जाता है भारत के किसी अजायबघर में इस ढंग और शैली के दाने प्राप्त नहीं है। कौशाम्बी से प्राप्त पशु के रूप के दानों का संग्रह इस अजायबघर की विशेषताओं में से है।

चित्रकारी—इस विभाग में प्राचीन और अर्वाचीन दो प्रकार के चित्र हैं। प्राचीन चित्रकारी विभाग में लगभग २००० चित्र ईरानी, मुगल और राजस्थानी शैली के हैं। इनमें से बहुत से चित्र लन्दन तथा अन्य विदेशी नुमाइशों में दिखाये गये थे। कुछ दिन पहिले लन्दन के प्रदर्शिनी में दिखाने के लिए भारत से चित्र संग्रह के लिये 'रायल एकेडेमी लन्दन' के प्रतिनिधि जब दिल्ली आये थे तो उन्होंने प्रयाग के अजायबघर के चित्र संग्रह पर अपनी राय इस प्रकार प्रकट की थी कि "प्रयाग का अजायबघर राजस्थानी चित्र संग्रह के लिये सर्वश्रेष्ठ है।"

अर्वाचीन चित्र संग्रह विभाग में स्वर्गीय अवनीन्द्र नाथ टैगोर, शैलेन्द्रराय, मुकुल दे, ए० के० हलधर, एल० एम० सेन, के० एन० मजूमदार, जैमिनीराय आदि प्रसिद्ध चित्रकारों द्वारा बनाये हुये चित्र मौजूद हैं। श्री आर० के० हलधर ने तो ३००००) की लागत की चित्रकारी इस संग्रहालय को दान दिया है। इसके अतिरिक्त निकोलस रायरिक तथा जर्मन बौद्ध भिक्षु अनागरिक द्वारा ३ लाख की लागत की दान की हुई चित्रकारी भी विशेष उल्लेखनीय है।

हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ—प्रसिद्ध राजनैतिक तथा साहित्य सेवियों द्वारा लिखित पत्रों तथा पुस्तकों के अतिरिक्त हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी के लगभग ६०० हस्तलिखित पुस्तकें इस विभाग में मौजूद हैं।

राष्ट्रीय विभाग—इस विभाग में पं० जवाहरलाल नेहरू की उन समर्पित वस्तुओं का संग्रह है जो उन्हें भारतीय दौरे में विभिन्न स्थानों पर वहाँ के नागरिकों, नगरपालिकाओं, संस्थाओं तथा व्यक्ति विशेष द्वारा भेंट के रूप में प्राप्त हुए थे, जो तथाकथित स्थानों के पैतृक सम्पत्ति, देशी कलात्मक परम्पराओं तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभिलाषाओं के उत्तम नमूने हैं।

इन उपरोक्त विभागों के उल्लिखित वस्तुओं के अतिरिक्त इस अजायबघर में अन्य बहुत सी छुटपुट सामग्रियाँ हैं जो इतिहास और राष्ट्र के लिये बहुत ही लाभदायक हैं, और जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि समय समय पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्ध व्यक्तियों ने इसका मुआइना

किया है और उनके द्वारा इस अजायबघर को अखिल भारतीय स्तर पर होने का प्रमाणपत्र प्रदान हुआ है।

इस अजायबघर में प्रकाशन विभाग भी है। अभी हाल ही में अपने संग्रह के दो महत्वपूर्ण मोनोग्राम प्रकाशित किये हैं। इस संग्रहालय का वार्षिक व्यय लगभग २० हजार है जिसमें १२०००) उत्तर प्रदेशीय सरकार देती है और शेष की जिम्मेदारी स्थानीय नगरपालिका पर है। वर्तमान समय में संग्रहालय की कुल संग्रहीत वस्तुएँ नगरपालिका के कार्यालय के एक खण्ड में रखी हुई हैं, जो काफी नहीं हैं।

उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा प्रदान किये हुए जमीन पर अजायबघर की इमारत बनाने के लिए अब तक १६२७१८ रुपया चन्दा एकत्रित हुआ है, जिसका उद्घाटन भी पं० जवाहरलाल जी नेहरू द्वारा सन् १९४७ में हो चुका है। पं० जवाहरलाल नेहरू के अनुसार इसकी इमारत के लिए अठारह लाख रुपया की आवश्यकता है। इस प्रस्तावित इमारत का एक खण्ड दो लाख अठावन हजार रुपये की लागत का बन भी चुका है, शेष बनना शेष है। यह नई इमारत स्थानीय कम्पनी बाग में बनाई जा रही है।

———

डा० कैलाशनाथ काटजू द्वारा खोज

१६ अगस्त सन् १९४५ ई० के 'लीडर' तथा 'अमृत बाजार पत्रिका' के साहित्य विभाग में देश के प्रसिद्ध नेता डाक्टर कैलाश नाथ काटजू ने जनता का ध्यान 'श्री रामकालीन भरद्वाज आश्रम' की ओर आकर्षित करके बाँदा प्रान्तार्गत राजापुर के निकट अलनारा नाल के समीप उक्त आश्रम की स्थिति प्रतिपादित की थी।

डा० काटजू का तर्क भारतीय नदियों के परिवर्तन, रामायण वर्णित संगम से चित्रकूट के व्यवधान तथा भौगोलिक परिस्थितियों आदि पर अवलम्बित है, और ये सभी बातें इतनी ठोस एवं तर्कपूर्ण हैं कि केवल परम्परागत रूढ़ियों के आधार पर ही काटजू महोदय के निष्कर्ष का अन्यथा सिद्ध नहीं किया जा सकता।

विरोध पक्ष में जितने भी लेख प्रकाशित हुए हैं, उनमें प्रायः क्रोश शब्द की व्याख्या पर ही अधिक बल दिया गया है। परन्तु प्रयाग विश्वविद्यालय के आचार्य श्री नगेन्द्रनाथ घोष, तथा पं० मोहनलाल वैद्य ने डाक्टर पी० के० आचार्य और कुँवर कौशलेश प्रसाद नारायण सिंह की असम्भव व्याख्याओं का निराकरण करके तथा शास्त्रीय परिभाषाओं से अनुमोदित प्रमाणों द्वारा सयुक्ति सिद्ध कर दिया है कि एक क्रोश वर्तमान २ मील, २ फर्लांग तथा ४० गज के बराबर होता है। इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण में संगम से चित्रकूट की १० क्रोश की दूरी वर्तमान २२ मील ५ फर्लांङ्ग १८० गज अर्थात् लगभग २३ मील के हुई और अलनारा-ताल से चित्रकूट की दूरी भी यही है। पं० मोहनलाल वैद्य का श्रीराम के संगम से चित्रकूट तक के मार्ग का जो युक्तिपूर्ण प्रकार है वह निस्सन्देह विचारणीय है।

श्री चन्द्रप्रकाश मित्तल (सिविल इञ्जीनियर) ने गङ्गा के प्रवाह परिवर्त्तन तथा संगम के त्रिवेणी कहलाने का बड़ा ही आकर्षक तथा प्रामाणिक तर्क दिया है। पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय ने भी यमुनोत्पत्ति का विशद वर्णन करके संगम की अस्थिरता का सुन्दर प्रमाण दिया है, और वेणीदान के महत्व का ऐतिहासिक

विश्लेषण करके यह स्पष्टतया सिद्ध कर दिया है कि वर्तमान प्रयाग का माहात्म्य अति प्राचीन नहीं है, परन्तु समय पर ही उसम गौरव-गाथाएँ जुड़ती गई हैं।

मित्तल महोदय ने श्रीराम के पूर्व का गंगा-यमुना का संगम 'इन्डला' में सिद्ध करके संगम के स्थानान्तरित होने का प्रमाण दिया है और घोष महोदय ने 'विनयपिटक' के आधार पर सहजाती (भीटा), में तथा श्री अयोध्या प्रसाद पाण्डेय ने महाभारत के आधार पर कान्यकुब्ज (कन्नौज) और एक अन्य प्रमाण के आधार पर 'वियावल' (कौशाम्बी) में संगम होने के प्रमाण देकर मित्तल महोदय के मत की पुष्टि की है। श्री अयोध्या प्रसाद ने संगम, प्रयाग, भरद्वाज आश्रम तथा अक्षयवट की ऐतिहासिक विवेचना करके यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है कि समय व परिवर्तन के साथ ही साथ इन सबके महत्त्व तथा गौरव में भी वृद्धि हुई। अलवारा के निकटवर्ती कूप में गंगा की रेणुका तथा सदा हरे भरे रहनेवाले वृक्ष की खोज करके उन्होंने राजापुर में संगम होने का प्रमाण दिया है। श्री दिनेशबिहारी सिंह ने पञ्चकोशी में अनेक तीर्थों का ऐतिहासिक विवेचन करके यह पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि तीर्थराज का यह विपुल वैभव ही प्रयाग को अति प्राचीन सिद्ध करने में बाधक होता है। ठाकुर साहब ने श्रीराम के वनगमन के मार्ग का सम्यक् वर्णन करके श्री परमानन्द चतुर्वेदी की समस्त शंकाओं का समुचित समाधान कर दिया है।

विरोध पक्ष में जितने भी लेख प्रकाशित हुए हैं उनमें कोश शब्द की मनमानी व्याख्या के अतिरिक्त किसी प्रामाणिक तथ्य तथा मान्य प्रमाण का विवेचन नहीं है। उनमें प्रायः परम्परागत रूढ़ियों का ही विशेष स्थान दिया गया है, फिर भी विद्वान् लेखक स्वयं किसी सन्तोषप्रद निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते हैं।

अस्तु, डा० काटजू महोदय के पक्ष का समर्थन करने वाले लेखकों ने इतिहास, पुराण, बौद्धग्रन्थ और अनेक प्रत्यक्ष प्रमाणों तथा किंवदन्तियों आदि के आधार पर संगम की अस्थिरता तथा श्री रामकालीन संगम के राजापुर निकटवर्ती अलवारा ताल के समीप होने की सम्भावना का रूप पूर्ण से समर्थन करके डा० काटजू के मत का मण्डन किया है। परन्तु हम यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि हमारा यह मन्तव्य कदापि नहीं है कि वर्तमान प्रयाग तथा भरद्वाज आश्रम की महत्ता पर किसी प्रकार आक्षेप किया जाय। हमारा ध्येय तो श्री रामकालीन भरद्वाज आश्रम की वास्तविक स्थिति का अनुसंधान मात्र है और हम इसी

भावना से प्रेरित होकर इस खोज की उपस्थिति करके विद्वानों तथा अन्वेषकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं।

पाठकों के जानकारी के लिए डा० कैलाशनाथ काटजू का लेख ज्यों का त्यों उद्धृत किया जा रहा है। लेख इस प्रकार है।

वाल्मीकि काल का भरद्वाज-आश्रम—भारतीय इतिहास में भारत की नदियों ने कभी-कभी महत्वपूर्ण और कभी तो निश्चित हिस्सा बँटाया है। कभी कभी इन नदियों ने ऐतिहासिक घटनाओं की रूपरेखा भी निश्चित की है। यह सभी लोग जानते हैं कि आर्यों ने अपनी बस्तियाँ नदियों के किनारे ही बसाई थीं। देश के अन्य स्थान या तो जंगली थे या पर्वतमय। नदियों की घाटियाँ उपजाऊ भी थीं और इनमें आबादियाँ भी थीं। पुराने जमाने में राजधानी बनाने के लिए नगर तथा छिलेबन्दियों के लिए स्थान नदी के किनारे ही उपयुक्त समझे जाते थे। पुराने समय की घटनाओं का अध्ययन करते वक्त स्मरण है कि हम बड़े तथा कभी आश्चर्यजनक परिवर्तनों को भूल जायँ जो कि नदियों के बहाव तथा उनके पाट के कारण हो जाते हैं। हम लोग यह निश्चित रूप से समझ लेते हैं कि गंगा जी वास्तव में उसी स्थान से बह रही हैं जहाँ से पहले बहती थीं। वास्तव में गंगा जो जिस प्रकार परिवर्तनमय तथा अनिश्चित रही हैं उस प्रकार अन्य कोई भी नदी नहीं रही है। उदाहरण के लिए हर्षवर्धन की राजधानी कन्नौज है जो कि गंगा के किनारे बसाई गई थी। बाद में गंगा जी ने अपने प्रवाह में परिवर्तन किया और इसका परिणाम यह हुआ कि गंगाजी का तट इस नगर से दो मील की दूरी पर हो गया। यही हाल पंजाब की महान् नदियों का है। यही कारण है कि आजकल के इतिहासज्ञ उस हमले के वर्णन का पता अभी तक नहीं पा सके हैं जो सिकन्दर ने, झेलम नदी के तट पर, पौरुष (पोरस) पर किया था और जिसका विस्तृत वर्णन ग्रीक इतिहासकारों ने किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में केवल पर्वतों को छोड़कर कोई वस्तु निश्चित नहीं है।

मुझे उपर्युक्त पंक्तियाँ इसलिए लिखनी पड़ रही हैं कि वाल्मीकि रामायण और उसमें वर्णित भरद्वाज आश्रम की स्थिति के प्रसंग में मेरे मस्तिष्क ने इन विचारों को जन्म दिया है। आज की हिन्दू जनता वर्तमान प्रयाग को पुरातन और अपरिवर्तनीय समझती है। भरद्वाज आश्रम जहाँ स्थित था उस आश्रम का स्थान वह बतलाया जाता है जो पण्डित मोतीलाल नेहरू के आनन्द भवन के

सामने है। भरद्वाज मन्दिर को प्रत्येक हिन्दू बड़ी श्रद्धा से देखता है और प्रयाग में आनेवाला प्रत्येक यात्री इसको धार्मिक स्थान समझकर दर्शन के लिए जाता है। आदरणीय पण्डित मदनमोहन मालवीय ने एक विशाल मन्दिर बनाने की योजना तैयार की थी जो महान् ऋषि के स्मारक स्वरूप होगा। मैं तो कल्पना करता हूँ कि ऋषि हमारी आत्माओं में हमेशा रहते हैं जो दो धार्मिक नदियों के संगम में हैं और जिससे मालूम पड़ता है कि संगम स्थान स्थान पर बदलता रहा है। मैं ऐसी बात इसलिए कह रहा हूँ कि रामायण के पश्चात् मनुष्य इस निश्चय पर पहुँचता है कि पुराने जमाने में, जब कि वाल्मीकि ने इस महान् ग्रन्थ की रचना की थी तब, संगम वर्तमान प्रयाग से बहुत दूर था। कवि के विस्तृत वर्णन से मालूम पड़ता है कि संगम उनकी जानकारी की वस्तु थी। यह ऐसा महत्वपूर्ण स्थान था जिसके सम्बन्ध में शंका नहीं की जा सकती। रामायण के इस वर्णन के आधार पर मैंने कभी वाद विवाद होते नहीं देखा है इसलिए निम्नलिखित दलीलें पाठकों के लिए रोचक हो सकती हैं—

ऐसा प्रसिद्ध है कि वाल्मीकि रामायण में, विशेषकर प्रारम्भिक अध्याय में कवि, रामचन्द्र, उनके भाई तथा उनकी स्त्री को देवता की तरह नहीं मानता है बल्कि उनका वर्णन साधारण व्यक्तियों की तरह करता है। ये सबके प्रेम करने के योग्य हैं, गुणी हैं, आदर्श पुत्र, भाई और स्त्री के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। जब रामचन्द्र जी वन जाने का निश्चय करते हैं तब वे घोड़े से जुते हुये रथ पर चलते हैं। वे दो दिन तक बराबर यात्रा करते हैं और फिर दूसरे दिन गंगाजी के तट पर पहुँच जाते हैं। इस स्थान पर वाल्मीकि ने जो गंगा का वर्णन और गुणानुवाद किया है वह बहुत ही आकर्षक और प्रशंसनीय है। कवि हमें वह निश्चित स्थान नहीं बतलाता जहाँ रामचन्द्र रात में ठहरे थे। केवल इतना मालूम होता है कि वे शृंगवरपुर के मार्ग में थे। हम यह भी नहीं मालूम होता है कि यह स्थान गंगा के दाहिनी ओर था या बाईं ओर।

रामायण के अनुसार इस स्थान पर राजा गुह का राज्य था। गुह ने आदरणीय मेहमानों का बड़े प्रेम और प्यार से स्वागत किया। उन्होंने रामचन्द्र के प्रति अपनी राजभक्ति प्रकट की और वे अपना सम्पूर्ण राज्य तथा वैभव उन्हें देने के लिए तत्पर हो उठे। रामचन्द्रजी ने इस वैभव को अस्वीकार करते हुए कहा कि वनवास के समय तक के लिए हमने सभी सांसारिक वस्तुओं का त्याग कर दिया

हैं। इसके पश्चात् गङ्गा-तट को, जिसे हम अयोध्या की तरफ वाली गंगा भी कह सकते हैं, उन्होंने नाव द्वारा अगले दिन प्रातःकाल पार किया। यहाँ फिर रामचन्द्र, लक्ष्मण और जानकी नौका से उतरने के बाद पैदल चले। कवि इस स्थान का वर्णन करते हुये कहता है कि यह स्थान बियाबान जंगल था। आबादी का नाम न था। कवि किसी आबादी का वर्णन नहीं करता। हमें उस दिशा का भी ज्ञान नहीं होता जिस ओर ये यात्री जा रहे थे। केवल यह मालूम पड़ता है कि उन्होंने नदी को दक्षिण की ओर पार किया। एक दिन की पूरी यात्रा के बाद रात हुई और यह दल एक विशाल वृक्ष के नीचे ठहरगया।

दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने फिर अपनी यात्रा प्रारम्भ कर दी। शाम होते होते उन्हें धुआँ दिखलाई पड़ा। रामचन्द्र ने लक्ष्मण को धुआँ दिखलाते हुए कहा कि अब संगम के समीप पहुँच रहे हैं। यह धुआँ भी भरद्वाज आश्रम के आसपास का ही मालूम पड़ता है। ऋषि ने दोनों भाइयों का तथा जानकी जी का प्रेमपूर्वक स्वागत किया। सुविधा की सभी सामग्री उपस्थित की और कहा कि हमें मालूम है कि रामचन्द्रजी के साथ क्या हुआ। उन्होंने यह भी प्रस्ताव किया कि रामचन्द्रजी उनके साथ ही उनके आश्रम में रहें। रामचन्द्रजी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार किया, क्योंकि उन्हें भय था कि अयोध्या समीप होने के कारण वहाँ के निवासी बार बार अपनी यात्रा से उन्हें तंग करते रहेंगे। वे कुछ और दूर जाना चाहते थे, इसलिए भरद्वाज ऋषि ने उत्तर दिया कि रामचन्द्र के निवास के लिए चित्रकूट एक आदर्श स्थान होगा। उन्होंने यह भी बतलाया कि संगम से चित्रकूट १० क्रोश (कोस) था। जहाँ तक मैंने पूछताछ की है, यह सभी जानते हैं कि संस्कृत क्रोश लम्बाई और फासले में आजकल के दो मील के बराबर है। इस प्रकार वाल्मीकि द्वारा चित्रकूट का फासला संगम से २० मील बतलाया जाता है।

वर्णन की समाप्ति के लिए इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि दूसरे दिन प्रातःकाल रामचन्द्रजी अपने दल के साथ रवाना हो गये। ऋषि भारद्वाज ने कुछ दूर तक रास्ता बताने के लिए इनका साथ दिया फिर यमुना की ओर पश्चिम जाने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि कुछ दूर जाने के बाद पुराना टूटा फूटा घाट मिलेगा जहाँ यमुना पार करना होगा। यमुना के पार उन्हें एक पुराना बरगद का वृक्ष मिलेगा और फिर उन्हें उस रास्ते की ओर बढ़ना चाहिए

जो सीधे चित्रकूट को जाता है। रामचन्द्रजी ने इस आदेश का पालन अक्षरश: किया। उन्हें टूटा घाट भी मिला और पुराना बरगद का वृक्ष भी। वे उस देश में यात्रा करने लगे जहाँ विभिन्न प्रकार के सुवासित फल फूल अपनी महक दे रहे थे और जहाँ तरह तरह के पेड़ खूब फूले फले थे। वे एक नदी पर शाम को पहुँचे जहाँ से चित्रकूट की ऊँचाई दिखलाई पड़ रही थी। वहाँ वे रुके। दूसरे दिन उसे पार किया और चित्रकूट पहुँच गये। उन्होंने एक पुराने बने हुए झोंपड़े के स्थान को पसन्द किया और वहीं अयोध्या छोड़ने के पश्चात् प्रथम बार भोजन किया।

मैंने उस वर्णन की रूपरेखा दी है जब शृंगवेरपुर के समीप रामचन्द्र ने गंगा पार किया और फिर चित्रकूट तक पहुँचने में चार दिन लगे। अब प्रश्न यह है कि रामायण के वर्णन के अनुसार गंगा और यमुना का संगम कहाँ था? मैं एक बात फौरन ही बतला देना चाहता हूँ कि चित्रकूट अब भी वही पुराना चित्रकूट है। यह बाँदा जिले में एक स्थान है। रामायण का चित्रकूट यही है। रामायण में वर्णित स्थानों में कोई भी चित्रकूट के समान पर्वत प्रयाग के आसपास नहीं है। इसलिए चित्रकूट का स्थान तो निश्चित ही मानना पड़ेगा। अब यदि हम इस बात को मान लेते हैं और यह भी मान लेते हैं कि संगम से चित्रकूट २० मील पर है जिसका वर्णन रामायण में है तब फिर इस बात की कोई शंका नहीं हो सकती कि वर्त्तमान संगम वाल्मीकि के काल का संगम नहीं है। इसको दूसरे प्रकार से भी रख सकते हैं। वर्तमान प्रयाग चित्रकूट से उतनी दूर है जितना कौआ उड़ता है (७० मील)। इसलिए रामायण में दिया हुआ २० मील वर्तमान प्रयाग पर नहीं लागू हो सकता। मुझे कोई ऐसा कारण नहीं जान पड़ता कि कवि फासले को कम लिख गया हो जब कि पूरा विवरण वास्तविक है। इसकी वास्तविकता तब और सिद्ध हो जाती है जब हमें मालूम होता है कि तीनों यात्रियों का दल डेढ़ दिन में यात्रा पूरी कर सका। दल देवताओं की तरह नहीं चल रहा था बल्कि एक नवयुवक दल के रूप में।

इसके अतिरिक्त रामायण के वर्णन में और भी बहुत सी बातें हैं जो ध्यान देने के योग्य हैं। प्रारम्भ इसी से किया जा सकता है कि इसमें अन्य किसी नदी का वर्णन नहीं है। आजकल हम संगम को त्रिवेणी कहते हैं जहाँ तीन प्रकार का जल मिलता है। रामायण में संगम का वर्णन साफ गंगा यमुना के संगम से है।

यदि यह त्रिवेणी होता तो कवि इसका वर्णन करना न भूल जाता। इस पर और अधिक महत्व दिया जाता, क्योंकि इसमें इस स्थान की और भी गौरव-वृद्धि होती। हो सकता है कि वाल्मीकि ने जिस सगम का वर्णन किया है वहाँ दो ही नदियाँ मिलती रही हों। तीसरी न मिलती रही हो। तीसरी नदी वर्तमान प्रयाग के आसपास ही बहती रही होगी। जब गंगा यमना का प्रवाह वहाँ बदला हो जहाँ तीसरी बहती रही हो तभी इसका नाम त्रिवेणी पड़ा हो और फिर इसी नाम से यह स्थान सारे हिन्दुस्तान में प्रख्यात हो गया हो। इसके अलावा मैं कोई अन्य कारण नहीं समझता कि कवि ने त्रिवेणी की चर्चा फिर अपने रामायण में क्यों नहीं की।

इसके अतिरिक्त वाल्मीकिजी, संगम के समीप, किसी बस्ती का उल्लेख नहीं करते। इस स्थान का वर्णन है कि यह एक जंगल था जहाँ साधु-सन्तों की झोपड़ियों के अतिरिक्त कुछ नहीं था। यह ठीक भी है। कोई भी मनुष्य यह आशा न करेगा कि भारद्वाज मुनि अपना आश्रम किसी बस्ती के पास बनावेंगे। वह इसलिए और भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि पुरानी प्रथा के अनुसार प्रयाग में अक्षयवट का मन्दिर था। यह मन्दिर प्रयाग नगर के बीच में था। ह्यूनसांग जब ६४० ई० में प्रयाग आया था तब उसने इस शहर का वर्णन किया है। यह संगम से दो मील की दूरी पर पश्चिम में है और एक रेतीले मैदान से विभाजित है। नगर के बीच एक मन्दिर स्थित है जिसकी आराधना मनुष्य निर्वाण प्राप्त करने के लिए करता है। यह न्यायसगत युक्ति है कि अगर रामायण के सगम के पास यह मन्दिर होता तो रामचन्द्रजी अपनी यात्रा के पूर्व इस मन्दिर में जाकर दर्शन अवश्य करते। जानकीजी भी वहाँ जाकर वनवास का समय सकुशल बीत जाने की मनौती अवश्य करतीं। यदि रामचन्द्रजी के मस्तिष्क में यह विचार न उत्पन्न होता तो भारद्वाज मुनि अवश्य सुझाते, क्योंकि उन्होंने जानकी जी को यह सलाह दी थी कि जब वे यमुना पार करें तो बरगद के वृक्ष की परिक्रमा अवश्य करें। इसलिए इससे मैं यह नतीजा निकालता हूँ कि उस सगम के पास, जहाँ रामचन्द्रजी गये थ, कोई भी मन्दिर तथा अमर अक्षयवट न था। मन्दिर और वृक्ष का अस्तित्व तभी आया जब सगम वर्तमान प्रयाग में हो गया। इनका अस्तित्व पहले भी सम्भव है पर इनका महत्व तभी बढ़ा जब सगम वर्तमान प्रयाग में हुआ।

इसलिए अन्तिम निर्णय में हम यह पाते हैं कि सगम के समीप न तो बस्ती था और न कोई अक्षयवट या मन्दिर था। अक्षयवट की चर्चा हमें चार शताब्दियों के बाद मालूम होती है जब मुसलमान चीनी यात्री इब्नबतूता ने वर्णन किया है। सगम तट के समीप यह वृक्ष है जो गहरे जल में है और जिसकी शाखाओं पर चढकर मनुष्य निर्वाण प्राप्त करने के लिए कूद कर जान देता है। इन चार शताब्दियों में या तो नदियों ने अपनी धाराओं को बदल दिया है और प्रयाग को बहा दिया है जिसके कारण वृक्ष अकेला ऊँचा और नीरस पड़ा हुआ है और या इब्नबतूता का वर्णित वृक्ष कोई दूसरा वृक्ष था। यह शका की बात है और यह शका हमें यहाँ नहीं रोक सकती।

उपर्युक्त पक्तियाँ रामायण के वर्णन की सचाई की पुष्टि करती हैं। सगम कहीं और था, तो कहाँ था? वर्तमान समय में इलाहाबाद से यमुना किनारे तक एक पक्की सड़क ४६ मील लम्बी है। इसके दूसरी ओर बाँदा जिले का प्रख्यात गाँव राजापुर स्थित है जो गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि भी है। मैंने राजापुर की यात्रा कई बार की है। राजापुर से चार कोस की दूरी पर लालापुर नामक स्थान है जिसका सम्बन्ध वाल्मीकि से है। राजापुर से चित्रकूट को एक मार्ग भी है जो करवी होकर जाता है और जिसकी लम्बाई २२ मील है। मैं तो समझता हूँ कि रामायण का सगम या तो राजापुर था या लालापुर में। यह परिवर्तन आश्चर्यजनक प्रतीत होगा पर कौन जानता है कि रामायण कब लिखी गई थी। हिन्दूमत के अनुसार हजारों वर्ष पहले, पश्चिमी विद्वानों के मतानुसार एक हजार वर्ष ईसा से पूर्व। हजारों वर्षों के काल में काफी अन्तर पड़ना निश्चित ही है।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि रामचन्द्रजी ने अयोध्या से आते समय किस स्थान पर गगा को पार किया, इसका वर्णन रामायण में कहीं नहीं है। केवल यह चर्चा है कि गगा पार कर वे शृ गवेरपुर की ओर जा रहे थे। पुरानी प्रथा के अनुसार वर्तमान सिगरौल ही पुराना शृ गवेरपुर है जो प्रयाग से २२ मील पर, प्रयाग के उत्तरी पश्चिमी ओर है। प्रथम तो रामायण के अनुसार यह कहना ही सन्देहास्पद है कि रामचन्द्रजी शृ गवेरपुर गये। रामायण का शृगवेरपुर नदी की दूसरी ओर है। यह इसलिये ओर होना चाहिये, क्योंकि रामायण में यह चर्चा नहीं है कि रामचन्द्रजी नदी पार करने के पश्चात् शृ गवेरपुर गये। इसके विपरीत यह प्रदेश

जंगल था जहाँ आबादी नहीं थी। राजापुर और सिंगरौर का फासला ८० मील के लगभग है। रामचन्द्रजी को उस स्थान से संगम पहुँचने तक दो दिन का समय लगा जहाँ उन्होंने संगम पार किया था। इसका फासला तीस से चालीस मील तक का होना चाहिए। हो सकता है कि पुराने समय में गंगा उस स्थान से बहती रही हो जिसे हम आजकल दोआबा कहते हैं। नदी ने उत्तर की ओर अपने प्रवाह को बदला हो जिसके फलस्वरूप संगम में भी कई मील का अन्तर पड़ गया हो।

मैं उपर्युक्त नतीजों को केवल वादाविवाद के निमित्त लिख रहा हूँ। मैं वर्तमान समय के प्रयाग नगर के भारद्वाज आश्रम के महत्व को घटाना नहीं चाहता। मैंने पहले कहा है कि ऋषि का निवास वहीं होगा जहाँ संगम होगा। संगम और भारद्वाज आश्रम अलग अलग नहीं किये जा सकते। पर दुनियावी वर्णन के लिए राजापुर स्थान का भी विचार महत्वपूर्ण है जहाँ भारद्वाज आश्रम हो सकता है और जहाँ रामचन्द्रजी पधारे थे। यदि ऐसा निश्चय किया जाता है तो बहुत ही महत्वपूर्ण होगा, क्योंकि राजापुर महात्मा तुलसीदास की जन्मभूमि है जो रामायण के रचयिता हैं। इस स्थान का इसके अतिरिक्त और भी महत्व बढ़ेगा जो इसके उपयुक्त है।

अक्षयवट सम्बन्धी खोज

तीर्थ की दृष्टि से प्रयाग में सगम स्नान तथा अक्षयवट दर्शन का सर्वाधिक महात्म्य है। अक्षयवट के सम्बध में मत्स्य पुराण म कहा गया है कि 'महेश्वरो वटो भूत्वा तिष्टते परमेश्वरा।' अर्थात स्वय महेश्वर वट रूप में विद्यमान हैं। फिर लिखा है।

वटमूलम समासाद्य यस्तु प्राणान विमुञ्चति
शैवलोकम् अतिक्रम्य रुद्रलोकम स गच्छति
तत्र ते द्वादशादित्या•••
सितासिते यत्र तरग चामरे नद्यौ विभाति मुनिभानुकन्यके
निलातपत्र वट एव साक्षात स तीर्थ राजो जयति प्रयाग

शास्त्रों की मान्यता यह है कि प्रलय में जिस समय सबका नाश हो जाता है, उस समय केवल अक्षयवट ही शेष रह जाता है। उसी के पत्ते पर बालमुकुन्द भगवान् मुँह में अँगूठा लेकर क्रीड़ा करते रहते हैं। अत सनातन धर्मावलम्बियो के विश्वास तथा उनके धर्मग्रन्थों के अनुसार अक्षयवट और उसका महात्म्य अनन्त है।

पौराणिक आख्यानों में वट के दर्शन की कितनी ही कथाएँ मिलती हैं। वामन पुराण के अनुसार भक्तराज प्रह्लाद ने भी अक्षयवट दर्शन किया था। 'द्रष्ट्वा वटेश्वरम् रुद्रम् माधवम् योगशायिनम्।' वाल्मीकि रामायण में भरद्वाजजी ने भगवान् रामचन्द्र को वट का वर्णन बताते हुए उनसे अनुरोध किया कि सीताजी उस वट की पूजा करें। आगे के वर्णन मे सीताजी द्वारा वट पूजन का भी वर्णन मिलता है।

ऐसे अनन्त महात्म्य वाले अक्षयवट के दर्शन की उत्कण्ठा से लाखो यात्री देश के कोने कोने से प्रयाग आते हैं। उनको स्थानीय किले मे भूमि के अन्दर स्थित एक गुफा में अक्षयवट का दर्शन कराया जाता है। जिस स्थान पर आज कल वहाँ के पण्डे अक्षयवट बताते हैं वह स्थान बिलकुल अन्धकार में है और

वहाँ पर लकड़ी के कुन्दे पर एक मुखौटा लगा है तथा संगमरमर का चरण बना है। पण्डे कहते हैं कि यही अक्षयवट है। इसका अमुक अंश बदरीधाम में है और अमुक गयाजी में।

यद्यपि धर्मशील जनता अपने धर्म-गुरुओं के सम्मुख नतशिर होकर उनकी बात स्वीकार कर लेती रही है, पर तर्कशील व्यक्तियों के मन में यह शंका बनी ही रहती थी कि क्या सचमुच यही अक्षयवट है।

जब यह सिद्ध हो गया कि अतीत में अक्षयवट द्रुम रूप ही था, तब जिज्ञासा होती है कि आखिर आज जिसे अक्षयवट कहकर पुजाया जाता है वह क्या है, और अक्षयवट है कहाँ। प्रथम जिज्ञासा का उत्तर तो सन् १९५० में बड़े ही अद्भुत रूप में मिला। एक दिन अक्षयवट के पुजारी किले के उच्चतम सैनिक अधिकारी के पास गये और उनसे कहा कि हमें अक्षयवट की लकड़ी बदलने की अनुमति दी जाय तथा उसके लिए व्यवस्था करा दी जाय। किले के अधिकारी उनकी इस माँग से आश्चर्य में पड़ गये क्योंकि उनको भी इस सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं था। उन लोगों ने पण्डों से कोई ऐसा प्रमाणपत्र लाने को कहा जिससे इस बात की पुष्टि होती हो कि अक्षयवट की लकड़ी अतीत में भी बदली जाती रही है। पण्डे इसके उत्तर में अँगरेजी शासन-काल के उस अन्तिम सैनिक अधिकारी का पत्र ले गये जो प्रयाग के किले में रहता था। अधिकारियों ने उस पत्र को रख लिया और उनके सामने भी अक्षयवट एक समस्या बन गया। वस्तुतः एक बात तो यह हुई है कि शास्त्रों के अनुसार अक्षयवट का नाश नहीं होना और जब लकड़ी दूसरे-तीसरे साल बदली ही जाती है, तो वह अक्षयवट कैसा?

इस रहस्य के सप्रमाण भण्डाफोड़ से दूसरी जिज्ञासा लोगों के मन में और निकट रूप में जागरित हुई। महामहिम डा० कैलाशनाथ काटजू के पुत्र श्री शिवनाथ काटजू ने इस ओर विशेष प्रयास किया और किले में एक वट द्रुम ढूँढ निकाला, जो उनकी राय में अनादि काल के अक्षयवट का अवशेष है। समाचार पत्रों में बड़ी चर्चा चली। श्री ज्ञान चन्द्र म० सम्पादक संगम लिखते हैं। "मेरी भी उत्कण्ठा जागरित हुई। मैंने 'संगम' के सम्पादक के रूप में, स्थानीय जिलाधीश को लिखा कि मुझे अपने कुछ साथियों के साथ श्री शिवनाथ काटजू वाले अक्षयवट को देखने की अनुमति दी जाय। जिलाधीश ने किले के सैनिक अधिकारी को लिखा और मुझे अनुमति मिल गई। अतः मैं डा० उदयनारायण

तिवारी, पण्डित वाचस्पति पाठक तथा 'लीडर' परिवार के दोनों दैनिकों—लीडर तथा भारत—के प्रतिनिधियों के साथ उसे देखने गया।

किले के सैनिक अधिकारी मेजर कुन्दनसिंह ने हम लोगों को दर्शन करने के लिए विशेष व्यवस्था कर रखी थी और एक सैनिक पथ दर्शक के साथ हम लोग अक्षयवट के ,निकट पहुँचे। निस्सन्देह उसके दर्शन मात्र से श्रद्धा की भावना उत्पन्न होती है।

शास्त्रीय प्रमाण तो यह है कि वट संगम पर, ऐसे स्थान पर स्थित होना चाहिये जहाँ से छः किनारे स्पष्ट दीख पड़ते हैं। दूसरी बात यह है कि प्रयाग के प्राचीन काल से यह किंवदन्ती रही है कि किले के अन्दर जिस स्थान पर अक्षयवट है उसके निकट दीवाल पर कमल का फूल बना है।

जहाँ तक श्री शिवनाथजी के अक्षयवट की बात है, उसकी स्थिति के सम्बन्ध में ये दोनों ही बातें पाई जाती हैं। यद्यपि अभी तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण तो नहीं मिल सका है पर किंवदन्ती यह भी है कि जहाँगीर ने अक्षयवट को जलवा डाला था। (गजेटियर में भी जलाये जाने का बात लिखी है।) श्री शिवनाथ काटजू के अक्षयवट पर मूल तने पर जलाये जाने का चिह्न है।

चौथी बात यह कि जहाँ तक यमुना में कूदने की बात है उसके लिए भी यह वृक्ष अत्यन्त उपयुक्त है। पाँचवीं बात उसकी स्थिति है। यह वृक्ष किले में जिस स्थान पर है, वह स्थान किले के अन्दर बने भवनों की अवलि के बाहर है और उक्त वृक्ष तक पहुँचने के लिए यमुना की ओर से एक द्वार भी है।

मालवीय परिवार के एक स्थानीय सम्भ्रान्त नागरिक ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित कराई है। उसमें आपने लिखा है कि, 'खुल्दाबाद निवासी स्वर्गीय पण्डित रामावतार प्रयाग के तपस्वी और धुरन्धर विद्वान् थे। आपने कई बार पंचकोशी की थी। जब आप त्रिवेणी-स्नान करके लौटते थे तब, जिस वृक्ष को श्री शिवनाथ काटजू अक्षयवट कहते हैं उसी की इसी प्रकार स्तुति करते थे :—

सौवर्णानि दलान्यस्य सप्त पातालगाः जटाः।
यावन्मण्डलविस्तारो वटराजाय ते नमः॥

उन्हीं सज्जन ने अपनी उसी विज्ञप्ति में यह भी कहा है कि प्रयाग स्थित 'धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला' का जीर्णोद्धार करानेवाले पूज्यपाद श्री १०८ विश्वम्भर

ब्रह्मचारी के साथ, मैं गंगा स्नान करने जाया करता था। उक्त ब्रह्मचारी जी भी काटजू वाले वृक्ष को ही अक्षयवट कहा करते थे।

उक्त महानुभाव ने अपनी विज्ञप्ति में एक बात बड़े ही महत्त्व की कही है। यह यह कि, "प्रयाग के दानवीर चौधरी महादेवप्रसाद के पिता स्वर्गीय रुद्रप्रसादजी ने, विद्वानों की सम्मति से, प्रयाग की पंचक्रोशी का प्रबन्ध किया था और बड़े अन्वेषण के साथ प्रयागस्थ जितने भी तीर्थ हैं उनके नामों के पत्थर जगह जगह गड़वाये थे और उसी वृक्ष को अक्षयवट की मान्यता दी गई थी जिसे श्री शिवनाथ काटजू असली अक्षयवट बतलाते हैं।"

"दूसरी बार स्वर्गीय महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय महाराज और प्रयाग के विद्वानों की सम्मति से बलुआघाट के शिवलोकवासी सदाशिवनारायणजी चैतन्य ब्रह्मचारी ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया था और उसी समय बड़े बड़े धुरंधर विद्वानों की सभा करके पंचकोशी के और चौधरी रुद्रप्रसादजी के गड़वाये हुये पत्थर को जो छिन्न भिन्न तथा लुप्त हो गये थ, ब्रह्मचारीजी ने पुनः नवीन रूप दिया और किले के दक्षिण पार्श्व की दीवाल में जो कमल का फूल बना हुआ है उसी के नीचे अक्षयवट का एक पत्थर गड़वाया था।"

किंवदन्ती के ही आधार पर एक बात महत्व की और है। कहा जाता है कि प्राण देने के समय लोग शूलटंकेश्वर की ओर मुँह करके अक्षयवट से कूदते रहे हैं श्री शिवनाथ काटजू वाले अक्षयवट से यह बात भी पाई जाती है।

किले में लगभग २०० वट के वृक्ष हैं। किले के अधिकारियों का कहना है कि किसी समय किसी वृक्ष विज्ञान विशेषज्ञ ने उनकी जाँच की थी और उसने यह निर्णय दिया कि ये वृक्ष एक ही बीज के हैं। यदि यह सत्य है तो, कहा जा सकता है कि किले में जितने भी वट वृक्ष हैं, सभी अक्षयवट के अंश हैं और पुराणों में वर्णित अक्षयवट—काल की गति से अथवा किसी अन्य प्रकार से—नष्ट हो गया।

अपने इस प्रयास के लिये श्री शिवनाथ काटजू सनातन धर्मावलम्बी जनता के धन्यवाद के पात्र अवश्य ही हैं पर अक्षयवट के सम्बन्ध में बहुत कुछ खोज करना शेष है। हमें ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक ढंग पर बहुत कुछ खोज करना होगा। आशा है, श्री शिवनाथ काटजू भविष्य में भी इस ओर प्रयत्नशील रहेंगे।

ऐतिहासिक शिला लेख

प्रयाग नगर में अशोक का लाट जो आजकल वर्तमान किले में स्थित है यहाँ के सब से प्राचीन वस्तुओं में से एक है। पहिले यह लाट अशोक की आज्ञा से २३२ वर्ष ई० पूर्व कौशाम्बी में था; जिसे सम्भवतः फीरोजशाह चौदहवीं सदी में किले में ला खड़ा किया। इस लाट पर सम्राट अशोक, उनकी सम्राज्ञी, समुद्रगुप्त, जहाँगीर, बीरबल के खुदे हुये लेख हैं। सबसे पहले इन लेखों की ओर जेम्स प्रिंसप का ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने स्थानीय विद्वानों की सहायता से इसका अर्थ कराया।

अशोक के अभिलेख—यह अभिलेख अशोक के छः आदेश हैं जो उन्होंने अपनी प्रजा के हितार्थ खुदवाये थे। इसकी भाषा प्राकृत और लिपि ब्राह्मी है।
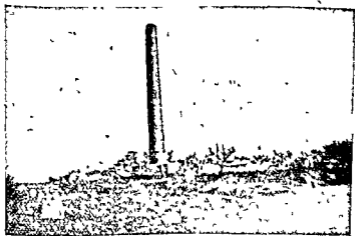
अशोक-स्तम्भ

(१)

मूल

(१) देवानां पिये पियदसी लाजा हेव आहा ।
सडुवीसति वसाभि सितेन मे इय धम लिवि
लिखापिता । हिदत पालते द संपटि पादा ये

(२) अनत अगाय धम कामताय अगाय पलीखाय
अगा य सुसुसाय अगेन भयेन, मन अगेन उसाहेन
एस चूखो मम अनुसथिना

(३) धमा पेखा धम कामता च सुवे सुवे बढिता
वढि सति चे वा पुलिसा पि मे उकसा च
गेवया चे मभिमा च अनुविधीयति सपटि पादयति च ।

(४) अल चपल समादपयितवे हेमेव अत
महामाता पि एसा हि विधि या इय धमेना
पालना धमेन म विधा ने धमेन सुखी यना धमे न गु नि ते चि ।

(२)

(५) देवानां पिये पियदसी लाजा हेव आहा

(१)

अर्थ

देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है । ऐसा आदेश दिया है कि अपने अभिषेक के २६ वर्ष पर मैंने यह धर्म लेख लिखवाया है ।१।

बिना उत्तम धर्म कामना, बिना उत्तम परीक्षा, बिना उत्तम सेवा, बिना पापों से बड़े भय और बिना बड़े साहस के इस लोक और परलोक का काम बनना कठिन है । इस मेरे धर्म की शिक्षा से अपनी अपनी ।२।

धर्म की कामना बढी और बढेगी मेरे अच्छे बुरे और मध्यम विचार के पुरुष इसका अनुकरण और आचरण करते हैं ।३।

जिससे कि चचल लोग भी धर्म पर चलेंगे । इसी प्रकार मेरे बडे अधिकारी भी करते हैं । क्योंकि धर्म से पालन, धर्म से न्याय, धर्म से सुख और धर्म से रक्षा की यही विधि है ।४।

(२)

देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है कि धर्म श्रेष्ठ है । धर्म

[।] धमं साधु [।] कियं चु धमेति [।]
असिनवे बहु कयाने दया द (दा) ने मचे
सा (सो) चये [।] चखुदाने पि मु (मे)
(६) बहु विधे दिने [।] दुपद (द) चतुपदेसु
पखिवालिचलेसु विविधे मे अनुगहे कटे
आ पान दखिनाये [।] अनानि पिच मे
बहूनि कयानानि कटानि [।]
(७) एताये मे अठाये इय धमलिपि लिखा पिता इव अनुपटिप जन्तु ची
(चि) लठिती (ती) काच होतू ति [।]
येच हेव सपटिप जिसति स (सं) सुकट
वछ्ति [।]

(३)

(८) देवाना पिये पियदसी लाजा हेव आहा [।]
कयान मेव देखति (नि) इय मे कयाने कटेति
[।] नो मिन पापकं देखति इय मे पापके कटे
ति इय वा आसिन वे नामा ति [।]

क्या है? बुराई से दूर रहना, भलाई, दया, दान, सत्य और पवित्रता। ।५।

मैंने दोपायों, चौपायों, पक्षियों और जलचरों की ओर भी बहुत तरह से दृष्टि डाली है। मैंने अनेक प्रकार से (उन पर) प्राण दान तक की कृपा की है। ।६।

(उनके साथ) और कई तरह की भी भलाइयाँ की हैं। इसलिये यह धर्म लेख लिखवाया गया है कि लोग ऐसा ही करें और यह लेख बहुत दिन तक बना रहे। जो ऐसा करेगा वह भलाई का काम करेगा ।७।

(३)

देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है कि मनुष्य भलाई ही देखता है कि "यह भलाई मैंने की है" मनुष्य पाप नहीं देखता कि "यह पाप मैंने किया है" या "यह दोष है" ।८।

(९) [दुपाटि वेखे सुनो एमा [।] दे
सु
ग्गो एस देखिये [।] इमानि
आसिन गगामीनि
नाम अथ चडिये निठू लिये कोधे
माने इस्या
कालनेन ध हंवं मा पलिभसयिस
[।] एस
बाढ देखिये इय म हिद निकाय
इय मन मे
पालति काये ।

यह देखना बड़ा कठिन है (परन्तु) इस (अर्थात् मनुष्य) को इस प्रकार भी देखना चाहिये (कि) ये बुराइयाँ हैं। जैसे कठोरता, निर्दयता, क्रोध, घमण्ड और ईर्ष्या इत्यादि। (यह भी सोचना चाहिये कि कहीं) इन (बुराइयों) के कारण मैं दोषी न बनूँ। यह अच्छी तरह से देखना चाहिये कि यह (कर्म) मेरे इस लोक और यह (कर्म) परलोक के लिए (अच्छा) है।।९।

(४)

(१०) [देवानं पिये पियदसी लाजा
हेवं आहा
[।] सडुवीसति वसाभिसि तेन म
इय धम लिवि
लिखा पिता]

देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है (कि अपने अभिषेक के २६ व वर्ष मैंने यह धर्म लेख लिखवाया है।१०।

(११) लजूका मे बहु सुपान सतसह से
सुजन सि
आयता ते स ये अभि हाले वा
[।]

मेरे बड़े अधिकारी बहुत से सैकड़ों हजारों प्राणियों पर नियुक्त हैं।११।

(१२) दडे वा अतपतिये मे कटे किनु
लजूका
अस्वथ अभीता कंमानि परतयेवू
जनस
जान पदसा हित सुख उपददेवू
अनुगहिनेवुचा

उनको न्याय और दण्ड में मैंने स्वतन्त्र कर रक्खा है, जिससे वे लोग बिना स्वार्थ और बिना (बदमाशों) के भय के काम करें।१२।

(१३) सुखीयन दुखीयन जानि सति
धम युतने

और देश में रहने वाले लोगों (प्रजा) के हित और सुख का

च [।] विर्योरदिसनिजनं जानपदं
निति
[।] हि दतंच पालतं च आलाध
येवुति
[।] लजूका पिलधंति पटि चलि
मेमं

ध्यान रक्खें। तथा (उनपर) कृपा करें। सुख और और दुख को समझें और देशवासियों से धर्म युक्त व्यवहार करें क्योंकि इससे वे लोग इस लोक और परलोक की आराधना करेंगे।१३।

(१४) पुलि सानिपि मे छंदानि पटि
चलि संति
ते पि च कानि वियोरदिसति येन म
लजूका चघंति आलाधयितवे
अथाहि
पजं वियताये धातिये निसिजितु

मेरे बड़े अधिकारी मेरी सेवा करना चाहते हैं। और लोग भी मेरी इच्छा के अनुसार काम करना चाहेंगे. वे भी अपने इर्द गिर्द वालों के साथ उसी तरह व्यवहार करेंगे जिस तरह से मेरे बड़े अधिकारी लोग श्रद्धा से मेरी आराधना (सेवा) की अभिलाषा करते हैं।१४।

(१५) अस्वथे होति वियति-धाति
चघति मे
पज सुखं पलि हटवे [।] हेव ममा
लजूका
कटा जना पदस हित सुखाय येन
एते
अभीता अस्वथ संतं अविमना
कमानि पवतये वृति (?)

जैसे (कोई अपनी बूझी हुई धाय को सौंप कर सन्तुष्ट हो जाता है कि यह (जानी बूझी हुई धाय) मेरे बच्चे को श्रद्धा के साथ सुख से पालेगी।१५।

(१६) एतेन मे लजूका [न] अभि [हा]
ल (ले)
च (वा) द (दं) इू (डि, न (धा)
अत पतिये।
अ (क) लि (टे) [।] च (इ) छ
(छु) तव
(वि) य (ये) ह (हि) ल (ए) सि

इसी तरह मैंने देशवासियों के हित और सुख के लिये बड़े बड़े अधिकारियों को नियत किया है जिससे वे लोग बिना भय और बिना स्वार्थ के प्रसन्नता के साथ अपना काम करें।१६।

(स) [।]
कि (कि) (ति नि) [।] ना (४)
(१७) नियं (यो) हाल समता (ता)
ना (च)
सिया दंड समता च [?]
आव इते निच म (मे) आव
(यु) नि
बंधन बधान मुनिसान नीलित
दडानं
पतवधान नि (ति) नि दिवसि
(सा) नि
योनं दिने [।]

इसलिए मैंने न्याय और दण्ड में उनको स्वतन्त्र कर दिया है, क्योंकि ऐसा होना ही चाहिये। इससे व्यवहार में समता रहेगी और दण्ड में भी समता रहेगी।१७।

(१८) नीतिका च (व) कानि निम
(भ) पयि
मति ज (जी) विताये तानं
नासत वा
निभपयिता दान दाहति पालतिकं
उपा (वा) म वा कछु(छ) ति
(१६) इछाहि मे हेव निलुधसि विकालसि
पालत आलाधय (ये)ठाद (त्ु) [।]
जनस च वढति विविध (धे) धम
चलने
सयमे दाने (न) सविभागेति।

आज से यह भी मेरी आज्ञा है कि जिन कैदियों के लिये प्राण दण्ड का निर्णय हो चुका है उनको तीन दिन की मुहलत दी जाय। जिसमें उनके भाई बन्धु उनके जीवन के लिये याचना (अपील) कर सकें।१८।

अथवा उनका मरना निश्चित समझ कर उनके उद्धार के लिये दान पुण्य करें क्योंकि मेरी इच्छा है कि इस दण्ड की रुकावट के समय में वे लोग परलोक सम्बन्धी आराधना कर लें। इस तरह लोगों में कई प्रकार का धर्माचरण, ,सयम ,और , दान का प्रचार बढता है। इति।१६।

(२०) देवानां पियदसी लाजा हेव
आहा [।]
सडुवीसा (स) निवसामि सितेन मे

देवताओं के प्यारे 'प्रियदर्शी' राजा ने ऐसा कहा है (कि) अपने अभिषेक के २६वें वर्ष में मैंने जीवों

इमानि जातानि अवधि यानि कटानि
स (से) यथ सुके सालिका अलुने चाक्वा (वाके)

यों अवध्य कर दिया है। (ये जीव न मारे जायें ऐसा हुक्म दिया है) वे ये हैं।२०।

(२१) हस (से) नंदि (दी) मुखे, गेलाटे, जि
(ज) तूका; अंबाको (कि) पिलिका; दुभी
(डी) अनठिकमछे वदेव (वे) यक (के) गगाप
(पु) प (पु) टके; सतुजमछे, कप (फ) ट [सेय)
क (के) प (प) नससे, पि (सि) मले।

तोता, मैना, लाल, चकरा, हस, नन्दी मुख (नीलगाय) गेलाट, चमगादड़, रानी चींटी, पहाड़ी कछुआ, दण्डी, बिना हड्डी की मछली, तीतर गगा कुकर (पेद) वाम मछली, साही, गिलहरी, बारहसिंगा।२१।

(२२) [सडके, ओकपिंडे, पलसते सेत] कपाव
(ते) ग (गा) य कपोते, सव (वे) चत (तु)
पद (दे) य (ये), पटि भागे (ग) [नो एति न
च खादियति। अजका] ना (नि व) एडका
च सूकली च गभिनी व पायमीना व]

साड़, बन्दर, धब्बेदार हिरन, सफेद कबूतर, और वे सब चौपाये जो न तो काम में आते हैं और न खाये जाते हैं। भेड़ीया सुअरनी जो गर्भिणी हो या दूध देती हो, अवध्य हैं। और छ महीने के छोटे बच्चे भी अवध्य हैं।२२।

(२३) [अवधिय पोत के पि च कानि आसमासिके
[।] वधिकुकुटे नो कटविये तुसे] सजीवे नो

मुर्गा को बधिया नहीं करना चाहिये। जिस भूमि में जीव जन्तु उत्पन्न हो गये हों उनको नहीं जलाना चाहिये। एक जीव को मार कर उससे

[भाषयितविये दाने अनठाये या · तिरि सादेरा नो भापे] तानि ये (;) जीवेन जीवे नो पुसितविये]

दूसरे जीव को अपना पेट नहीं पालना चाहिये ।२३।

(२४) तीसु चातुमासीसु तिसाय पुंनमासिय तिनि दिवसानि [चादुदसं पन्न दसं पटिपदं धुवाये चा]

तीनों चौमासी (चार-चार महीने के जाड़ा गरमी बरसात) की पूर्णमासियों के दिन जो फागुन अषाढ और कार्तिक के अन्त में पड़ती थी) तथा पुष्य नक्षत्र वाली पूर्णमासी और चौदस; पन्द्रस (अमावस्या तथा प्रतिपदा और व्रत उपवासों के दिन न तो मछली मारनी चाहिये और न बेचना चाहिये ।२४।

(२५) अनुपोसथ मछे अवधिये नोपि विकेत विये [।]एतानि या (ये) च [दिवसानि नागवनसि केवट भोगसि यानि अनानि पि जीविनिकायानि नो हंत वियानि अटमी पखाये चा बुदसाये पन उसाये तिसाये पुनावसु ने तीसु चातुंमासीस]

इन्हीं दिनों में नागवन (कजलीबन जहाँ हाथी रहते हैं; और कैवर्त भोग (मछुओं के तालाब) में जो अन्य जीव हैं उनको भी नहीं मारना चाहिये। दोनों पक्ष की अष्टमी चौदस पन्द्रह पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र और तीनों चौमासों की पूर्णमासी के दिन और शुभ दिनो (त्योहारों) में साड़ को बधिया नहीं करनी चाहिये ।२५।

(२६) सुदिवसाये गोने नो नि (नी) ला (ल) खिता (त) विये अजका एडा [के सूकले एवापि अन नीलखियति

इसी प्रकार बकरा, भेड़ा, सुअर और जो दूसरे जानवर बधिया किये जाते हैं वे नहीं किये जाने चाहिये। पुष्य, पुनर्वसु और चौमासे के दिनों

नो नीलखित यिये] निसाय पुना वसु ने चात्
मासिये चातु मासि दखाये अश्वसा गोनसा
(२७) लखने नो कटयिये [।] याव सडुवीसि (स)
नि सामिसितेन मे एताये अत लिका ये
पे नसमीति बन्धन मोखानि कटानि [। [

और चौमासे के दिनों और चौमासे के दोनों पक्ष में (अमावस्या और पूर्णिमा को) घोड़ों और बैलों को दागना न चाहिये ।२६।

अब से मेरे अभिषेक को २६ वर्ष हुये तब से मैंने २५ बार कैदी छुड़वाये हैं ।२७।

(६)

(२८) देवानां पिये पियदसी लाजा हेव आहा
दुवा डस वसाभिसितेन मे धम लिपि लिखा पिता
लोक साहित सुखाये से ते अपहटा त त
धम वढि पापो वा हेव लोकसा स
(२९) हित सुखे ति पटिवेखामि अथ [इय ना]
या (ति) पा (सु) [हेव] पति यॉ सनेसु हेव
अपकठे सु किम कानि सु ख आवहामी
ति तथा च विदपो (हा मी मि) हेव
मन सड़ (व) को (का) येसु पटि वेखामि

(६)

देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है कि अपने अभिषेक के बारह वर्ष पर लोगों के हित और सुख के लिये यह धर्मलेख मैंने लिखवाया है। (जिससे लोग) ऐसी वैसी (व्यर्थ) बातों को छोड़कर धर्म को बढ़ावें ।२८।

इस प्रकार लोगों का हित और सुख इसमें है। यह मैं देखता हूँ। जिस प्रकार मैं यह देखता हूँ कि अपने जाति वालों में किसको क्या सुख पहुँचाऊँ। उसी प्रकार अपने से निकट और दूर वालों में भी देखता हूँ। और वैसा ही (अनुष्ठान कार्य) करता हूँ।। इसी प्रकार सब सम्प्रदाय वालों में भी देखता हूँ ।२९।

(२०) सरसा संडा पि ये पूजिता विविधाय स
(पू) का (जा) मा (या)
ए नू इयं अनना पा
तुसगमने से मे मुख्य मुते सड्ढी
मति यम अभि मा ते न मे इय
धम लिपि
लिख, लिपि नि।

मैंने सब सम्प्रदाय वालों की अनेक प्रकार की पूजा से सत्कार किया है। परन्तु उनमें अपने मन्तव्य का स्वागत करना मैं सबसे मुख्य समझता हूँ। अपने अभिषेक के २६ वें वर्ष मैंने यह धर्म लेख लिखवाया है।२०।

कौशाम्बी का लेख

मूल	अर्थ
(१) देवाना पिये आन पयति को सबिय महामात	देवताओं के प्यारे प्रियदर्शी राजा कौशाम्बी के बड़े अधिकारी (सूबेदार) को।१।
(२) [स] मड) गे (कटे) मयसि नि (नो) लहियो +	इस प्रकार आदेश देते हैं।२
(३) (सघं भा) ड (त) ति भि ति खु वा मि रित नि यासे चि पि न	सघ (बौद्धों का मठ) का नियम न उल्लंघन किया जाय। जो कोई सघ में फूट डालेगा।३
(४) व (×) [ओदातानि दुसानि) पि (सं) नं (नि) सापयति अना तवा सघसि आवासये।	वह सफेद (अर्थात गृहस्थों के) कपड़े पहना कर उस स्थान से जहाँ, भिक्षु या भिक्षुनियाँ रहती हैं। निकाल दिया जायगा।४

महारानी का लेख

(१) देवानां पियस वचनेना सवत महामता

देवताओं के प्यारे (राजा) के वचन से सब बड़े अधिकारियों से कहो।१

(२) दुतिया ए हेत दुतीयाये देविये दाने

कि दूसरी रानी का जो दान है।२

(३) अवावडिका वा आलमे व दान ए हेवा एता पिश्रने	आम की वाटिका या बगीचा या दान गृह या ।३
(४) किछि गर्नायति ताये देयिये वे नानि सन्ते व ग्निति	और भी जो कुछ हो वह।४
(५) दुतियाये देविऐ ति तीवल मातु कालुवानिये ।	दूसरो रानी तीवर की माता कारुवाकी का है ।५

समुद्रगुप्त का अभिलेख

यह लेख गुप्त लिपि तथा संस्कृत भाषा में है। पहले आठ पद्य में और शेष गद्य में हैं। कुल ३३ पंक्तियों में आदि के चार पंक्तियाँ बहुत खण्डित हैं और कुछ पंक्तियों के बीच के कुछ अंश मिट गये हैं। १ से ४ पंक्तियों का अर्थ अधिक खंडित होने की वजह से स्पष्ट नहीं है। ५ और ६ में समुद्रगुप्त की विद्वता तथा ७ और ८ में पिता द्वारा उसकी योग्यता का वर्णन है। ९ से २४ तक उसकी वीरता और उसके दिग्विजय का वर्णन है। २५, २६ और ३० में उसके विभिन्न विशेषताओं और २७ में उसके काव्य तथा संगीत में निपुण होने का वर्णन है। २८ और २९ में वंशावली दी गई है। ३२वीं पंक्ति में रचनाकार का आत्म परिचय है।

मूल	अर्थ
(१) य कुल्यै स्वै आतम	(१) जो अपने सम्बन्धियों सहित
(२) यस्य	(२) जिसका
(३) पुव—त	(३)
(४) स्फारद्व, च स्फुटोद्ध्वंसित प्रवितत्	(४)
(५) यस्य प्रज्ञानुषङ्गोचित सुख मनस शास्त्र तत्वार्थ भर्तुः [ ] स्तब्धो नि [ ] नोच्छ	जिसका मन ज्ञानी पुरुषों के संग से सुख पाता है और जो शास्त्र के तत्वार्थ का पोषक है निश्चल
(६) सत्काव्य श्री विरोधान बुध गुणित गुणाज्ञाहता नेव कृत्वा विद्वल्लोके वि [ ] स्फुट बहुकविता कीर्ति राज्य भुनक्ति	जो सत्काव्य के विरोधियों को बुद्धिमानों के गुणों के द्वारा परास्त करके विद्वानों से स्पष्ट कविता कीर्ति रूपी राज्य को भोगता है।
(७) आर्यो हीत्युप गुह्य भाव पिशुनैरुत्कर्णि तै रोम भि॰	जिसको पिता ने यह कह कर गले लगा लिया कि यह राज्य के योग्य है।

सभ्येपुच्छ्व सितेषु तुल्य कुल-
जम्लानान नो द्वीक्षितः

जब भाव सूचक रोमांच पिता के शरीर पर खड़े हो गये। जब सभासद हर्ष की श्वास ले रहे थे। और समान कुलोत्पन्न लोगों के मुख मलीन हो रहे थे और उसे देख रहे थे।

(८) स्नेह व्यालुलितेन वाष्प गुरुणा
तत्वेक्षिणा चक्षुषा य. पित्रा
भि हितो निरीक्ष्य निखिला
पाह्येव मुर्व्वीमिति

स्नेह से व्याकुल, आँसुओं से भरे तत्व को देखने वाले नेत्रों द्वारा, पिता ने उसे देख कर कहा—'समस्त पृथ्वी को पालो'

(९) दृष्ट्वा कर्म्माण्यनेकान्य मनुज
सदृशान्यद् भुतोद् भिन्न हर्षा
भावै रा स्वाद्य केचित

अनेक अमानुषी कामों को देख कर हर्ष से चखते थे कुछ लोग

(१०) वर्य्यात्तप्ताश्च केचिच्छरण
मुपगता यस्य वृत्ते प्रणामप्यर्त्ते

जिसके पराक्रम से हराये जाकर कुछ लोग प्रणाम करते हुए जिसकी शरण में आते थे।

(११) सग्रामेषु स्वभुज विजिता
नित्य मुच्चापकारा. श्व श्वो
मानप्र .

लड़ाई में उसकी भुजाओं से जीते गये नित्य बुरा कर्म करने वाले दिन प्रति दिन मान

(१२) तो षो तुष्टै. स्फुट बहुरसस्नेह
फुल्लै र्म्मं
नोभिः पश्चात्तापं व मस्याद्
वसतम्

सन्तोष से भरे हुए और प्रकट प्रेम के रस से फूले हुए मनो से पश्चाताप को वसन्त ऋतु को।

(१३) उद्वेलोदित बाहु वीर्य्य रभसादेकेन
येन क्षणादुन्मूल्याच्युत नागसेन
ग [ ]

असीम ऊपर उठे हुए बाहुवीर्य से जिसने अकेले अच्युत और नागसेन को परास्त किया।

(१४) दण्डैर ग्राहयतैर कोट कुलजं
पुष्पा
ह्ये क्रीडता सूर्य्ये ने तट...

जिसने कोट नामक कुल में उत्पन्न हुए (राजा) को सेना के द्वारा पकड़कर पुष्पा नाम के नगर में क्रीड़ा की सूर्य से तट पर।

(१५) धर्म्म प्राचीर वप. शशि कर शुचय. कीर्त्तयः सप्रतना पैदुष्य तत्र भेदि प्रशम उत्र य क सुत तात्स्यम्	धर्म के घेरा अथवा चारदीवारी चन्द्रमा के किरणों के समान उज्ज्वल चारों ओर फैली हुई कीर्त्तियाँ तत्र में घुमने वाली बुद्धि शान्ति
(१६) अध्येयः सूक्त मार्गाः कविमति विभवोत्सारण चापि काव्यम् को तुल्याद् योऽस्य न स्याद गुण मति विदुषाम ध्यान पात्रम य एर	अध्ययन के योग्य सूक्तो का मार्ग कवियों की बुद्धि का विराम करनेवाली कविता, कोई गुण ऐसा नहीं जो उसमें न हो। जो अकेला ही गुणों को जानने वाले विद्वान लोगों का ध्यान का पात्र है।
(१७) तस्य विविध समर शतावतरण दक्ष स्य स्वभुज बल पराक्रमै क बन्धो - प्राक्रमाङ्कस्य परशु शर शङ्कुशक्ति प्रासासितोमर	जो अनेक प्रकार के सैकड़ों युद्धों में दक्ष है। जिसका बंधु केवल उसका भुजबल और पराक्रम है, जो पराक्रम के लिए प्रसिद्ध है। परसा, तीर, भाला, कील, तरवार बरछी।
(१८) भिन्दु पालना राच वैतस्तिका अनेक प्रहरण विरुढा कुल व्रण शताङ्कशोभा समुदायपचितकान्त तर वर्ष्मण	लोह तीरों का फेंकने वाले शस्त्र, वैतस्तिक आदि के चोटों से उत्पन्न हुये सैकड़ों घावों से जिसके शरीर की शोभा बहुत बढ़ गई है
(१६) कौसल क महेन्द्र महाकान्तार क व्याघ्र राज कैरालक मराट राज पैष्ट पुरक महेन्द्र गिरि कौट्टर क स्वामिदत्त एरराड पल्लव दमन काञ्चेयक विष्णु गोप आवमुक्तक	कौशल देश का महेन्द्र, महाकान्तार का व्याघराज, केरलदेश का मण्टराज पिष्टपुर का महेंद्र गिरि, कूट्टर का स्वामी दत्त, एरंडपल्ल का दमन, कांची का विष्णु गोप, अवमुक्त का

(२०) नीलराज वैङ्गेय क हस्ति
वर्म्मपालक
कोग्रसेन दैव राष्ट्रक कुबेर
कौस्थल
पुरक धनञ्जय प्रभृति सर्वदक्षिणा
पथ
राज ग्रहण मोक्षानुग्रह जनित
प्रतापो
न्मिश्र माहा भाग्यस्थ

नीलराज, वेङ्गीदेश का हस्तिवर्मा, पल्लक देश का उग्रसेन, देवराष्ट्र का कुबेर, कुस्थलपुर का धनजय आदि दक्षिण के राजाओं को पकड़ कर छोड़ देने के अनुग्रह से उत्पन्न हुये प्रताप से बढा हुआ भाग्य जिसका

(२१) रुद्रदेव मतिल नागदत्त चन्द्र
वर्म्म
गणपति नागसेनाच्युत नन्दि बल
वर्म्माद्यने कार्य्या वर्त्तराज
प्रसभोद्धरणाद्
वृत प्रभाव महत परिचारकी
कृत सर्वाट विक राजस्य

रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्र वर्मा, गणपति, न गसेन, अच्युत, नदि, बलवर्मा आदि अनेक आर्यावर्त्त के राजाओं को बलपूर्वक दमन करने से बढा है प्रभाव जिसका, और जिसने समस्त वनवासी राजाओं को अपना नौकर बना लिया है।

(२२) सम तट डवाक कामरूप
ने पाल कर्तृपुरादि
प्रत्यन्त नृपति भिरम्मालवार्जुन
नायन यौधेय
माद्रका भीर प्रार्जुन सनकानीक
काक खरपरि
कादिभिश्च सर्व्व कर दानाज्ञा
करण प्रणामा गमन।

समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल कर्तृपुर आदि प्रत्यत देशों के राजाओं स तथा मालव, अर्जुनायन यौधेय, माद्रक, आभीर, अर्जुन, सनकानीक, काक, खरपरिक आदि नशों से दिया गया है सब प्रकार का कर जिसको, मानी गई है आज्ञा जिसकी ओर किया गया है प्रणाम जिसको

(२३) परितोषित प्रचण्ड शासनस्य
अनेक
भ्रष्ट राज्योत्सन्न राजवंश
प्रतिष्टापनोद्

जिसका प्रचड शासन सब राजा गण स्वीकार करते हैं, जिसने कई नष्ट भ्रष्ट और पतित राजाओं को फिर से स्थापित करके समस्त ससार में अपना

भूत निखिल भुवन विचरण शान्त यशस
देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि शक मुरुण्डै
सैंह लकादिभिश्च ।

शान्त यश फैलाया है, जिसके देवपुत्र शाही, शाहानशाही, शक, मुरुण्ड, सिंहल के निवासी तथा

(२४) सर्व द्वीप वासि भिश्च म निवेदन कन्योपायन
दान गरुत्मदङ्कस्व विषय भुक्ति शासन याचना द्युपाय सेवाकृत
बाहुवीर्य प्रसरधरणि
बन्धस्य पृथिव्याम प्रतिरथस्य

सब द्वीपों के रहनेवालों से ग्राम समर्पण, कन्यादान, गरुड़ चिन्हयुक्त (ग्रामसमर्पण का चिन्ह) अपने ही देश में राज करने की आज्ञा की प्रार्थना आदि उपायों द्वारा सेवा की गई भुजबल की जिसके, और बंध गई है पृथ्वी जिसमें संसार में नहीं रहा शत्रु जिसका

(२५) सुचरित शतालंकृतानेक गुण गणोत्स
क्ति भिश्च चरण तल प्रमृष्टान्य नरपति
कीर्त्तं साध्व साधू दम प्रलय हेतु पुरुष
स्या चिन्त्यस्य भक्त्य वनति मात्र ग्राह्यमृदुहृदय स्यान कम्पावतोनेक
गोशत सहस्र प्रदायिनो

सैकड़ों सच्चरित्रों से अलंकृत किये हुये गुणों की वृद्धि से अपने चरणों के तलवों से मिटा दी है दूसरे राजाओं की कीर्ति जिसने, जो अच्छी बातों के उदय और बुरी बातों के नाश का हेतु है और अचिन्त्य (गूढ) है। जिसका हृदय इतना कोमल है कि भक्ति और प्रणाम से ही नम्र हो जाता है। जिसने सैकड़ों हजारों गायें दान दी हैं।

(२६) कृपण दीनानाथ तुर जनोद्धरण समन्त्र
दीक्षाद्युपगत मनस समिद्धस्य
विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य धनद
वरुणेन्द्रान्तक समस्य स्वभुजबल
विजितानेक नरपति विभव

कृपण, दीन, अनाथ आतुर जनों के उद्धार करने में ही लगा हुआ मन जिसका जो लोगों के साथ अनुग्रह करने का अवतार मात्र हैं, जो कुबेर वरुण, इन्द्र, यम आदि देवों के समान है—अपने भुजबलों से जीते हुये

प्रयर्प्पणा	अनेक नरपतियों को फिर माल लौटा
नित्य व्यापृता युक्त पुरुषस्य	देने में लगे हुये हैं नौकर जिसके
(२७) निशित विदग्धमति गान्धर्व्वललि तैर्व्रीडित त्रिदशपति गुरु तुम्बुरुना रदा दैर्विद्वज्ज नोप जीव्यानेक काव्य क्रियाभि॰ प्रतिष्ठित कविराज शब्दस्य सुचिरस्तोतव्यानेकाद्भु तों दार चरितस्य	तीक्ष्ण और विदग्ध बुद्धि युक्त गान विद्या के लालित्य आदि से लज्जित किया है इन्द्र के गुरु तुबुरु नारद आदि को जिसने । विद्वानों के अनेक काव्य क्रियाओं से प्रतिष्ठित किया है कविराज का शब्द अपने लिये जिसने । अनेक अद्भुत उदार और बहुत दिनो तक प्रशंसा के योग्य है चरित्र जिसका
(२८) लोक समय क्रियानुविधान मात्र मानुषस्य लोकधाम्नो देवस्य महाराज श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्र गुप्त पुत्रस्य	लोक और समय के अनुकूल जो क्रिया करने मात्र से मनुष्य है, और जो अन्य बातो मे रहने वाला देवता है, महाराज श्री गुप्त का प्रपौत्र और महाराज श्री घटोत्कच का पौत्र और महाराजाधिराज श्री चन्द्र गुप्त का पुत्र
(२९) लिच्छिविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमार देव्या मुत्पन्नस्य महाराजाधिराजा श्री समुद्र गुप्तस्य सर्व पृथ्वी विजय जनितो दय व्याप्त निखिला वनित ला कीर्ति मितस् त्रिदशपति	लिच्छिवि का दौहित्र महादेवी कुमारी देवी के पेट से उत्पन्न हुये महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त की समस्त पृथ्वी मे फैली हुई कीर्त्ति को जो यहाँ से इन्द्र की
(३०) भवन गमनावाप्त ललित सुख विचरण	पुरी (स्वर्ग) में जा कर सुख से विचर रही है, बतलाने वाला

माचक्षाण इव भुवो बाहुरय मुच्छ्रितः स्तम्भः यस्य प्रदान भुज विक्रम प्रशम शास्त्र वाक्यो -दयैरु पर्यु परिसञ्चयोच्छ्रित मनेक मार्ग्ग यश	पृथ्वी के ऊँचे हाथ के सदृश यह खम्भा है। जिसके दान, भुज विक्रम, शान्ति तथा शास्त्र वाक्य के उदय से ऊँचा उठता हुआ अनेक मार्गों वाला यह यश
(३१) पुनाति भुवनत्रय पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा निरोध परि मोक्ष शीघ्र मिव पाण्डु गाङ्गपय एतच्च काव्यमेषामेव भट्टार कपादाना दासस्य समीप परि सर्प्पणानुग्रहो न्मीलित मते	तीनों लोकों को उस प्रकार पवित्र करता है जिस प्रकार शिव जी के जटा समूह के बन्धन से छुटकारा पाकर शीघ्रगामी शुभ गंगा जल यह काव्य भट्टारक (स्वामी) के चरणों के दास और उसके समीप रहने की कृपा से विकसित हो गई है बुद्धि जिसकी, उस
(३२) खाद्य टपाकि कस्य महादण्ड नायक ध्रुव भूति पुत्रस्य सान्धि विग्रहक कुमारा मात्य महादण्ड नायक हरिषेणस्य सर्व भूत हित सुखा यस्तु	खाद्यटपाकि का तथा महादण्ड नायक ध्रुवभूति के पुत्र संधि विग्रहिक कुमारामात्य महादण्ड नामक हरिषेण का है। सब प्राणियों के लिये सुख कर हो।
(३३) अनुष्ठित च परमभट्टारक पादानुध्यातेन महादण्ड नायक तिल भट्टकेन।	यह कार्य सम्पादित किया गया है परमभट्टारक के चरणों में ध्यान लगाने वाले महादण्ड नामक तिलभट्टक द्वारा।

समुद्र गुप्त के इस उपरोक्त अभिलेख के बाद अकबर के एक नवरत्न बीरबल का लेख है।

संवत १६३२ साका १४६३ मार्ग बदी ५ चमी
सोमवार गंगा दास सुत महाराज बीरबर श्री
तीर्थराज प्रयाग के यात्रा सफल लेखितम्

इसके बाद जहाँगीर बादशाह का लेख है जिसमें उन्होंने फारसी अक्षरों में अपनी वंशावली लिखाई है। जो इस प्रकार है —

الله اکبر نورالدین محمد جہانگیر بادشاہ غازی - بادشاہ ابن

اكبر بادشاه غازي - ياحفيظ ابن همايون بادشاه غازي - ياحي ابن
بابر بادشاه غازي - يا قيوم ابن عمر شيخ مرزا - يا مقتدر ابن
سلطان ابوالسعيد - يا نور ابن سلطان محمد مرزا - ياهادي ابن
ميرانشاه - يابديع ابن امير تيمور صاحب قرآن يا قادر - احدالهي
شهر پورماه موافق ربيع الثاني ١٠١٤ -

इसका नागरी मे अक्षरान्तर इस प्रकार है।

"अल्लाह अकबर नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी, या हाफ़िज़ इब्न अक्बर बादशाह गाजी। या हफ़ीज़ इब्न हुमायूँ बादशाह गाजी। या हई इब्न बाबर बादशाह गाजी। या कैयूम इब्न उमर शेख मिरजा। या मुक्तदर इब्न सुलतान अबू सईद या नूर इब्न सुल्तान मुहम्मद मिरजा। या हादी इब्न मीरान शाह। या बदीय इब्न अमीर तैमूर साहेब कुरान या कादिर। अहद इलाही शहर पुर माह मुआफ़िक रबी उस्सानी १०१४

खुसरो बाग—शहर इलाहाबाद चौक से कुछ ही दूर पश्चिम सिरे के बड़ी सड़क पर खुल्दाबाद की एक सराय है। इसके चारो तरफ सत्रह बीघे के क्षेत्रफल में यात्रियों के ठहरने के लिए छोटे २ कमरे बने हुए हैं। जिसका उत्तर

खुसरो बाग

फाटक खुसरोबाग का विशाल और भीमकाय फाटक है। इसके पश्चिमी फाटक पर फारसी अक्षरों में यह पद्य लिखा है।

بفرمان شهنشاه جهانگیر - که ببدش ملکش از مه تا بماهی
تماشا این سرائے آسمان قدر

बफरमाने शाहन्शाह जहाँगीर कि बेबद मुल्कश अज मह ता ब माही बिना शुद ईं सराऐं आसमां कद्र

अर्थात—सम्राट जहाँगीर की आज्ञा से जिसकी सल्तनत आसमान से पाताल तक शोभायमान है। यह आसमान की तरह उच्च और गौरवशाली सराय बनाई गई।

खुसरो बाग के दक्षिणी फाटक के ऊपरी भाग में लिखा है।

بحکم حضرت شاهنشاهی خلافت پناهی ظل الهی نورالدین
محمد جهانگیر بادشاه غازی به اهتمام مرید خاص آقا رضا مصور
این بنائے عالی صورت اتمام یافت

बहुक्म हजरत शहंशाही खिलाफत पनाही जिल्ले इलाही नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी बइहतमाम मरीद खास आका रजा मुसव्विर ईं बिनाय आली सूरत इतमाम याफ्त।

अर्थात—शाहंशाह जहाँगीर की इजाजत से आका नाम के चित्रकार के खास प्रबन्ध से यह शिला भवन बन कर तैयार हुआ।

खुसरोबाग के अन्दर बीचो बीच एक दूसरे से कुछ थोड़े थोड़े दूर पर चार बड़ी इमारतें खड़ी हैं। इनके बीच में पत्थर के दो बड़े कुण्ड हैं, जिनमें फव्वारे बने हुए हैं। सबसे पूरब वाले इमारत में जो सिर्फ एक खण्ड की गुम्बददार इमारत है खुसरू की कब्र कही जाती है। इस पर ए पद्य लिखे हैं।

آه افسوس آسمان راسیرت بیداد شد
آرے آرے کا چون برظلم آمد داد شد

आह अफसोस आस्मा रा सारते बेदाद शुद।
आरे आरे कारे चू बर जुल्म आमद दाद शुद।

زندگی در خیمه بیرون از دیار خرمی
دید چون بنیاد عالم را خراب آباد شد

जिन्दगी दर खेमा बेरूँ अज दयारे खुर्रमी—
दीद चूँ बुनियाद आलम रा खराब आबाद शुद

(१) अर्थ :—अरे आसमान का अत्याचार करने का स्वभाव हो गया है। हाँ हाँ जब उसका काम अन्याचार के रूप में प्रगट हुआ तभी तो हाहाकार मचा। यह देख कर कि संसार की जड़ ढीली है, जीवन आनन्द के देश से बाहर निकल गया।

اهل اوباش اند آگه از فلک غدارت او
هرکجا زد شعلهٔ خاکسترش بر باد شد
گلبنے هرجا که بینی برگ ریز اندر پئے است
بلبل ایں باغ بودن مصلحت از یاد شد

अहले ऊ बाशद आगह अज फलक कह्दास ऊ—
हर कुजा जद शोलए खाकिस्तरश बरबाद शुद
गुल बुने हरजा कि बीनी बर्गरेज अन्दर पै अस्त
बुलबुले ईं बाग बूदन मसलहत अज याद शुद

(२) अर्थ —स्वतन्त्र विचार वाले आसमान की करतूत को खूब जानते हैं कि जिस जगह इसने आग लगाई वहाँ की राख तक बरबाद हो गई। जहाँ तुम गुलाब का पौधा देखोगे उसके पीछे पतझड़ लगी हुई है। ऐसे नाशवान बाग का बुलबुल (की तरह लोभी) होना व्यर्थ है।

گلعذارے را طراوت چیست کا خرخار مرگ
از پئے چاک قباصد سوزن فولاد شد
چوں لبم را نم حدیثے را کجا سوزن بہ آہ
مشکل است اماں جهاں تا عست دین معتاد شد

गुल अजारे रा तरावत चीस्त काखिर खार मर्ग।
अज पये चाके कबा सद सोजने फौलाद शुद
चूँ लब रानम हदीसे रा कि मी सोजद बआह।
मुश्किलस्त इम्मा जहाँ तादस्त ईं मौताद शुद

अर्थ —किसी रूप की कोमलता क्या है (अर्थात कुछ नहीं) जब कि अन्त में मृत्यु का काटा उसका जीवन रूपी वस्त्र फाड़ने के लिये, फौलाद की सैकड़ों सुइयों का रूप धारण कर लेता है। मैं ऐसी बातों को क्योंकर होंठों तक लाऊँ

जो शाह की अग्नि में जल रही है। मुश्किल तो यह है कि जब तक दुनिया है इसका यही स्वभाव है।

آن گل رعنا که بود آرائے گلشن صد دریغ
عندلیبان رابرنگ و بوئے اودل شاد شد
چاک پیراہن شد از خار قضا در باغ عمر
ہم زمین بگریست ہم از آسمان فریاد شد

आ गुले राना कि बूद आराय गुलशन सद दरेग़।
अन्दलीबा रा बरंगे बूय ऊ दिलशाद शुद
चाके पैराहन शुद अज़ ख़ारे क़ज़ा दर बागे उम्र।
हम अर्ज़ी बगिरीस्त हम अज़ आसमा फरियाद शुद

अर्थ :—हाय वह उत्तम फूल जो वाटिका की शोभा था, और उसके रंग तथा सौरभ से बुलबुलों का हृदय गद्‌गद् था। उसका आयु रूपी परिधान जीवन के उपवन में, मृत्यु के काँटों से फट गया, जिस पर पृथ्वी भी रोई और आकाश ने भी दुहाई दी।

شد قبا گر قامت مردم قبا در ماتمش
شاہ خسرو رابہ سوئے خلد چوں ارشاد شد
آں تن نازک کہ بروے بود پیراہن گراں
در تہ خاک جفا افسوس استعداد شد

शुद कबा गर कामते मरदुम क़बा दर मातमश।
शाह ख़ुसरो रा बसूये ख़ुल्द चूं इर्शाद शुद
आं तने नाज़ुक कि बरूये बूद पैराहन गरा।
दर तहे ख़ाके जफ़ा अफ़सोस इस्तदादे शुद

अर्थ :—लोगों के शरीर का वस्त्र उसके सन्ताप से शोक का वस्त्र हो गया। जब कि शाह ख़ुसरो को स्वर्ग की ओर जाने का हुक्म हुआ। वह कोमल शरीर, जिस पर पोशाक भारी मालूम होता था, दुख है कि अत्याचार की मिट्टी के नीचे दबने के लिये तैयार हो गया।

شد فریق رحمت حق چوں ولیٔ پاک بود
خاص درگاہ خدا اوہمدم اوتاد شد

سلمی ارشد سال فوتش فیض لائق بازگو
صد حلت زجان پاک او آباد شد

शुद गरीके रहमते हक़ चूं वलीय पाक बूद।
खास दरगाहे खुदा औ हमदमे औताद शुद
सलमी अरशद साल फौतश फैज लायक बाज़गो।
सुफ्फऐ जिन्नत जि जाने पाक ऊ आबाद शुद

अर्थ—वह परमात्मा की दया मे डूब गया, क्योंकि वह सिद्ध था, वह भगवान के नजदीक पहुँचा और महात्माओं का पंक्ति में शामिल हो गया। हे सलमी अरशद (कवि का नाम) उसकी मृत्यु के साल (की गणना अबजद के हिसाब से) 'फ़ैज लायक' शब्दों से होती है। जिसका अर्थ (अनुग्रह के योग्य है) फिर कहो कि 'उस पवित्र आत्मा से आबाद हो गया (मृत्यु का साल १०३१ हिजरी)।

जहाँगीर के पुत्र खुसरो जो बुरहानपुर में मारा गया था। उसका शव खुसरो पार्क में लाकर गाड़ा गया। इसके पश्चिम दूसरी इमारत दो खण्ड की है। इसमें जहाँगीर की लड़की सुलतानुन्निसा ने अपनी कब्र अपने जीवनकाल में ही बनवाई थी। इस इमारत के ऊपरी दरवाजे पर और उसके दोनो पार्श्व में फारसी के शेर लिखे हुये थे जो अब बहुत कुछ खण्डित हो गये हैं। किन्तु जो बचे हुये हैं वे इस प्रकार हैं—

وقت آنست کزین دارفنا درگذریم
کاروان رفته وما برسر راه سفریم
زاد رہ هیچ نه داریم چه تدبیر کنیم
سفر دور ودراز است ما و بیچاره ایم
پدرو مادرو فرزندو عزیزان رفتند
وه چه ما غافل و مسدیم چه اوته تماشریم
دمبدم میگذرند از نظرما یاران
این قدر دیده نداریم که برخود نگریم
خانه اصلی ما گوشهٔ گورستان است
خورم آن روز که مارخت ازین جا ببریم

گر همه مملکت و مال جهان جمع کنیم
ما بجز پیرهنی هیچ ز دنیا نبریم
بادشاها تو کریمی و رحیمی و غفور
دست ما گیر که درمانده و بی‌مال پریم
یارب از راه کرم عاقبت خاقانی
حشر گردان تو که من در طلب خواب و خوریم
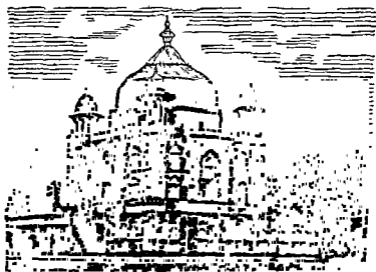
खुसरु की कब्र

(१) इस मृत्यु लोक से विदा होने का समय आ पहुचा। साथ के सब सगी साथी चले गये और हम अभी याता के आरभ ही मे हैं।

(२) हमारे पास सफ़र के लिए कुछ सामान नहीं है। क्या उपाय करें। सफ़र बड़ी लम्बी है और हम इतमीनान से बैठे हैं।

(३) माँ, बाप, पुत्र और दूसरे रिश्तेदार सब चले गये। हाय हम कैसे मस्त और लघुदर्शी हैं कि यह देखकर भी अपने जाने की कुछ तैयारी नहीं की।

(४) हर समय हमारे सामने से दोस्त चले जा रहे हैं। हमारी इतनी भी आँख नहीं है कि हम अपने को देख सकें।

(५) हमारा असली घर तो कब्रस्तान है। क्या अच्छा वह दिन होगा जब हम यहाँ से विदा होंगे।

(६) चाहे हम संसार भर की सम्पत्ति इकट्ठा कर लें, पर आखिर में सिवा एक वस्त्र कफन के और कुछ दुनियाँ से न ले जाएँगे।

(७) हे जगदीश्वर तू दयालु, कृपालु और क्षमाशील हो, हमारा हाथ पकड़ कि हम बिना पख के निराश्रय पक्षी के समान हैं।

(८) भगवान्। कृपा करके हमारा भला कर, क्योंकि हम यहाँ केवल आहार और निद्रा को पूरे करने में मशगूल हैं।

इस इमारत के पश्चिम तीसरी इमारत शाहबेगम की कब्र है। जो खुसरो की माँ थी। इसने अफीम खाकर आत्म हत्या की थी। इस भवन में तीन खंड हैं। इस पर निम्नांकित शेर लिखे हुये हैं—

بیگم که زعصمت زح رحمت آ است
اقلیم عدم زنور عزت اراست
سبحان الله زهے کمال عصمت
کز حسن عمل جهه جلت آراست

भावार्थ—बेगम ने अपने सतीत्व से भगवान के दया रूपी मुखमण्डल की शोभा बढाई और परलोक को अपने गौरव की ज्योति से सुसज्जित किया। अहो उसकी असीम पवित्रता की क्या तारीफ की जाय जिसने अपने सुकर्मों से स्वर्ग के पुर को उज्ज्वल कर दिया है।

सिरहानेवाली पट्टी पर लिखा है —

چوں چرخ فلک ز گردش خود آشفت
در زیر زمیں آئینه بنهفت
تاریخ وفات شاہ بیگم جستم
از عیب ملک بخلد شد بیگم گفت
الکتبه عبدالمشکیں فلیم جہانگیر شاہی

भावार्थ—जब आकाशरूपी काल चक्र घूमते घूमते परेशान हो गया तो उसने झुँझला कर एक दर्पण को पृथ्वी के नीचे छिपा दिया। शाह बेगम का मृत्यु किस वर्ष हुई उसका निर्धारित करने के लिये जब मैंने चेष्टा की तो परोक्ष से एक देवदूत ने कहा कि 'बेगम स्वर्ग में चली गई है।'

इनके अतिरिक्त नगर में मुसलमानों के कब्रस्तान हैं। खुल्दाबाद से देवगिरवा तक प्राचीन मनारों के चिन्ह पाये जाते हैं। मुसलमानों की सबसे पुरानी कब्र बहादुरगंज में मुहीउल्लाह की सन् १०६४ ई० की है। इसके बाद अठारवीं सदी की अनेक कब्रें हैं। जिनमें सबसे पुरानी दायरा शाह अजमल में शाह मुहम्मद अफ़ज़ल की सन् १७१२ ई० की है।

चौकगंज के उत्तर अंग्रेजों का भी एक बहुत बड़ा पुराना कब्रस्तान है। इसमें सबसे पुरानी कब्र लेफ्टनेंट कर्नल ए० डब्लू हियरसी का है जो किले के सब से पहिले कमान्डेन्ट थे और जो सन् १७६८ ई० में मरे थे।

कडा का अभिलेख—इस समय कड़ा में गंगा के तट पर एक किला का पुराना टीला है। उसके फाटक पर लिखा हुआ एक अभिलेख सन् १०३५ ई० का मिला है। यह कन्नौज के परिहार वंश के राना यशपाल के समय का है जो प्रसिद्ध जयचन्द से १७० वर्ष पहिले हुआ था। लेख इस प्रकार है।

संवत् १०९३
आषाढ सुदी १
अद्येह श्रीमत्कटे
महाराजाधिराज
श्री यश पाल
कौशाम्ब मण्डले पयहा
सग्रामे महत्तम
नुसमादिश निय था
यस्ते से कीय माथ
रवि कृष्य शासन
स्य प्रसादि मातम मन्य
स्त शस्ने हा मार हिर
म्ब प्रत्या दाया दिक
मस्वो पनैव स्यमिति
दश बन्धेन सह विकं
ठाल कृत........
दुरा यात्रा............

लेख खण्डित होने से पूरा पूरा अर्थ तो नहीं किया जा सकता। जहाँ तक समझा जा सका है इसका अर्थ यह है कि "सम्वत १०९३ में अषाढ सुदी प्रतिपदा का कट (कड़ा) के महाराज यशपाल ने कौशाम्बी मडल के अन्तर्गत पयहास (वर्तमान परास) गाँव में ऐसा आदेश दिया .

कड़ा से लगभग १० मील दक्षिण पश्चिम बड़ी सड़क पर कोहसिराज नाम के गाँव मे एक बहुत ही प्राचीन मस्जिद है जो सन् १३८४ ई० मे फीरोज तुगलक के समय में बनी थी। उस पर एक लेख है जिसका भावार्थ यह है कि फीरोज शाह की आज्ञा से हिसामुद्दीन हसन द्वारा यह मस्जिद सन् ७८६ हिजरी तदनुसार १३८४ ई० मे बनी।

कौशाम्बी—इस स्थान पर एक अभिलेख वहाँ के किसी राजा 'उग्र भैरो' का मिला है। जो इस प्रकार है—"परम भट्टार महाराजधिराज श्री उग्र भैरवस्य देमि चय"

दूसरा लेख इस प्रकार है—

"चन्द्र पद्म मनोज बाण धरणी
लकाकि ते वत्सरे
शोक पुण्य महतिले द्विज
वरे दु शासन पूजके।
चक्रे श्री मधु सूदनस्य—
विजयागार वर निर्म्मल।
श्री मच्छत्रपति सदा-
शुभमति श्री वासुदेव
आतमज शाने १५२१"

अर्थात् सम्वत १५२१ में शाका में द्विजवर दु शासन पुजारी के समय मे श्री वासुदेव के पुत्र श्रीमत छत्रपति ने इस श्रेष्ठ निर्मल विजय के स्थान को निर्माण किया।

तीसरा प्रसिद्ध अभिलेख अभी नवम्बर १९५० में प्रयाग विश्वविद्यालय के श्री गोवर्द्धन राय शर्मा को उत्खनन समय मिला है। यह शिला चित्तीदार लाल पत्थर की है। बीच में चक्र बना हुआ है और आस पास त्रिरत्न तथा स्वस्तिक

बना हुआ है और दो पंक्ति का कुशाण कालीन ब्राह्मी अक्षरों में लेख इस प्रकार है :—

भयंतस धरस अंतवासिस भिदस फलगस बुधवासे थोपितासाम सब बुधान पुजाएँ शिलाकार—

शिला के लेख की ऊपरी पंक्ति के दो अंतिम अक्षर टूट गये हैं। और एक स्थान पर 'य' का प्रयोग किया गया है और फलत इस लेख में 'भदंत' के स्थान पर भयंत हो गया है। इसका भावार्थ इस प्रकार है। "इस शिला पट्ट को भदन्त धर के शिष्य फगलस ने इस स्थान पर जहाँ पर भगवान बुद्ध रहे थे सम्पूर्ण बुद्धों की पूजा के लिये निर्मित कराया"। इसके अतिरिक्त और भी कई सुन्दर मूर्तियाँ इस उत्खनन से प्राप्त हुई हैं।

पभोसा की पहाड़ी— तहसील मझनपुर में जमना के तट पर पभोसा की पहाड़ी है इसमें एक गुफा बनी हुई है। इसके द्वार पर बाईं ओर बाहर की ओर सात पंक्तियों में एक महत्वपूर्ण अभिलेख है जिससे इस गुफा के निर्माता का पता चलता है। लेख इस प्रकार है—

राजा गोपाली पुत्रस, बहसति मित्रस, मातुलेन गोपालीया, वेहिदरी पुत्रेन आसाढ सेनेन लेन कारित (उदाकस) दस में स्वच्छकटे कश्यपीय अरह

(ता) नं ो. ि (।।)

इसका अर्थ यह है कि गोपाली के पुत्र राजा बहसति मित्र के मामा वैहीदरी के पुत्र आसाढ सेन ने ओदक के दसवें वर्ष में कश्यप हंतों के रहने के लिए यह गुफा बनवाई।

दूसरा लेख गुफा के भीतर इस प्रकार है।

अही छत्राया राज्ञो शोणकायन्त
पुत्रस्य बंग पालस्य
पुत्रस्य राज्ञा तेवन्ती पुत्रस्य
भागवतस्य पुत्रेण
वहीदरो पुत्रेण आसाढ सेनेन

अर्थात्—यह गुफा अहिछत्र के राजा सोणकायन के पुत्र बंगपाल, उनके पुत्र तिवनी, उनके पुत्र भागवत उनके पुत्र वैहीदरी उनके पुत्र आसाढ सेन ने बनवाई।

भूँसी—पुरानी भूँसी में एक स्थान 'हस कूप और हस तीर्थ' है जिसकी चर्चा मत्स्य तथा वाराह पुराण में आई है। यह एक पक्का कुँआ है जिसमे एक लेख इस प्रकार है —

"हस प्रपत यती, हस रूपी जगे, नाथ सदास, तत्रस्नाने पाते हस गतिलभीत"

अर्थात् इम हस रूपी बावली म स्नान करने और इसके जल पीने से मनुष्य हसगति (मुक्ति) का पाता है।

गढ़वा——यह स्थान परगना बारा इलाहाबाद शहर से कोई २५ मील दक्षिण पश्चिम शकरगढ रेलवे स्टेशन क पास है। पहिले यह स्थान जगलों से घिरा था। सबसे पहले राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' और उसके बाद भारत क पुरातत्व विभाग के जन्म दाता जनरल कनिंघम ने इस स्थान की छान बीन की। इसका फल यह हुआ कि पत्थर के स्तम्भों पर गुप्तकाल के प्राचीन लेख मिले है। उनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) पहिला लेख सन् १८७२ ई० में उक्त राजा साहेब को उपलब्ध हुआ। यह लेख कुमार गुप्त के समय का बताया जाता है। इसमें दस दीनारों के दान का उल्लेख है।

(२) दूसरा लेख सन् १८७३ ई० मे जनरल कनिंघम को प्राप्त हुआ था। यह सस्कृत श्लोकों में चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय का है। इसकी पक्तियाँ टूट गई है। जो कुछ शेष रह गई हैं। उनसे ब्राह्मणों को दस दीनार (स्वर्ण मुद्रा) के दान देने की चर्चा है। इसमें मगध क राजधानी पाटलिपुत्र का भी नाम है।

(३) तीसरा अभिलेख भी कुमारगुप्त के समय का है। इसमें बारह दीनारा के दान की चर्चा है।

(४) यह लेख एक कुआँ में मिला था। इसमें कुल २७ पक्तियाँ हैं। जिनका अधिक भाग नष्ट हो गया है। यह लेख भी कुमारगुप्त के समय का है, इसम सदाव्रत के लिए कुछ द्रव्य और जमुना तट के दक्षिणी भाग को दान मे दिया गया है।

(५) इस अभिलेख का आदि भाग कट गया है। इसम लिखा है कि गुप्त सम्वत् १४८ तदनुसार (४६८ ई०) के माघ महीने की २१वीं तिथि को अनन्त स्वामी (विष्णु) के गध और धूप इत्यादि क लिये बारह दीनार दान दिये गये। इन सब उपरोक्त अभिलेखों के अन्त मे लिखा है, 'जो इस दान में हस्तक्षेप करेगा वह पन्च महापातक का भागी होगा।' ये सब अभिलेख इस समय कुछ कलकत्ता और कुछ लखनऊ के अजायबघर में हैं।

भीटा—तहसील करछना के अन्तर्गत भीटा नाम के गाँव में जो शहर इलाहाबाद से ११ मील दक्षिण पश्चिम जमुना के किनारे स्थित है। वहाँ निम्नलिखित शिला लेख खुदाई के बाद उपलब्ध हुये हैं—

"ओम नमो बुधाय भगवतो सम्यक् । सम बुद्धस्य स्वमतविरोधस्य इमां प्रतिमा प्रतिष्ठा पिता। भिक्षु बुद्ध मित्रेण सम्वत् १०० २०६ महाराज श्री कुमार गुप्तस्य राज्य ज्येष्ठ मासादि । सर्व दु ख प्रहरणार्थम"

अर्थात्—भगवान बुद्ध को सम्यक नमस्कार जो परम ज्ञानी हैं और जिनके मत का विरोध नहीं हुआ है ऐसे बुद्ध भगवान की यह मूर्ति भिक्षु बुद्ध मित्र ने श्री कुमार गुप्त के राज्यकाल में सम्वत १२६ के ज्येष्ठ महीने की १८वीं तिथि को सब दुखों के दूर रहने के लिये स्थापित की।

यह लेख बुद्ध भगवान की मूर्ति पर खुदा हुआ है। बुद्ध भगवान की यह एक पूरी मूर्ति चौकी पर ध्यानावस्था में है। उसी मूर्ति के नीचे उपर्युक्त लेख लिखा हुआ है।

इसके अतिरिक्त ३ ४ शताब्दी ई० पू० से लेकर ६ १० ईसवी तक के ब्राह्मी और गुप्त काल की लिपि में देवताओं और कुछ मंत्रियों के सम्बन्ध में कई अभिलेख मिले हैं। इसमें दो लेख नमूने के तौर पर दिये जा रहे हैं। एक पर लिखा है—

श्री विध्या वर्धन महाराजस्य महेश्वर महासेनापति श्रेष्ठ राजस्य कृपवनस्य गौतमि पुत्रस्य।

दूसरा लेख भगवती लक्ष्मी के मूर्ति के नीचे इस प्रकार लिखा है—

महाश्वपति महादण्ड नायक विष्णु रक्षित पादानुगृहीत कुमारामात्याधिकरणस्य

इसी भीटा से सम्बन्धित सुजावन देवता का मंदिर जो अब तक जमुना नदी में स्थित है उस पर फारसी में जो लेख है इसका अर्थ है कि "शाइस्ता खाँ की आज्ञा से यह विचित्र, विशाल, सुन्दर तथा अत्यन्त ऊँचा भवन सन् १०५५ हिजरी सन् १६४५ ई० में मुहम्मद शरीफ के प्रबन्ध से बन कर तैयार हुआ।"

शहर इलाहाबाद चौक से कुछ ही दूर ग्रैन्ड ट्रंक रोड पर खुल्दाबाद की सराय है। इसके पश्चिमी फाटक पर फारसी में एक पद्य लिखा हुआ है। खुसरो बाग के दक्षिण फाटक पर कुछ फारसी पद्य लिखे हुए हैं। खुसरो बाग के बीचो बीच एक दूसरे से कुछ दूर पर चार बड़ी इमारत हैं। इन पर भी फारसी के बहुत से फारसी के पद्य लिखे हुए हैं।

प्रयाग के ऐतिहासिक स्थान

जन साधारण में ऐसी धारणा प्रचलित है कि इस शहर या जिला का नाम इलाहाबाद, अकबर बादशाह ने रक्खा है, किन्तु खोज करने से पता चलता कि इलाहाबाद (प्रयाग) का नाम विश्व की सर्वप्रथम और सबसे प्राचीन पुस्तक वेद में भी आया है। मनु महाराज के एक पुत्री हुई। उसका नाम उन्होंने इला रखा। जब वह बड़ी हुई तो मनु ने इस लड़की की शादी राजा सोम के पुत्र बुध के साथ करके दहेज में उनके रहने बसने के लिये कुछ भूमि दी। कहते हैं इस दी हुई भूमि का नाम 'आर्यइला' पड़ा, जिसको आज कल अरइल कहते हैं। उस भूमि में इला अपने पति बुध के साथ रहने लगी जहाँ इला और बुध रहते थे उस स्थान का नाम 'इलाबास' पड़ गया। कालान्तर में इला और बुध ने एक राज्य बना लिया। उस राज्य का नाम 'प्रतिष्ठान' पड़ गया। इस प्रकार इलाबास 'प्रतिष्ठान' राज्य की राजधानी हो गई।

इला के एक प्रतापी पुत्र पुरूरवा पैदा हुआ। जिसने देश विदेश जीत कर अपनी पैतृक राज्य की सीमा बढ़ा ली जाने से उसकी राजधानी इलाबास को लोग प्रतिष्ठानपुर कहने लगे। प्रतिष्ठानपुर उस समय वर्तमान इलाहाबाद झूँसी-और नैनी के आस पास तक बसा था।

इलाहाबाद का नाम 'इलाबास' और 'प्रतिष्ठानपुर' आज से सहस्रों वर्ष पहिले था। इसके पश्चात इसका नाम 'प्रयाग' पड़ा। 'प्र' का अर्थ होता है कि 'बहुत' और याग का अर्थ है 'यज्ञ' या 'होम'। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ अनेकों ऋषियों-मुनियों ने आकर यज्ञ या तपस्या की थी।

उत्तराखण्ड के प्रधान सांस्कृतिक केन्द्र प्रयागराज का इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। ईसवी शताब्दी के लगभग ५०० वर्ष पहिले तक के अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण भग्नावशेषों के गर्भ से अब प्राप्त हो चुके हैं। कौशाम्बी, भीटा, गढ़वा, आदि स्थानों का महत्व अब पहिचान लिया गया है हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में तो प्रयागराज का महत्व स्वीकार किया ही गया था, बौद्ध

कालीन तथा उसके बाद के युग में भी प्रयाग कितनी ही सभ्यताओं तथा राज्यों के निर्माण और विनाश का रंगमंच रहा है

इलाहाबाद जिले में स्थित अनेक ऐसे प्राचीन स्थान हैं जिनकी खोदाई हो चुकी है। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' तथा जेनरल कनिंघम के प्रयास से खोदाइयों का जो सिलसिला आरम्भ हुआ वह अब भी किसी न किसी रूप में चल रहा है। कौशाम्बी की पिछली खोदाई से घोषिताराम के जिस इतिहास प्रसिद्ध स्थान का पता चला है उसने इस स्थान का महत्व संसार की दृष्टि में बहुत अधिक बढ़ा दिया है। कौशाम्बी के अतिरिक्त भीटा, कड़ा, गढवा, पबोसा लाच्छागिरि, सुजावन देव आदि अनेक ऐसे स्थान हैं जहाँ पर खोदाई होने से पुरातत्व सामग्री प्राप्त होने की आशा है। अब तक कई स्थानों की खोदाई हो चुकी है, कई स्थानों की खोदाई होने वाली है और कई ऐसे स्थान भी हैं जिनकी ओर अभी तक पुरातत्व विभाग का ध्यान पूरी तरह नहीं गया है।

अब आप कौशाम्बी भीटा और गढवा से परिचय प्राप्त करें।

कौशांबी—इलाहाबाद जिले का एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर था जो बहुत दिनों तक गर्भ में पड़ा हुआ था। पुरातत्व विभाग के सफल प्रयास से उत्खनन करके इस गड़े हुए प्राचीन नगर को फिर से संसार की दृष्टि के सामने उपस्थित कर दिया गया है। सच बात तो यह है कि इलाहाबाद के ऐतिहासिक महत्व को इसी स्थान ने बढ़ाया है। कौशाम्बी की चर्चा संस्कृत, अंग्रेजी, सिंहाली, डेनिश, चीनी, फ्रेंच, जर्मन और पाली आदि कतिपय भाषाओं की इतनी पुस्तकों में आई है कि उनके उल्लेख मात्र से ही एक पुस्तिका बन सकती है।

नगेंद्रनाथ घोष द्वारा लिखी हुई 'अर्ली हिस्टरी आफ कौशाम्बी' में लिखा है कि शतपथ और गोपथ ब्राह्मण में इस स्थान को रियासीट बताया गया है। महाभारत आदि पर्व अध्याय ६८ श्लोक ४४ और मत्स्य पुराण के अनुसार यह स्थान बहुत ही पुराना है। इसका नाम कौशाम्बी इसलिये पड़ा कि यह राजा कुशाम्ब का बसाया हुआ है। जो चन्द्रवंशी नरेशों में पुरुरवा से दसवीं पीढ़ी में हुआ था। लेकिन इस स्थान का महत्व अर्जुन की आठवीं पीढ़ी के नेमचन्द के समय में अधिक हुआ। इसका अंतिम राजा क्षेमक था।

हस्तिनापुर कट कर जब बह गया तब से नेमचन्द इसी स्थान को अपनी राजधानी बनाया। बाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग ५२ के अनुसार इस

नगर का नाम वत्स या वत्सपटन था। भगवान राम बनवास के समय शृगवेरपुर से गंगा पार कर के प्रयाग की ओर आये थे, इस स्थान का नाम रामायण में वत्सदेश लिखा है। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। कहा जाता है कि पाण्डवों ने अपने अज्ञातवास के तेरह वर्ष इसी स्थान में गुजारे थे।

इस समय जिसे हम कौशाम्बी के नाम से जानते हैं उसका नाम गढवा था जो गढ का अपभ्रंश मात्र मालूम होता है। महाभारत के अनुसार इस गढ का निर्माण उपरिचर वसु के पुत्र कुशाम्ब ने कराया था। रामायण का दावा है कि इस गढ को कुश के पुत्र कुशाम्ब ने बनवाया था। पुराणों में इसके निर्माण के विषय में मतभेद है।

बोद्धो के प्राचीन पुस्तक महावंश' और 'ललित विस्तर' में कौशाम्बी का नाम भारत के १६ बडे नगरों में गिनाया गया है। भगवान बुद्ध ने अपने परिव्राजक जीवन का छठवाँ और नवाँ वर्ष कौशाम्बी में बिताया था।

बाणभट्ट द्वारा लिखी हुई 'रत्नावली नाटिका', कालिदास द्वारा लिखी हुई पुस्तक 'मेघदूत' और भास द्वारा लिखी हुई पुस्तक 'स्वप्न वासवदत्ता' में राजा उदयन को चर्चा आई है। इसी राजा उदयन से इस स्थान का अधिक सम्बन्ध समझा जाता है।

उदयन कौन थे इस पर प्रकाश डालना आवश्यक है। महाभारत युद्ध के प्राय: एक शताब्दी बाद हस्तिनापुर गाँव बह गया, तब पाण्डवों के वंशजों ने वहाँ से अपनी राजधानी हटा कर जमुना किनारे स्थापित किया। इसी वत्स जनपद की राजधानी होने का गौरव इसी गढवा को मिला। इसी वंश के निचक्षु राजा की सत्रहवीं पीढी में महाराजा उदयन का जन्म ५६३ ई० पू० हुआ था। उसी ने अवन्ति के राजा चण्ड प्रद्योत की राजकुमारी वासवदत्ता से विवाह किया। इसकी कथा सरित सागर मे वर्णित है।

कहते हैं, बुत बोलते हैं। पुराने खण्डहरों के आँचल में कभी कभी ऐसे ऐसे अनमोल रत्न प्राप्त हो जाते हैं जिनके प्रकाश में सैकड़ों वर्ष का गौरवशाली इतिहास चमक उठता है। कौशाम्बी में घोषिताराम सम्बन्धी ऐसा ही लेख पिछले वर्ष मिला था। प्रयाग के आसपास के सहस्रों वर्ष प्राचीन खण्डहरों और अवशेषों में जाने कौन कौन सी महत्वपूर्ण चीजें छिपी पड़ी हैं। जनता और

जनजीवन के नायकों का ध्यान इस ओर जितना शीघ्र आकृष्ट होगा, इस प्राचीन क्षेत्र के ध्वसावशेषों का जीर्णोद्धार उतना ही शीघ्र होगा।

सर्व प्रथम कौशाम्बी का ऐतिहासिक वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अधिक विस्तार के साथ किया है। कौशाम्बी के विषय में वह लिखता है—

"इस देश का घेरा ६००० ली है। राजधानी ३० ली के विस्तार में है। ...इस नगर में बौद्धों के १० संघाराम हैं, जो अब उजड़ गए हैं। ३०० के लगभग हीनयान सम्प्रदाय के पुजारी हैं। ब्राह्मणों के ५० देव मन्दिर हैं। उनके अनुयायियों की संख्या भी अधिक है। नगर के एक पुराने महल में एक बड़ा विहार है। इसमें एक मूर्ति चन्दन की स्थापित है, जिसके ऊपर पत्थर का एक बड़ा गुम्बद है। यह मूर्ति राजा उदयन ने मुदगलयन पुत्र के द्वारा बुद्ध के जीवन काल में ठीक उन्हीं के अनुरूप बनवाई थी। इस विहार से १०० कदम पूर्व चार पुराने बौद्धों के चलने और बैठने के चिन्ह हैं। उसके पास ही एक कूप और स्नानागार है जिसको बुद्ध भगवान काम में लाया करते थे। नगर के दक्षिण पूर्व में पास ही एक और संघाराम है। यह वह स्थान है जहाँ गोशिरा का एक विचित्र उद्यान है। यहाँ अशोक का बनवाया हुआ एक ऊंचा स्तूप है। यहाँ भगवान बुद्ध ने कई वर्ष रह कर धर्मोपदेश दिया था। यहाँ एक स्तूप है जिसमें बुद्ध भगवान के केश और नख जड़े हुए हैं।"

कौशाम्बी की ऐतिहासिकता और प्राचीनता समझ लेने के बाद यह बात भी जानना आवश्यक है कि यह स्थान कहाँ है। पुरातत्व के दो धुरन्धर विद्वान अपने जीवन भर इसी में उलझे रहे कि कौशाम्बी कहाँ है। विन्सेन्ट स्मिथ इतिहासकार का कथन था कि कौशाम्बी मध्यप्रदेश में सतना के निकट थी। परन्तु जनरल कनिंघम जिन्हें भारतीय पुरातत्व का जन्मदाता कहना चाहिये, इसी निष्कर्ष पर डटे रहे कि वह प्रयाग के ही निकट थी, और वही स्थान है जहाँ आजकल प्रयाग विश्वविद्यालय खुदाई कर रहा है।

दोनों व्यक्ति इस कोटि के विद्वान थे कि इनके विभिन्न मतों का सहसा विरोध करना आसान बात न थी। फलस्वरुप यह विवाद बहुत दिनों तक चलता रहा। और मतभेद अपनी जगह पर कायम था। कुछ दिनों बाद सिराथू के निकट कड़े में एक शिला लेख मिला जो कनिंघम के मत की पुष्टि करता था। बाद में इसी कौशाम्बी के निकट जहाँ आजकल खुदाई हो रही है मेवहड़ ग्राम

में एक शिलालेख मिला जिसके आधार पर भारतीय पुरातत्व विभाग ने कनिंघम के सर सेहरा बाँध दिया।

कौशाम्बी के वर्तमान स्थान का पता लगाने के लिये किनने और किस प्रकार प्रयास हुए अब इस पर प्रकाश डालना आवश्यक है। सन् १६३५ ई० में भारत के पुरातत्त्व विभाग का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ था, उसने यहाँ की खोदाई में हाथ भी लगाया था और बहुत सम्भव था कि यदि वह कार्य चालू रहता तो आज से बहुत पहिले ही महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाश मे आती। सन् १६३७—३८ ई० में भारतीय पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष दयाराम साहनी के कार्यकाल में यहाँ विधिवत उत्खनन कार्य प्रारम्भ हुआ, और जहाँ अब स्तम्भ खड़ा हुआ है, उस स्थान की थोड़ी बहुत खुदाई हुई और कार्य रुक गया किन्तु उसने कई जमीनों को इसलिए किसानों से लेकर अपने अधिकार में कर लिया कि उसे जब सुविधा होगी तब खोदाई करेगा।

सन् १६४८ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय ने भारत सरकार से उत्खनन की आज्ञा प्राप्त की। सन् १६४६ ई० के जनवरी मास में श्री गोवर्धनराय शर्मा की का देख रेख में उत्खनन का कार्य आरम्भ किया गया, तीन महीने तक खुदाई हुई। खनन के परिणाम स्वरूप कुछ उपयोगी वस्तुएँ मिलीं पर कोई उल्लेखनीय वस्तु नहीं प्राप्त हुई। सन् १६५० ई० के नवम्बर मास में उक्त शर्मा जी ने फिर उत्खनन कार्य शुरु किया। इस बार संसार का चकित कर देने वाला शिला प्राप्त हुआ है। शिला चित्तीदार लाल पत्थर की है, बीच में चक्र बना हुआ है और आस पास त्रिरत्न तथा स्वस्तिक बने हुए हैं। और दो पंक्ति का कुषाण कालीन ब्राह्मी अक्षर में लेख इस प्रकार है।

"भयतस धरस अनेवासिस भिचुस फलगस बुधवासे पोपिला राम सव बुधान पुजाए शिलाक र"—शिला के लेख की ऊपरी पंक्ति के दो अन्तिम अक्षर टूट गये हैं। और एक स्थान पर 'द' के बजाय 'य' का प्रयोग किया गया है। जिससे भदन्त की जगह भयन्त हो गया है

इसका भावार्थ इस प्रकार है—

"इस शिलापट्ट का भदन्त धर के शिष्य फलगस ने इस स्थान पर जहाँ भगवान बुद्ध रहे थे सम्पूर्ण बौद्धों के पूजा के लिये निर्मित कराया।" इसके अतिरिक्त और भी कई सुन्दर मूर्तियाँ इस उत्खनन से प्राप्त हुई हैं।

अब यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गई है कि वास्तविक ऐतिहासिक कौशाम्बी का स्थान यही है।

वर्तमान कौशाम्बी इलाहाबाद शहर से ३८ मील की दूरी पर यमुना के उत्तरी तट पर परगना करारी में स्थित है। इस समय वहाँ दो गाँव कोसमइनाम और कोसमखिराज के नाम से आबाद हैं। इन्हीं के निकट प्राचीन कौशाम्बी नगर और उसके दुर्ग के चिन्ह पाये जाते हैं, जिनको वहाँ के लोग 'गढवा' कहते हैं। वहाँ जाने वालों को चाहिये कि इलाहाबाद से कानपुर रोड पर लगभग ११ मील चल कर पूरामुफ्ती थाने के पास मुड़कर मनौरी स्टेशन को और जाने वाली सड़क के सरायआकिल तक बस या मोटर से जाय, जिसका किराया डेढ रुपया है। सरायआकिल से चार पाँच रुपया देकर इक्के से कौशाम्बी के भीटों तक पहुँचा जा सकता है। प्रायः दूर से ही कौशाम्बी के तूदे दिखाई देने लगते हैं। खेतों के किनारे बनी हुई राह से टीले पर चढना होता है। यही है कौशाम्बी।

भीटा—इलाहाबाद शहर से रेल की एक लाइन बम्बई को जाती है, उसी लाइन पर लगभग १२ मील पर इरादतगंज एक स्टेशन है। इससे डेढ मील पश्चिम दक्खिन तीन विशालकाय टीले लगभग ४५० बीघे में फैले हुए हैं। इसी से मिला हुआ ग्राम भीटा कहलाता है। इलाहाबाद शहर से मोटर पर जाने के लिये घूरपुर थाना तक १५ मील पक्की सड़क है। वहाँ से दो मील कच्ची सड़क है। रेल से आनेवाले यात्री को इरादतगंज स्टेशन पर उतरना पड़ता है। वहाँ से दो मील कच्ची सड़क के लिये इक्के मिल जाते हैं।

बहुत दिनों तक यह स्थान उपेक्षित था। लोगों को इसकी प्राचीनता का कुछ भी ज्ञान नहीं था। सन् १८५७ ई० के राज्यक्रान्ति के पश्चात् जब जी० आई० पी० की रेलवे लाइन बनाई जाने वाली थी, उस वक्त ईंटों की खोज में इस स्थान को ठीकेदारों द्वारा खोदा गया। खोदने पर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि इस पृथ्वी के गर्भ में बड़े बड़े विशाल प्राचीन राजभवनों के भग्नावशेष मौजूद हैं। उक्त ठीकेदारों ने इसकी खबर रेलवे अधिकारियों को दिया। उस समय से भारत के पुरातत्व विभाग के अधिकारियों का ध्यान इस स्थान की ओर गया।

पहले पहल सन् १८७२ ई० में इसके एक टीले की खुदाई जनरल कनिंघम

ने कराई थी। उस समय जो वस्तुएँ वहाँ उपलब्ध हुई उससे उक्त जनरल साहब ने यह अनुमान लगाया था कि इस स्थान का पुराना नाम 'बीथाव्यपटन' था।

उसके बाद सन् १६१० ई० में सर जान मार्शल ने दूसरा टीला खोदवाया तो एक मिट्टी की मुहर मिली जिसमें इस स्थान का नाम 'विछग्राम' पाया था। जनरल कनिंघम को खोदाई के फलस्वरूप यहाँ एक प्राचीन नगर तथा गढ आदि के खडहर, बहुत सी प्राचीन वस्तुएँ और कुछ शिलालेख प्राप्त हुए थे। उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

गौतम बुद्ध की एक मूर्ति पर खुदा हुआ एक अभिलेख सन् ५०६ ई० का मिला जिसके नीचे यह लिखा है। 'ओम नमो बुधान भगवतो सम्यक। समबुद्धस्य स्वमता विरोधस्य इयाँ प्रतिमा प्रतिष्ठापिता। भिक्षु बुद्ध मित्रेण सम्वत १२९ महाराज श्री कुमार गुप्तस्य राज्ये ज्येष्ठ मासादि। सब्वे दुग्ख प्रहरणार्थम।"

अर्थात्—भगवान बुद्ध को सम्यक नमस्कार, जो परम ज्ञानी हैं और जिनके मत का विरोध नहीं हुआ है, ऐसे बुद्ध भगवान की यह मूर्ति भिक्षु मित्र ने श्री कुमार सम्भर के राज्यकाल में सम्वत १२९ के जेष्ट महीना के १८ वीं तिथि को सब दुखों से दूर रहने के लिए स्थापित की।

भीटा गाँव से मिले हुए बीकर गाँव मे 'माई चरडी' का एक मन्दिर है। उसके पास सम्वत १६८५ का एक लेख ६ पक्तियों का मिला है। यहाँ पर विष्णु अवतार की मूर्तियाँ बनी हैं। सारीपुर गाँव मे एक शिलास्तम्भ के एक खण्ड पर 'कुमार गुप्त महेन्द्र' का नाम और कुछ पक्तियों का एक लेख मिला है।

सुयमुन देव—इस प्राचीन नगर के चिन्ह उत्तर की ओर स्थिति वर्तमान सुयमुन देव के मन्दिर से शुरु होते हैं और लगभग २ मील के विस्तार में फैले हुए हैं। सुयमुन देव का प्राचीन मन्दिर पहले इस नगर की उत्तरी सीमा पर था, जो अब कालान्तर में यमुना को धारा से कटकर अब यमुना के बीच मे हो गया है।

पहिले यह सुयमुन देव का मन्दिर था, किन्तु मुसलिम काल में इलाहाबाद के सूबेदार शाइस्ताखाँ ने सन् १६४५ ई० मे इसको तुड़वाकर अठपहल बैठक बनवाई। ऐसा मालूम होता है कि बाद में फिर हिन्दुओं ने उस पर कब्जा कर लिया और वहाँ एक मूर्ति स्थापित कर दी। यहाँ आजकल कार्तिक की यमद्वितीया का

मेला लगता है। मन्दिर के निचले भाग में पाचों पाण्डवों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

इस मन्दिर के दक्षिण की ओर यमुना के किनारे देवरिया गाँव है, उससे दक्षिण लगभग पौन मील तक एक बड़े तालाब के पश्चिम किनारे पर कुछ भूमि डीह के नाम से पड़ी हुई है। इसीसे मिला हुआ प्राचीन गढ का चिन्ह मिलता है। गढ के भीतर खुदाई करने पर मौर्यकाल से लेकर कुशान, गुप्त तथा शुंग काल तक की इमारतों के बहुत से चिन्ह मिलते हैं। इस गढ के अन्दर एक बाजार भी था जिसकी दुकानें एक ही पंक्ति में थीं। इसके पास ही बड़े बड़े भव्य मकानों के चिन्ह पाये जाते हैं।

जनरल कनिंघम के बाद सर जान मार्शल ने यहाँ खुदाई कराई थी जिसके फलस्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की मुहरें व छाप मिले हैं। इनके लगभग ३ शताब्दी ई० पूर्व से लेकर ६-१० ई० तक के कहे जाते हैं। इनमें कुछ तो ब्राह्मी लिपि और कुछ गुप्तकाल की लिपि में है। जिनमें देवताओं राजाओं और उनके कुछ मन्त्रियों के विषय में लेख हैं। इन अभिलेखों में गामिन, गौतमी, पुनवृषध्वज, शिवमघ, और वशिष्ठ पुत्र भीमसेन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इतनी सामग्रियों के उपलब्ध होने पर भी इस स्थान के इतिहास का ठीक ठीक पता नहीं लगा। तीन टीलों में से दो टीलों की खुदाई का परिणाम ऊपर बता दिया गया है। अभी तीसरे टीले में हाथ ही नहीं लगाया गया। सम्भव है कि उसकी खुदाई से इसके इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़े।

गढ़वा—यह स्थान जिला इलाहाबाद के परगना बारा में शहर से २५ मील दक्षिण शंकरगढ रेलवे स्टेशन से लगभग ६ मील पर स्थित है। मोटर और रेलवे दोनों ही से यात्री यहाँ पहुँच सकता है। रेल से जाने वाले को शंकरगढ स्टेशन पर उतरना पड़ता है। वहाँ से तीन मील पैदल जाना पड़ता है। मोटर का रास्ता इस प्रकार है। शहर से यमुना पुल रोड से दाहिनी ओर जसरा होते हुए बारा गाँव तक १७ मील पक्की सड़क है। यहाँ से शंकरगढ होकर गढवा तक ११ मील कच्ची सड़क है।

गुप्तवंशीय राज्यकाल में इसका नाम भट्टग्राम था, जो आजकल भट्टगढ अथवा बरगढ के नाम से एक छोटा सा गाँव मात्र रह गया है। इस गढ की वर्तमान दशा यह है कि छोटी छोटी पहाड़ियों से घिरी हुई एक भील है। उस

भील के बीच में एक पचकोना किला बना हुआ है। कहा जाता है पहले इस गढ के चारो तरफ पानी था किन्तु अब पानी केवल किले के पश्चिम ओर रहता है और तीन ओर खुला है। इस किले का फाटक दक्खिन की तरफ है और इसके चारो कोनों पर चार बुर्ज बने हुए हैं।

ऐसा प्रसिद्ध है कि इस हाते को शकरगढ के बघेल राजा विक्रमादित्य ने सन् १७५० ई० में बनवाया था। इसमें विष्णु के दस अवतारो का एक मन्दिर है। इसमे एक संयुक्त मूर्ति, ब्रह्मा विष्णु और शिवजी की है। यह मूर्तियाँ खोदाई में मिली थीं।

इससे मिला हुआ एक दूसरा मन्दिर है जिसको तत्कालीन राजा बारा के प्रधान मन्त्री ठाकुर रणपाल श्रीवास्तव कायस्थ ने बनवाया था। इस मन्दिर से थोड़ी दूर पूरब की तरफ दो पुरानी बावलियाँ बनी हुई हैं जो अब बिलकुल बेमरम्मत पड़ी हुई हैं।

पहले यह स्थान घनीभूत जगलों से घिरा हुआ था, और किसी को इसका कुछ पता नहीं था। सबसे पहिले राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' ने कई बार वहाँ जाकर खोज की। उन्हें गुप्त कालीन अनेक पुराने अभिलेख उपलब्ध हुए। एक लेख उक्त राजा साहेब को सन् १८७२ ई० में मिला था जो कुमारगुप्त के समय का बताया जाता है, जो चन्द्रगुप्त द्वितीय का पुत्र था और सन् ४१८ ई० में हुआ था। इस अभिलेख में दस दीनारों के दानो का उल्लेख है।

दूसरा लेख सन् १८७३ ई० में जनरल कनिंघम को मिला था, जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय का है। इसमें ब्राह्मणो को दस दीनार (स्वर्ण मुद्रा) दान देने का उल्लेख है। इसी प्रकार ३ अभिलेख और प्राप्त हुये हैं जिसमें केवल क्रम से १२ दीनारों के दान का चर्चा है, दूसरे से सदाव्रत देने के लिए कुछ दीनार और कुछ भूमि के दान का उल्लेख है। तीसरे अभिलेख में भी अनन्त स्वामी भगवान विष्णु के भोग आदि लगाने के लिए बारह दीनार दान का उल्लेख है। इसमें यह भी लिखा है कि जो इस दान में हस्तक्षेप करेगा वह पच महापातक का भागी होगा।

पुरा तत्वविभाग वालो का ऐसा अनुमान है कि यह स्थान पहिले बौद्धों का विहार रहा होगा, जिसे बाद में ब्राह्मणों ने देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित करके मन्दिर में परिवर्तित कर दिया और उसकी रक्षा के लिए एक गढ बनवा दिया।

खैरागढ़—इलाहाबाद शहर से पूर्व की ओर ईस्ट इण्डियन रेलवे का एक स्टेशन मेजा रोड है। इस स्टेशन से दक्षिण पश्चिम को एक कच्चा सड़क कोहड़ार को गई है। स्टेशन से लगभग ७॥ मील पर सड़क के दाहिनी ओर एक बड़ा भारी पर्वत रूपी गढ़ मिलता है जो लगभग ४८ बीघा में फैला है। इस गढ़ का पश्चिमी सिरा टोंस नदी के परे है जिसका कुछ अंश नदी ने काट कर बहा दिया है।

यह किला इतना प्राचीन है कि इसके बनवाने वाले, अथवा बनने की तिथि सम्वत् आदि का कुछ ठीक ठीक पता नहीं लगता। कहा जाता है यह गढ़ भरों का गढ़ था, जो इस भू भाग के राजा थे। यह भी कहा जाता है कि इस किले के अन्दर कहीं लिखा है कि "एक लाख लावै, सहस लख पावै, पावै न पावै, न जानी कौन कोने।" यह किंवदन्ती यहाँ के आसपास के गाँवों में प्रचलित है, यह कहाँ तक सत्य है यह तो भविष्य ही बतला सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह है—एक लाख रुपया लगाकर इस गढ़ को खुदवावै तो सहस्र लाख रुपया मिले, किन्तु निश्चय नहीं है कि मिल ही, मिले न मिले, और यह भी न जानी किस कोने में है।

कुछ भी हो, यह बात सिद्ध है कि यह गढ़ भरों का था। वर्तमान राजा माँड़ा के पूर्वजों ने भरों को भगा कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। आज कल भी यह स्थान उन्हीं के वंशजों की रियासत के अन्दर है। माँड़ा के वंशज चार भागों में विभक्त हैं।। (१) माँड़ा, विजयपुर, डैया और कोहड़ार। अब इस समय इस गढ़ की कुछ टूटी-फूटी दीवारों तथा फाटकों के चिन्ह रह गये हैं। इसके भीतर कहीं कहीं जंगल और झाड़ियाँ और कहीं कहीं छोटे छोटे टीले पाये जाते हैं जो इमारतों के ध्वंस हो जाने से स्वभावतः बन गये हैं। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि सन् १८७२ ई० में यहाँ की तहसील के किसी उच्च अधिकारी को एक चाँदी का सिक्का मिला था जिस पर फारसी लिपि में सिक्के के एक ओर 'खलीफा अबुल फतह' और दूसरी ओर, 'इब्राहीम शाह सुलतानी' लिखा हुआ था। वह जौनपुर का बादशाह था जिसका राज्यकाल सन् १४०१ था, किन्तु इस सिक्के से इस स्थान की वास्तविक प्राचीनता का पता नहीं मिलता क्योंकि यह स्थान मुसलमानी काल से तो निश्चय ही पहिले का है। हाँ एक बात जरूर है कि इस गढ़ के पास में 'खारा' के नाम से एक गाँव बसा है। मुसलमानों ने इसी वजह से इसका नाम खारागढ़ रख दिया जो अब कुछ बदल कर

खैरागढ़ हो गया है । यह स्थान अब सरकारी पुरातत्व विभाग की ओर से सुरक्षित हो गया है ।

लाक्षागिरि—यह प्राचीन ऐतिहासिक तथा पौराणिक स्थान शहर इलाहाबाद से ठीक पूर्व २४ मील छोटी लाइन के हंडिया खास स्टेशन से ३ मील दक्खिन की ओर स्थित है । *यहाँ गंगा जी के किनारे लगभग ३० बीघे का एक बड़ा टीला* है । जिसे लोग लाक्षागिरि कहते हैं । यह नदी के सतह से १०० फीट ऊँचाई पर है, इस समय लाक्षागिरि एक साधारण गाँव है, जिसका महत्व केवल इतना ही है कि जब कभी सोमवती अमावस्या अथवा वारुणी का पर्व पड़ता है तब वहाँ गंगा स्नान का बड़ा मेला लगता है ।

इस स्थान का उल्लेख महाभारत के आदि पर्व के अध्याय १४२ में आया है । इस कथा का सारांश इस प्रकार है । पाण्डवों को नष्ट करने के लिए कुटिल दुर्योधन ने अपने मंत्री पुरोचन के द्वारा एक षड्यन्त्र रचा । उसने सारे हस्तिनापुर में घोषणा करा दी कि 'वारणावत' नगर में एक मेला बड़े समारोह के साथ होने वाला है । इस मेले में जाने के लिए उसने पाण्डवों और उनकी माता कुन्ती को किसी तरह से तैयार करा लिया । अब दुर्योधन ने अपने मंत्री पुरोचन को समझाकर कहा कि पाण्डवों के वहाँ पहुँचने के पहले ही तुम वहाँ पहुँच जाओ और सन और धूप आदि अग्निवर्द्धक पदार्थों से एक ऐसा गृह बनवाओ जिसकी दीवारें तेल, घी और लाख में लिपी हुई हों । पाण्डवों को इस गृह में बड़ी चतुराई के साथ ठहराना और किसी दिन अवसर पाकर जब वे सोते हों तो उसमें आग लगवा देना ताकि वे वहीं समाप्त हो जायँ ।

परन्तु, विदुर जी ने पाण्डवों को यवन भाषा में चलते समय इसका भेद बता दिया था । इसके बाद वे वारणावत नगर को चले । उनके पहुँचने पर वहाँ उनका बड़ी धूमधाम से स्वागत किया गया । पुरोचन ने भी उनका बहुत आवभगत किया और उनको पहिले एक अलग स्थान में ठहराया । कुछ दिनों के बाद पुरोचन उनको लाक्षागृह में ठहरने के लिए लिवा ले गया ।

इसी बीच विदुर का भेजा हुआ एक प्रवीण कारीगर युधिष्ठिर के पास आया और उसने उस गृह के भीतर से बाहर निकलने के लिए एक सुरंग चुपके चुपके खोदना शुरू किया । जब सुरंग बन कर तैयार हो गई तो एक दिन कुन्ती ने सहभोज किया जिसमें पुरोचन सहित आसपास के सब लोग सम्मिलित हुए । इसके

बाद सब आमंत्रित लोग अपने अपने घर चले गये किन्तु अभाग्यवश एक बुढ़िया अपने पाँच बच्चों के साथ वहीं सो रही। भीम ने सुअवसर पाकर जिस खण्ड में पुरोचन सो रहा था पहिले उसी ओर आग लगा दी। अग्नि लगने से क्षण में बात की बात में चारों ओर क्या फैल गई। पाण्डव अपनी माता के साथ सुरंग द्वारा सुरक्षित बाहर निकल आए। वहाँ से रातों रात कुछ दूर गंगा के किनारे किनारे चले। फिर विदुर जी की भेजी हुई एक नौका मिली। उसी नाव द्वारा पार उतर कर वे लोग दक्षिण की ओर चले गये।

लोगों का यह कहना है कि उक्त वारणावत यही स्थान था, जो पीछे इस घटना के कारण 'लाक्षागृह' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परन्तु विद्वानों में इस मत पर बड़ा विवाद है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि यह वारणावत नगर मेरठ जिला के तहसील गाजियाबाद में स्थित है जो अब भी 'बरनावा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी पुष्टि में वे प्रमाण यह देते हैं कि वहाँ अब भी एक टीला है जो खेड़ा के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे वहाँ के लोग लाख का मण्डप कहते हैं।

इस विवादग्रस्त विषय का निर्णय होना तो तभी सम्भव है जब इन दोनों स्थानों की खुदाई की जाय और वहाँ की उपलब्ध वस्तुओं से शायद कुछ वास्तविकता पर प्रकाश पड़ सके। किन्तु इन दोनों स्थानों की भौगोलिक स्थिति और गंगा का बहाव और पाण्डवों का गंगा पार कर दक्षिण की ओर जाना यह सिद्ध करता है कि वह ऐतिहासिक वारणावत नगर यही इलाहाबाद स्थित लाक्षा गृह है।

कुछ भी हो, यह वर्तमान लाक्षागृह वारणावत नगर न भी सिद्ध हो तब भी यह बात सिद्ध ही है कि यह कोई प्राचीन ऐतिहासिक स्थान अवश्य ही है। क्योंकि अब तक इस टीले पर प्राचीन काल से लेकर मुस्लिम काल तक की मुद्राएं बहुधा वर्षाकाल में मिलती हैं जो इस बात को प्रमाणित करती हैं कि प्राचीनकाल में यह कोई ऐतिहासिक स्थान अवश्य था। सोने चाँदी के सिक्के का तो वहाँ के लोग बतलाते नहीं किन्तु ताँबे आदि के सिक्के जो अभी कुछ दिन हुए इस स्थान से उपलब्ध हुये थे और इलाहाबाद म्युनिसिपल म्युजियम में रखे हैं, उनसे मालूम होता है कि ये सिक्के कोई दो तीन सौ वर्ष ईसवी पूर्व के हैं।

लाल्छागिरि के दक्षिणी पूर्वी भाग में करीब ५०० फुट ऊँची एक दीवार है। सम्भवतः यह शहर की रक्षा करने के लिए तैयार की गयी दीवाल होगी। दीवाल के बारे में जब तक पूरा प्रमाण न मिल जाय तब तक कुछ कहना ठीक नहीं होगा। प्राचीनकाल के जितने भी शहर हमें मिलते हैं उनके चारों ओर रक्षा की एक दीवाल का स्पष्ट जिक्र मिलता है। इस दृष्टिकोण से लालागिरि के बारे में भी हम वही बात कह सकते हैं। मध्यकाल के इस स्थान पर ईंट की एक और दीवाल बनने का जिक्र मिलता है। यहाँ की जनता अब भी इस बात को कहती है कि शहर के दक्षिण भाग में एक मेहराबदार फाटक था। टीले के ढालुएँ भाग पर अब भी पत्थर, जिन पर कमल के चिह्न खुदे हैं, एवं मेहराबदार खिड़कियां के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है कि यह किसी न किसी मध्यकालीन मन्दिर के अवशेष रहे होंगे। टीले के अनेक भागों पर दीवालों के चिह्न दिखाई पड़ते हैं परन्तु उनमें शहरी जीवन का कुछ भी पता नहीं चलता।

लालागिरि के समीपवर्ती भागों में इस समय भी मूर्तियों के कुछ टुकड़े बिखरे दिखायी पड़ते हैं। दीवाल के बाहरी भाग में पूर्व की ओर एक मध्यकालीन हिन्दू मन्दिर है। इसके पास पत्थर तथा स्तूप के टुकड़े भी दिखाई पड़ते हैं। पश्चिमी भाग में एक दूसरे मन्दिर के अवशेष हैं। इन पत्थरों पर हमें घुड़सवारों तथा चैत्य फाटक के चित्र मिलते हैं। इन मन्दिरों के देवताओं के बारे में कुछ भी मालूम नहीं होता।

लालागिरि के भीतरी भाग में कुछ जैन तथा हिन्दू प्रतिमाएँ सुरक्षित की गयी थीं जिसमें भी स्थापत्य कला के अवशेष प्राप्त हुये हैं। उनमें से कोई भी पाँचवीं शताब्दी से पहले के नहीं हैं। हाँ कुछ टेराकोटा (मिट्टी की मूर्तियाँ) ईसा पूर्व के मिले हैं। गुप्त काल की जैन प्रतिमा, जो इस समय इलाहाबाद म्यूजियम में रखी गयी है, इस काल की शिल्पकला का उत्कृष्ट नमूना है। एक अन्य मूर्ति अग्नि देवता की भी यहाँ प्राप्त हुई है जिसके सिर के पीछे से आग की लपटों के निकलने का चित्र दिखाया गया है। तीसरी प्रतिमा एक चार सिरों वाली देवी की प्राप्त हुई है। यद्यपि यह मध्यकालीन युग का नमूना है फिर भी इसकी शिल्प कला देखने योग्य है। ग्रामीण जनता जैन तीर्थंकरों तथा हिन्दू देवताओं की मूर्तियों की पूजा करती है, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि लालागिरि में

बाद सब आमंत्रित लोग अपने अपने घर चले गये किन्तु अभाग्यवश एक दुखिया अपने पाँच बच्चों के साथ वहीं सो रही। भीम ने सुअवसर पाकर जिस खण्ड में पुरोचन सो रहा था पहिले उसी ओर आग लगा दी। अग्नि लाक्षा के गृह में बात की बात में चारों ओर हवा पाकर फैल गई। पाण्डव अपनी माता के साथ सुरंग द्वारा सुरक्षित बाहर निकल आए। वहाँ से रातों रात कुछ दूर गंगा के किनारे किनारे चले। फिर विदुर जी की भेजी हुई एक नौका मिली। उसी नाव द्वारा पार उतर कर वे लोग दक्षिण की ओर चले गये।

लोगों का यह कहना है कि उक्त वारणावत यही स्थान था, जो पीछे इस घटना के कारण 'लाक्षागृह' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परन्तु विद्वानों में इस मत पर बड़ा विवाद है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि यह वारणावत नगर मेरठ जिला के तहसील गाजियाबाद में स्थित है जो अब भी 'बरनावा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी पुष्टि में वे प्रमाण यह देते हैं कि वहाँ अब भी एक टीला है जो लेढ़ा के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे वहाँ के लोग लाख का मण्डप कहते हैं।

इस विवादग्रस्त विषय का निर्णय होना तो तभी सम्भव है जब इन दोनों स्थानों की खुदाई की जाय और वहाँ की उपलब्ध वस्तुओं से शायद कुछ वास्तविकता पर प्रकाश पड़ सके। किन्तु इन दोनों स्थानों की भौगोलिक स्थिति और गंगा का बहाव और पाण्डवों का गंगा पार कर दक्षिण की ओर जाना यह सिद्ध करता है कि यह ऐतिहासिक वारणावत नगर यही इलाहाबाद स्थित लाक्षा गृह है।

कुछ भी हो, यह वर्तमान लाक्षागृह वारणावत नगर न भी सिद्ध हो तब भी यह बात सिद्ध ही है कि यह कोई प्राचीन ऐतिहासिक स्थान अवश्य ही है। क्योंकि अब तक इस टीले पर प्राचीन काल से लेकर मुस्लिम काल तक की मुद्राएं बहुधा वर्षाकाल में मिलती हैं जो इस बात को प्रमाणित करती हैं कि प्राचीनकाल में यह कोई ऐतिहासिक स्थान अवश्य था। सोने चाँदी के सिक्कों को तो वहाँ के लोग बतलाते नहीं किन्तु ताँबे आदि के सिक्के जो अभी कुछ दिन हुए इस स्थान से उपलब्ध हुये थे और इलाहाबाद म्युनिसिपल म्युजियम में रखे हैं, उनसे मालूम होता है कि ये सिक्के कोई दो तीन सौ वर्ष ईसवी पूर्व के हैं।

लाछागिरि के दक्षिणी पूर्वा भाग में करीब ५०० फुट ऊँची एक दीवार है। सम्भवत: यह शहर की रक्षा करने के लिए तैयार की गयी दीवाल होगी। दीवाल के बारे में जब तक पूरा प्रमाण न मिल जाय तब तक कुछ कहना ठीक नहीं होगा। प्राचीनकाल के जितने भी शहर हमें मिलते हैं उनके चारों ओर रक्षा की एक दीवाल का स्पष्ट जिक्र मिलता है। इस दृष्टिकोण से लाछागिरि के बारे में भी हम वही बात कह सकते हैं। मध्यकाल के इस स्थान पर ईंट की एक और दीवाल बनने का जिक्र मिलता है। यहाँ की जनता अब भी इस बात को कहती है कि शहर के दक्षिण भाग में एक मेहराबदार फाटक था। टीले के ढालुएँ भाग पर अब भी पत्थर, जिन पर कमल के चिह्न खुदे हैं, एवं मेहराबदार खिड़कियों के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है कि यह किसी न किसी मध्यकालीन मन्दिर के अवशेष रहे होंगे। टीले के अनेक भागों पर दीवालों के चिह्न दिखाई पड़ते हैं परन्तु उनमें शहरी जीवन का कुछ भी पता नहीं चलता।

लाछागिरि के समीपवर्ती भागों में इस समय भी मूर्तियों के कुछ टुकड़े बिखरे दिखायी पड़ते हैं। दीवाल के बाहरी भाग म पूर्व की ओर एक मध्यकालीन हिन्दू मन्दिर है। इसके पास पत्थर तथा स्तूप के टुकड़े भी दिखाई पड़ते हैं। पश्चिमी भाग में एक दूसरे मन्दिर के अवशेष हैं। इन पत्थरों पर हमें घुड़सवारों तथा चैत्य फाटक के चित्र मिलते हैं। इन मन्दिरों के देवताओं के बारे में कुछ भी मालूम नहीं होता।

लाछागिरि के भीतरी भाग में कुछ जैन तथा हिन्दू प्रतिमाएँ सुरक्षित की गयी थीं जिसमें भी स्थापत्य कला के अवशेष प्राप्त हुये हैं। उनमें से कोई भी पाँचवीं शताब्दी से पहले के नहीं हैं। हाँ कुछ टेराकोटा (मिट्टी की मूर्तियाँ) ईसा पूर्व के मिले हैं। गुप्त काल की जैन प्रतिमा, जो इस समय इलाहाबाद म्यूजियम में रखी गयी है, इस काल की शिल्पकला का उत्कृष्ट नमूना है। एक अन्य मूर्ति अग्नि देवता की भी यहाँ प्राप्त हुई है जिसके सिर के पीछे से आग की लपटों के निकलने का चित्र दिखाया गया है। तीसरी प्रतिमा एक चार सिरों वाली देवी की प्राप्त हुई है। यद्यपि यह मध्यकालीन युग का नमूना है फिर भी इसकी शिल्प कला देखने योग्य है। ग्रामीण जनता जैन तीर्थंकरों तथा हिन्दू देवताओं की मूर्तियों की पूजा करती है, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि लाछागिरि म

मूर्तियाँ प्राप्त हुई । यहाँ से कुछ सुराहियों के टुकड़े एवं मिट्टी से बनी जानवरों की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई । यहाँ से एक पत्थर की मूर्ति तलवार का टुकड़ा तथा अभरक का टुकड़ा भी मिला है। कुछ और खोदे जाने पर दो सिक्के तथा एक दीवाल मिली। इस भाग में जो भी सामग्रियाँ मिलीं वे अत्यन्त महत्व की थीं। यहाँ प्राप्त सामग्रियों से एक सुराही की गर्दन का टुकड़ा मिला है जिसकी शिल्पकारी अत्यन्त ही सुन्दर है। यह तक्षशिला एवं कौशाम्बी में प्राप्त सामग्रियों की शिल्प कला के समान है। इन सभी प्राप्त सामग्रियों से पता चलता है कि यह स्थान अत्यन्त ही प्राचीन है।

झूँसी—गंगा यमुना के संगम के ठीक पूर्व की ओर बसी झूँसी, धर्म, साहित्य और इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। पुराण, वाल्मीक रामायण, कालिदास की विक्रमोर्वशीय तथा कुछ ऐतिहासिक ग्रंथों में इसका उल्लेख किया गया है। इसके टीलों, गुफाओं, मंदिरों, पाठशालाओं, आश्रमों को देखने के लिये भारत के कोने कोने से यात्रियों का दल प्रति वर्ष आया करता है।

शहर इलाहाबाद में जहाँ आज कल गंगा यमुना के सितासित धारों का संगम है, उसके ठीक पूर्व की ओर गंगा के उस पार भीमकाय टीले दिखाई पड़ते हैं, जिसको देखने से अकस्मात् मुँह से यह निकल पड़ता है कि किसी समय यह टीले किले के रूप में रहे होंगे जो कालान्तर में इस रूप में परिवर्तित हो गए हैं। इसका प्राचीन नाम प्रतिष्ठानपुर था।

इतिहासकारों का कथन है कि यह किसी समय चन्द्रवंशीय राजाओं की राजधानी थी। इस स्थान की प्राचीनता के प्रमाण में वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड के सर्ग १०० से १०३ तक लिंगपुराण पूर्वार्द्ध की ६६वें अध्याय तथा देवी भागवत का बारहवाँ अध्याय उद्धृत किया जा सकता है।

इन पुराणों में लिखा है कि इला के पुत्र पुरुरवा ने यमुना नदी के उत्तर की ओर प्रयाग के निकट अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर में राज्य किया था। इसके अतिरिक्त मत्स्यपुराण और स्कन्दपुराण में भी प्रतिष्ठानपुर के महात्म्य का वर्णन पाया जाता है। महाभारत के उद्योग पर्व में और कालिदास के प्रसिद्ध नाटक विक्रमोर्वशीय में इस प्रतिष्ठानपुरी के राजा पुरुरवा की चर्चा आई है।

इस स्थान के विषय में एक दन्त कथा प्रसिद्ध है कि यहाँ एक राजा राज्य करते थे, जिसके राज्यकाल में टके सेर भाजी और टके सेर खाजा बिकता था।

इसका लोग यों भी कहते हैं कि, अन्धेर नगरी धमधूसर राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा। धार्मिक लोगों का कहना है कि किसी बड़े महात्मा को दूसरे अपराधी के बदले में फाँसी दे दी गई थी जिसमें गुरु गोरखनाथ और उनके गुरु मत्स्येन्द्र नाथ बहुत क्रुद्ध हुए और इस राज्य और इस नगर को शाप देकर उलट दिया।

मुसलमानों में भी एक किस्सा मशहूर है कि सन् १३५६ ई० में सैयद अली मुरतजा नामक एक पहुँचे हुए फकीर की बददुआ से झूसी में एक बड़ा भूडोल आया और परिणाम स्वरूप किला उलट गया। इन दन्त कथाओं में कहाँ तक सच्चाई है इसका कोई प्रमाण देना तो बहुत कठिन है किन्तु एक बात अवश्य है कि कभी कभी यही दन्तकथायें पुरातत्व-वेत्ताओं के लिए प्राचीन टीलों में उत्खनन कार्य के लिये प्रेरणा सिद्ध होती है।

मोहन जोदड़ो, हड़प्पा की खुदाई इसके प्रमाण में कहा जा सकता है। वहाँ आस पास के लोगों में उन स्थानों के विषय में दन्तकथा प्रचलित थी कि यह स्थान मुर्दों का टीला है। खोदने पर जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई है वह सब संसार के सामने है। शायद इन मुर्दों के टीलों ने भारत का इतिहास ही बदल दिया। झूँसी के इन टीलों को भी खोदा जाय तो भारत के इतिहास में अधिक आश्चर्यजनक पृष्ठों के जुड़ जाने की समुचित सम्भावना है।

सन् १८३० ई० में झूँसी में एक अभिलेख ताम्रपत्र पर मिला है जो आजकल बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित है, उसमें देवनागरी के अक्षरों में इस प्रकार लिखा है—ओम् स्वस्ति श्री प्रयाग समीप गंगा तटवासे भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर "श्री विजयपाल देव पा" श्रावण वदी ४ सम्वत् १०८४ विक्रमी।

अर्थात् —विजयपालदेव के पौत्र, राज्यपाल देव के पुत्र त्रिलोचन पाल ने जो गंगा तट पर प्रयाग के निकट निवास करते थे, दक्षिणायन संक्रान्ति के दिन गंगा-स्नान करके शिव का पूजन करके प्रतिष्ठानपुर के ब्राह्मणों को एक गाँव दान में दिया। २९ जून सन् १०२७ ई०।

झूँसी में मिली हुई बस यही एक ताम्रपत्र है जिससे इसके प्राचीनता और एतिहासिकता पर प्रकाश पड़ता है। इस स्थान के सम्बन्ध में एक बात यह भी उल्लेखनीय, है कि रीवा के बैसवंशी और प्रतापगढ के सोमवंशी क्षत्री इस स्थान

को अपनी पुरानी जन्मभूमि बतलाते हैं। अल्मोड़े के जोशी वंश के ब्राह्मणों का भी दावा है वे लोग पहिले यहाँ के रहने वाले थे।

इस समय भी झूँसी में दो प्राचीन स्थान मौजूद हैं। (१) समुद्रकूप-झूँसी के मुख्य टीले के पूर्वी कोने पर समुद्रकूप का टीला है, जिसे वहाँ के लोग 'कोट' कहते हैं। इसी कोट पर एक बड़ा कुआँ है जिसे समुद्रकूप कहते हैं। इस कूप का उल्लेख पुराणों में भी पाया जाता है। कुछ दिनों तक लोगों में यह धारणा थी कि इस कूप का सम्बन्ध समुद्र से है, अगर यह खोला गया तो समुद्र उमड़ आयेगा और सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायगी। इसी भय से यह कूप बहुत दिनों तक बन्द पड़ा था। किन्तु पचास साठ साल हुए बाबा सुदर्शनदास ने जो अयोध्या जी के एक वैरागी साधु थे इस कूप को खोलवाया, साफ कराया और वहीं पर एक आश्रम बनवाया। इस टीले में गंगा जी की तरफ एक बड़ी सीढ़ी और बहुत सी गुफाएँ हैं।

लोगों की धारणा है कि इसमें बहुत पुरातन साधु रहते हैं, जो अदृश्य रहते हैं। रात्रि में जब सब सो जाते हैं तब ये लोग गंगा स्नान करने निकलते हैं। इन जनश्रुतियों और कथाओं में कहाँ तक तथ्य है यह तो उनमें विश्वास करने वाले ही जानें, किन्तु यह बात अवश्य है कि यह स्थान दर्शनीय है।

हंसतीर्थ—झूँसी स्थित यह स्थान 'योगियों विशेषत' हठयोगियों के बड़े काम का है क्योंकि इसके द्वारा मानव शरीर के आन्तरिक स्थलों को स्थूल रूप में प्रत्यक्ष दिखाया गया है। इस तीर्थ का घेरा एक लम्बे पान के रूप में बनाया गया है। इसके घेरे की पक्की दीवारों पर बहुत से कगूरे छोटे छोटे पान के रूप में बनाये गये हैं, जो सख्या में एक हजार हैं। इसी को लोग 'सहस्रदल कमल' कहते हैं जिसका स्थान ब्रह्माण्ड अर्थात् मस्तिष्क में बताया गया है, इस हंस तीर्थ के निर्माण का आधार तंत्र शास्त्र का यह श्लोक है—

आधारे लिंग नाम्यो प्रकटित
हृदये तालु मूले ललाटे,
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदश दश
दले द्वादशार्धे चतुष्के
वासते बालमध्ये उफ - कट
सहिते कण्ठदेशे स्वराणा

६ दा तत्वार्थ युते सकल दल
गते वर्ण रूपं नमामि

अर्थ :—आधार (मूलाधार चक्र जो गुह्य देश में स्थित है) लिंग (स्वाधिष्ठान चक्र जो लिंग में स्थित है) नाभि (मणिपूरक चक्र जो नाभि में स्थित है) हृदय (अनाहत चक्र जिसका स्थान हृदय है) तालमूल (कंठ में स्थित विशुद्ध चक्र) ललाट (भौं के बीच स्थित आज्ञा चक्र है) में (विपरीत अवरोह क्रम से स्थित) २,१६,१२,१०,६ और ४ दलों वाले कमलों पर (पुनः इसके विपरीत आरोह क्रम से लिये हुए) सब दलों पर स्थित और तत्वार्थ से युक्त वर्णरूप को मैं नमस्कार करता हूँ।

नाम चक्र	स्थान	संख्या	दलों के वर्णाक्षर
१—मूलाधार	गुदा	४	व श ष स
२—स्वाधिष्ठान	लिंग	६	ब भ म य र ल
३—मणि पूरक	नाभि	१०	ड ढ ण त थ द ध न प फ
४—अनाहत	हृदय	१२	क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ
५—विशुद्ध	कण्ठ	१६	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः
६—आज्ञा	भ्रू	२	ह क्ष

अर्थात—मानव शरीर के अन्दर योग के अनुसार छः मुख्य केन्द्र माने गये हैं, जिनको 'षट चक्र' कहा जाता है। इन चक्रों का आधार मेरुदण्ड है जिसको सामान्यतः रीढ़ कहते हैं। इसी रीढ़ के अन्दर होते हुए एक प्रधान ज्ञान तन्तु मस्तिष्क के नीचे तक गई है। इसी ज्ञानतन्तु को सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। इस प्रधान नाड़ी के दाएँ और बायें इड़ा और पिंगला दो नाड़ियाँ हैं जो प्रधान नाड़ी के समानान्तर बराबर ऊपर को चलती हैं और जो दोनों नेत्रों के बीच में 'त्रिकुटी' को आर पार करके नासिका के दोनों नथनों तक चली गई हैं।

इसके अतिरिक्त शरीर में एक और दिव्य नाड़ी मानी गई है जो सब से नीचे है, और जिसको 'कुण्डलिनी' कहते हैं। यह सर्पाकार साढ़े तीन बार लपटी हुई रहती है, जो योगाभ्यास अर्थात् प्राणायाम द्वारा सीधी होकर मेरुदण्ड द्वारा धीरे धीरे क्रमशः षटचक्रों का भेदन करती हुई ऊपर को चढ़ती है, और मस्तिष्क अर्थात् ब्रह्मांड में पहुँच जाती है, जहाँ सहस्र दल कमल अथवा ज्ञान का भण्डार

है। यही योगाभ्यास का अन्तिम स्थान है। प्रत्येक चक्र कई कई कोषों का होना है जिनको 'दल' कहते हैं। इन दलों का सांकेतिक नाम अक्षरों के ऊपर रखे गये हैं, जो 'बीज' कहलाते हैं। इसी का ब्योरा ऊपर दिया गया है। निष्कर्ष जिस प्रकार से निराकार ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव आदि अनेक देवताओं की साकार रूप में मन्दिरों में उनकी प्रस्तर की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं उसी तरह योगियों का मुक्ति के साधनस्वरूप निराकार योगाभ्यास समझाने के लिये इस हंसतीर्थ में योग की सारी क्रियाएँ साकार रूप में दर्शाई गई हैं।

यह मन्दिर योगियों के लिये बनाया गया है। कहा जाता है कि शायद इस प्रकार का मन्दिर इसके सिवाय अन्य स्थान में नहीं है। कुछ भी हो इसका पूर्ण विवरण लिखने के लिये एक अलग अध्याय की आवश्यकता है।

वर्तमान—इस समय झूँसी दो स्पष्ट विभागों—नई झूँसी और पुरानी झूँसी में विभाजित है। नई झूँसी अभी हाल ही में बसी है। इसमें लाला किशोरी लाल का धर्मशाला जो पहिले सदाव्रत क्षेत्र था (अब बन्द हो गया है), और सवा लाख रुपये के लागत का बनवाया हुआ सन् १८०० ई० का गंगोली तिवारी का पत्थर का बड़ा शिवालय उल्लेखनीय है। पुरानी झूँसी में जो रेलवे लाइन के दक्षिण स्थित है, उपरोक्त कथित 'हंस तीर्थ' के अतिरिक्त श्री तीथराज सन्यासी संस्कृत पाठशाला, बाबा गंगागिरि जी का आश्रम, चैतन्य आश्रम, बाबा दयाराम की कुटी, शेख तकी का मजार जो लगभग ६०० साल पुराना है, छतनाग में ब्रह्मचारी मथुरानाथ के शिष्य द्वारा स्थापित किया हुआ संस्कृत पाठशाला, आज भी देखने योग्य है।

कड़ा—भारत के प्राचीन इतिहास में राजनीतिक दृष्टि से कड़ा का एक विशिष्ट स्थान है। यहाँ गंगा के किनारे एक प्राचीन दुर्ग का टीला वर्तमान बस्ती से कुछ दूर पर अब तक मौजूद है। इसे अन्तिम हिन्दू नरेश जयचन्द का किला कहते हैं। इस बस्ती के सम्बन्ध में दो प्राचीन अभिलेख उपलब्ध हुए हैं। एक तो १०३५ ई० का है जो कन्नौज के पारहार वंशीय राजा यश पाल के सम्बन्ध में है। यह अभिलेख इस समय कलकत्ते के इण्डियन म्युजियम में है। दूसरा ताम्रपत्र है जो सन् १५५६ ई० का है। और रीवा के राजा रामचन्द्र का है। मुस्लिम राज्य काल में बहुत दिनों तक कड़ा, प्रयाग की राजधानी रही है।

१२ वीं शताब्दी के अन्त में शहाबुद्दीन गोरी ने जयचन्द को परास्त कर काशी तक अपना अधिकार जमा लिया। उसने कड़ा और मानिकपुर में प्रयाग की सूबेदारी स्थापित की। इलाहाबाद बहुत दिनों तक उसी के अन्तर्गत रहा। दिल्ली के पहिले मुस्लिम बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक ने कड़ा के इलाके को अपने गुरु कुतुबुद्दीन मदनी को सिपुर्द कर दिया था, जिसकी कब्र आज तक बनी है। यह कड़े में सब से पुरानी कब्र है।

सन् १२४७ ई० में अल्तमश बादशाह ने कड़ा आकर यहाँ के आसपास के कई हिन्दू राजाओं पर हमला किया था। सन् १२८६ ई० में बलबन के मरने के बाद उसके पुत्र बुगरा खाँ और पोते कैकुबाद में तख्त के लिए झगड़ा खड़ा हुआ तो कैकुबाद कड़े में अपनी फौज इकट्ठी करके बाप से लड़ने के लिए तैयार था। यहाँ मध्य गंगा में दोनों से भेंट हुई। बाप ने आगा पीछा सोच कर राज्य इसी को दे दिया और बेटे ने क्षमा माँग ली।

खिलजी वंश के जलालुद्दीन और उसके भतीजे आलाउद्दीन का किस्सा सर्व विदित है। आलाउद्दीन अपने चचा जलालुद्दीन को षड्यन्त्र रचकर धोखे से यहीं पर मार कर दिल्ली का बादशाह हुआ। महमूद तुगलक के समय में कड़ा उसके मंत्री ख्वाजा महान के अधिकार में था, जिसको बहलोल लोदी ने जीत कर दिल्ली में मिला लिया।

सिकन्दर लोदी के समय में माँडा और विजयपुर के राजाओं ने कड़े और मानिकपुर पर हमला किया, और कड़ा इन राजाओं के अधिकार में आ भी गया, २४ दिन बाद सिकन्दर लोदी कड़ा आया। घनघोर युद्ध हुआ। अन्त में दोनों राजा भाग निकले। सिकन्दर ने मुबारिक खाँ को यहाँ का हाकिम बना दिया।

कुछ दिनों के बाद कड़ा, जौनपुर के सैयद वंश के हाथ में आ गया। बाबर ने इस पर हमला किया किन्तु जलालुद्दीन लोहानी से जो जौनपुर के मुहम्मद शाह का बेटा था सन्धि हो गयी। अकबर बादशाह जब शासक हुआ तो उसने कड़े की जागीरदारी अपने प्रसिद्ध जोधा आसफ को दे दी।

सन् १५६६ ई० में जब अकबर ने अपने साम्राज्य को सूबों में विभक्त किया तो कड़े की सूबेदारी तोड़कर इलाहाबाद में स्थापित किया। कड़े को उसने अन्तर्गत एक सरकारी जिला बना दिया, जिसके आधीन उस समय निम्नलिखित परगने थे।

(१) बल्दा कड़ा, (२) हवेली (३) कड़ा, (४) करारी (५) अथरवन, (६) धाता, (७) हथगाँव, (८) हथगाँव, (९) कोटिला, (१०) हसवा, (११) फतेहपुर, (१२) अयाशाह, (१३) गाजीपुर (१४) कोसो। इसमें अब एक से पाच तक इलाहाबाद जिले मे, शेष फतेहपुर के जिले में शामिल है।

इस प्रकार कड़ा बहुत दिनों तक प्रयाग प्रान्त का केन्द्र रहा। तारीख़ आईने अवध में लिखा है कि इसकी आबादी तीन कोस लम्बी थी, जिसकी पश्चिमी सीमा कमालपुर, पूर्व में शहजादपुर और दक्षिण में दारानगर तक थी। इब्नबतूता के समय में कड़ा का पुराना वैभव नष्ट हो चुका था, उस समय यह एक कस्बे के रूप में था। बस्ती से कई गुना वहाँ डीह और क़ब्रें हैं जिनकी लम्बाई गगा के किनारे किनारे मीलों तक चली गई है।

दारानगर—कड़े के पास दारानगर भी एक ऐतिहासिक स्थान है। इसका असली नाम चमरुपुर था। सैयद अहसन, सैयद कुतुब मदनी के साथियों में से था, जो खुरासान से आया था। उसी के वश मे एक फैजुल्ला था, जो दाराशिकोह के मुसाहिबो में था, उसी ने इस गाँव को खरीद कर गंज बसाया और उसका नाम फैजाबाद रखा।

तत्पश्चात् उसके भाई अफजलउल्ला ने इस गज का नाम दाराशिकोह के नाम पर दारानगर रखा और दारा ने पुरस्कार के रूप मे यह गाँव उसको माफी म दे दिया। दारानगर के पास कोहसिराज नामक गाँव मे फिरोज-तुगलक की बनवाई हुई एक पुरानी मस्जिद है। इस गाँव के आस पास सँवरई, परसखी, परसरा, करिया इत्यादि मे पाँडे ब्राह्मणों की बस्ती है, जो 'छप्पन' के नाम से प्रसिद्ध है। राजा जयचन्द ने इन ब्राह्मणों को ५६ गाँव माफी दिये थे, पीछे मुसलमानों के समय में हिसामुद्दीन नामक योधा ने इन गाँवों को छीन लिया, जिसके उपलक्ष में कोह नामक गाँव का एक भाग दिल्ली दरबार से उसको इनाम में मिला और दूसरे भाग पर मालगुजारी या सिराज लग गया। तब से ये दोनों गाँव कोहइनाम और कोहसिराज के नाम से प्रसिद्ध हैं। कोहसिराज, कोहइनाम, आलमचन्द, नजरगंज, करिया, बड़ा गाँव, नरवर, बसेढ़ी तथा मडारा के सैयद उक्त हिशामुद्दीन के वशज कहे जाते हैं।

साथर—यह जिला इलाहाबाद मे तहसील हड़िया के अन्तर्गत परगना मेंह मे एक सामान्य गाँव है जो कस्बा फूलपुर से लगभग ६ मील पूरब थाना

सराय ममरेज के निकट स्थित है। मोटर से जाने वालों के लिए फूलपुर, सराय ममरेज होते हुए लगभग २५ मील का सफर करना पड़ता है। रेल से जाने वालों को फूलपुर स्टेशन उतरना पड़ता है, वहाँ से सवारी मिलती है और आजकल तो शहर इलाहाबाद से सराय ममरेज तक लारी जाती है जहाँ से साथर का टीला एक मील पड़ता है।

साथर के टीले की वर्तमान परिस्थिति यह है कि वहाँ एक बहुत लम्बा चौड़ा पथरीला टीला है जो १०० फुट की ऊँचाई पर लगभग ५०६० बाघा में पूरब पच्छिम फैला हुआ है। उसके ऊपर पत्थर की एक बड़ा भारी शिला पड़ा हुआ है, इस शिला के सम्बन्ध में वहाँ के लोगों में एक किंवदन्ती फैली हुई है कि इसके नीचे बड़ा खजाना है, लेकिन कोई इसके हटाने की चेष्टा नहीं करता। कहते हैं कि ऐसा करने से असंख्य भौंरे पैदा हो जाते हैं, जो हटाने वाले की हत्या कर डालते हैं।

इस टीले के तीन तरफ पानी की एक बहुत बड़ी झील है। वहाँ के लोगों का कहना है, कि यह टीला किसी समय भरा का कोट था। देखने से यह मालूम होता है कि अवश्य ही यह किसी समय में किला रहा होगा। यह किला किसका था, किसने बनवाया था इसके बनवाने की निश्चित तिथि क्या है, इस विषय में ठीक नहीं कहा जा सकता। अलबत्ता वहाँ से अब तक ताँबे के दो सिक्के उपलब्ध हो सके हैं, जिनमें 'मुबारकशाह' का नाम जो जौनपुर का सैयद वंश का बादशाह था, फारसी अक्षरों में लिखा हुआ है। अभी तक इस टीले पर पुरातत्व के खोज करने वाला की नजर नहीं पड़ी। लोगों का विश्वास है कि यह टीला एक ऐतिहासिक स्थान है जिसका पता खोदने से ही लग सकता है।

गींज—यह स्थान तहसील करछना परगना बारा से लगभग चार मील दक्षिण में स्थित है। यहाँ ८०० फुट ऊँचा एक पहाड़ी है जो लगभग छः मील के घेरे में फैला हुआ है। इसकी चोटी छिले हुए स्तम्भ की तरह है। इस पहाड़ी के नीचे चारों तरफ ढलवान है जो जंगल से घिरा हुआ है। इस स्थान से कुछ ४०० फुट की ऊँचाई पर एक प्राकृतिक तालाब है जिसका विस्तार लगभग २०० फुट के है। इस जलाशय तक चढ़ाई सरल है, किन्तु इसके आगे बहुत कठिन है। कोई रास्ता नहा है। दक्षिण की तरफ पहाड़ों में पत्थरों की प्राकृतिक स्थिति से एक गुफा सी बन गई है। इसी गुफा के दालान के सामने वाले भाग में

एक अभिलेख तीन पंक्तियों में इस प्रकार अंकित है कि "यह लेख महाराजा श्री भीमसेन का सम्वत् ५२ के ग्रीष्म ऋतु के चौथे पक्ष की द्वादशी का है।"

यह भीमसेन कौन थे, कहाँ के राजा थे, यह ५२ किस सम्वत् से सम्बन्धित है या इसके अतिरिक्त वह लेख जिसका जिक्र इस अभिलेख में आया है कहाँ है कुछ पता नहीं चलता।

अरइल—गंगा यमुना के संगम के ठीक दक्षिण ओर जमुना उस पार एक गाँव अरइल के नाम से आज भी बसा हुआ है। इसका प्राचीन नाम अलर्कपुरी था, जिसको अलर्क ने प्रागैतिहासिक युग में अपने नाम से बसाया था। इसके लिए यह कथा प्रसिद्ध है कि इसने अपनी प्रतिज्ञा रखने के लिए अपना आँखें निकलवा दी थीं।

कुछ लोगों का यह कहना है कि यह स्थान इला के नाम पर बसाया गया था जो गंगा के उस पार प्रतिष्ठानपुर के चन्द्रवंशी राजा थे।

इस स्थान का उल्लेख मत्स्यपुराण और कर्मपुराण में आया है। गुलबदन बेगम के 'हुमायूँ नामा' में भी इस स्थान की चर्चा है। तारीख आइनए अवध में लिखा है कि सन् १२८८ ई० में राजा वासदेव के पुत्र रायसेन यहाँ के राजा थे जो मुसलमानों द्वारा मारे गये। उनकी गर्भवती स्त्री प्रतापगढ चली गई और उसी वंश में वहाँ के वर्तमान सोमवंशीय क्षत्री हैं।

अरइल स्थान की वर्तमान अवस्था यह है कि वह अब एक छोटा सा गाँव है। पद्मपुराण और बाराह पुराण में उल्लिखित यहाँ वेनी माधव और सोमेश्वर महादेव का मन्दिर है। यहाँ एक पत्थर पर १६७४ विक्रमी का जयपुर नरेश महाराजा मानसिंह का नाम खुदा हुआ है। लोगों का कहना है कि यह स्वयं उन्हीं का हस्ताक्षर है। इनके अलावा यहाँ वल्लभ सम्प्रदाय का एक प्राचीन मन्दिर भी है।

पभोसा की पहाडी—यह पहाड़ी इलाहाबाद से ३० मील दक्षिण पश्चिम तहसील मझनपुर परगना अथरबन में जमुना नदी के उत्तरी तट पर स्थित है। इस स्थान तक जाने का रास्ता भरवारी और पश्चिम सरीरा होकर है। लगभग ३० मील पक्की सड़क है और बारह मील तक कच्ची सड़क है जिस पर मोटर आसानी से जा सकती है। इसका पुराना नाम 'प्रभास' था। यह स्थान वत्स साम्राज्य की राजधानी का एक अंग था।

यहाँ इस समय जमुना तट पर एक पहाड़ी है जिसके दो पार्श्व हैं—एक उत्तर और एक दक्षिण। इस पर सन् १८२४ ई० का बना हुआ एक जैन मन्दिर है। इस मन्दिर के उत्तर दिशा में दुर्गम पहाड़ी है। इसके ऊपर एक प्राचीन गुफा है, जिसके विषय में अब तक लोगों का विश्वास फैला हुआ है कि उस गुफा में एक सर्प रहता है जो इतना लम्बा है कि उसका मुँह जमुना में और पूँछ गुफा के भीतर है। इस साँप का जिक्र सन् ५१६ में आये हुए चीनी यात्री सुंगयान और ६३६ ई० में ह्वेनसाँग ने अपनी यात्रा के वर्णन में किया है। इन्होंने यह भी लिखा है कि यहाँ एक स्तूप था जिसमें भगवान बुद्ध के नख और केश गड़े हुये थे। परन्तु इस स्तूप का अब कोई पता नहीं है।

इसी पहाड़ी पर गौतम बुद्ध ने आकर तपस्या की थी। इस स्थान पर दुखी लोग रोगों से छुटकारा पाने जाया करते हैं। लोगों में विश्वास है कि यहाँ जाने से रोग नष्ट हो जाते हैं। गुप्त वंश के कई राजाओं के लेख पत्थरों पर लिखे मिलते हैं।

पुरातत्व विभाग के अधिकारी डा० फूहरर ने सबसे पहिले सन् १८८७ ई० में इस गुफा में प्रवेश किया था, उन्होंने गुफा को नाप जोख कर इसका क्षेत्रफल बतलाया है। इस पर गुप्त कालीन १० खण्डित अभिलेख हैं, जो अच्छी तरह पढ़े नहीं जा सकते। पश्चिम वाली दीवार पर मौर्यकालीन ३ अभिलेख अंकित हैं। सात पंक्तियों का एक अभिलेख और है जिससे इस गुफा के बनाने वाले का पता लगता है कि "गोपाली के पुत्र राजा बहसति मित्र के मामा वैहीदरी के पुत्र आसाढ सेन ने आदर के दसवें वर्ष में कश्यप अर्हतों के रहने के लिए यह गुफा बनवाई।"

दूसरे लेख का अर्थ है कि गुफा अहिच्छत्र के राजा शोणकायन के पुत्र बंगपाल उनके पुत्र तिवनी, उनके पुत्र भागवत, उनके पुत्र वैहीदरी, उनके पुत्र आसाढ सेन ने बनवाई।

तीसरा शिला लेख जैन मन्दिर के धर्मशाला के दीवार पर लगा हुआ है, जिसके द्वारा जैन मन्दिर के विषय में बात मालूम होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस लेख का कोई अधिक महत्त्व नहीं है। वर्तमान अवस्था में इस स्थान का केवल इतना ही महत्त्व है कि यहाँ जैनियों का एक मन्दिर है, जहाँ चैत के महीने में हर साल एक बड़ा मेला लगता है।

जलालपुर—यह स्थान तहसील हंडिया परगना मँह में फूलपुर स्टेशन से लगभग पाँच मील दक्षिण पूर्व के कोने में स्थित है जहाँ आजकल जलालपुर की आबादी है उसी से पूर्व दो बहुत बड़े टीले हैं। पूर्व वाला टीला लगभग ६० बीघे में और पश्चिम वाला लगभग ५० बीघे में फैला हुआ है। इनके चारों तरफ एक बड़ा ताल है जिसमें बारहों मास पानी भरा रहता है। दोनों टीले एक दूसरे से १५० गज की दूरी पर हैं। दोनों को मिलाते हुए एक ऊँचा रास्ता बना हुआ है। इस प्रकार ये टीले डमरू के रूप में मालूम होते हैं।

इन टीलों के विषय में लोगों का कहना है कि ये राजा बेन के कोट हैं। यहाँ के लोग इस कोट के विषय में एक कथा कहते हैं। कथा इस प्रकार है :—

किसी समय में यहाँ एक राजा राज्य करते थे जिनका नाम बेन था। इनके राज्य में प्रजा बड़ी सुखी थी। जीवन के आवश्यक वस्तु बहुत सस्ते मिलते थे। किसान लोग खेत का लगान एक कौड़ी बीघा देते थे। राजा के खजाने में रुपया अधिक नहीं रहता था। एक दिन रानी ने राजा को सलाह दी कि किसानों के लगान में एक एक कौड़ी और बढ़ा दी जाय तो किसानों को कष्ट भी न होगा और खजाने में कुछ अधिक धन भी हो जायगा। रानी की इस सलाह को राजा ने मंजूर कर लिया। अभी लगान में वृद्धि भी नहीं हो पायी थी कि एक दिन लोगों ने देखा कि कोट से एक बिल्ली तड़पती हुई बाहर भागी। किसी ने उस बिल्ली से पूछा कि उसकी ऐसी दशा क्यों है तो उस बिल्ली ने जवाब दिया कि राजा की नियत रानी के कहने से बिगड़ गई है जिसके कारण इस कोट पर थोड़े ही दिनों में कोई भयानक विपत्ति आने वाली है और यह कोट डीह हो जायगा। कुछ दिनों के बाद यह बात सत्य सिद्ध हुई। कोट नष्ट होकर डीह हो गया।

इन कथाओं से विद्वान इतिहासकार चाहे जो कुछ भी मतलब निकालें, किंतु यह बात सिद्ध है कि वहाँ के आसपास के लोग इस कथा में बहुत ही विश्वास रखते हैं।

इस स्थान तक मोटर से जाने वालों को फूँसी और हनुमानगंज होते हुये अठारह मील की सफर करनी पड़ेगी। रेल से जाने के लिये छोटी लाइन से हनुमानगंज जिसे आजकल रामनाथपुर कहते हैं उतरना पड़ता है वहाँ से सात मील कच्ची सड़क पर जाने के लिए बराबर इक्के मिलते हैं। बड़ी लाइन से जाने

वालों को फूलपुर स्टेशन पर उतरना पड़ता है, यहाँ से दक्खिन की तरफ तीसरे दर्जे की सड़क है। स्टेशन से इक्के मिल सकते हैं।

सिंगरौर—इस स्थान का प्राचीन नाम शृंगवेरपुर था जो अब बिगड़ते बिगड़ते सिंगरौर हो गया है। कहा जाता है और तुलसीकृत रामायण से सिद्ध भी है कि इस स्थान पर शृंगी ऋषि का आश्रम था, जहाँ बरगद के पेड़ से उलटे टंग कर हवा पीकर वह तपस्या करते थे। इन्होंने राजा दशरथ के यहाँ सन्तान उत्पत्ति के लिये पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया था, जिसके फलस्वरूप दशरथ जी के चार पुत्र हुए। इस स्थान का नाम उन्हीं के नाम पर रखा गया था।

मुस्लिम काल में भी सिंगरौर परगने का केन्द्र था। यहाँ गंगा तट पर ईंट का एक किला बना हुआ था, जिसके खण्डहर आज भी देखे जा सकते हैं। इस स्थान के पुरानी बस्ती के चिह्न गंगा के किनारे किनारे लगभग तीन चार मील तक पाये जाते हैं। इसके पश्चिमी भाग को 'भरभड़ी कुण्ड' और पूर्वीय भाग को 'सीता कुण्ड' कहते हैं।

गंगा के किनारे शृंगी ऋषि की एक समाधि बनी हुई है, और उसी के समीप उनकी स्त्री शान्ता माई का मन्दिर है। जहाँ आजकल असाढ़, सावन में कृष्ण पक्ष की सप्तमी अष्टमी, और रामनवमी वैसाख कृष्णपक्ष की तृतीया और कार्तिक की पूर्णिमा को मेले लगते हैं।

आर्कियालाजिकल रिपोर्ट' जिल्द ११ पृष्ठ ६३ में यह लिखा है कि जनरल कनिंघम को इस स्थान से बहुत से सिक्के प्राप्त हुए थे, जिनमें १०६ मुस्लिमकाल के २१, हिन्दू काल के तथा एक हिन्दू सिथियन काल का है। इन सिक्कों से इस स्थान की ऐतिहासिकता सिद्ध होती है।

अथरवन—इस नाम की कोई आबादी, गाँव या कस्बा नहीं है। इलाहाबाद जिले के मझनपुर तहसील के एक बड़े क्षेत्र को अथरवन परगना कहा जाता है। कहा जाता है कि सहस्रों वर्ष पहिले यह जंगल था। ऋषि-मुनि इस जंगल में तपस्या किया करते थे। ऋषियों में श्रेष्ठ अथर्वण ऋषि का, जो अथर्वेद के द्रष्टा-ऋषि कहे जाते हैं—यह क्षेत्र प्रधान स्थान रहा है, उन्हीं के नाम से इस क्षेत्र को अब भी पुकारा जाता है। इस क्षेत्र में अब भी पौराणिक काल के ऐतिहासिक स्थल पाये जाते हैं—यथा कौशाम्बी, पभोसा, अलवारा झील, रानीपुर, मदेवा आदि।

अलवारा भील—इलाहाबाद से ४० मील पश्चिम, यमुना नदी से दो मील उत्तर अलवारा गाँव में एक सुन्दर सरोवर है। पुराने लोग इसे दशरथ ताल कहा करते थे। उनका कहना था कि महाराज दशरथ ने जब श्रवण कुमार को अनजाने में शब्दवेधी बाण मारा था, तो दुख और ग्लानि से उनके हृदय को यहीं पर शान्ति मिली थी।

रानीपुर—इलाहाबाद से ४० मील पश्चिम यमुना तट पर कटरी और शाहपुर के बीच यह गाँव बसा है। यहाँ से एक मील उत्तर अलवारा का भील है। रानीपुर से पूरब एक मील पर टिकरा नाम का एक ऊजड़ स्थान है। कहा जाता है कि यहाँ पर बड़ा घना जँगल था। जँगली हाथी पकड़े जाते थे। अब भी यहाँ कोई आबादी नहीं है। अनेक प्रकार की आयुर्वेदिक जड़ी बूटियाँ अब भी पैदा होती हैं। सन् १८५७ के गदर में इस क्षेत्र के लोगों ने अपनी स्वाधीनता के लिये अंग्रेजों से लड़कर अपने प्राण दिये थे।

महेवा—इलाहाबाद से बाँदा जाने वाली सड़क के अन्तिम छोर पर यमुना के किनारे महेवा घाट है, दूसरे पार बाँदा जिले में श्री तुलसीदास जी की जन्म भूमि राजापुर है। इस महाकवि की ससुराल इसी महेवा में थी। यहीं से उन्हें वैराग्य हुआ था और घरबार छोड़कर वे साधु हो गये थे।

संगेती घाट—यह स्थान गंगा के किनारे है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण और सुदामा के गुरु सन्दीपन ऋषि का आश्रम यहाँ भी था। यज्ञ कुण्ड और चबूतरे अब भी बने हुए हैं। संगेती घाट के ठीक सामने नौबस्ता घाट के पास कृष्ण-वन नाम का जंगल है। यहाँ पर गुफा और मन्दिर आदि प्राचीन चिन्ह बने हुए हैं। लोगों का विश्वास है कि श्री कृष्ण और सुदामा जब सन्दीपन मुनि के यहाँ पढ़ते थे उस समय दानों मित्र अपने गुरु के यज्ञ के लिये लकड़ी बटोरने इसी वन में भी आया करते थे। इस वन में एक तलैया है जिसे सुदामा तलैया कहते हैं।

———

प्रयाग की संस्थागत देन

इलाहाबाद में कुछ सस्थाएँ ऐसी भी हैं जो अपने कार्यक्षेत्र की विशालता, विशेषता एवं विलक्षणता के कारण, स्थानीय अथवा प्रान्तीय स्तर पर न रहकर अखिल भारतीय समझी जाती है। इलाहाबाद का ताज-कमलानेहरू अस्पताल, प्रयाग संगीत समिति, हरिजन सेवक सघ, अखिल भारतीय स्वदेशी लीग, अखिल भारतीय स्काउट सघ, महामना मालवीय जी द्वारा प्रस्थापित अखिल भारतीय सेवा समिति, श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव चेयरमैन पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा सस्थापित 'भिक्षुक संघ', (जिसका मुख्य उद्देश्य देश से भिक्षा माँगने की प्रथा को आमूल नष्ट कर देना और साथ साथ पहिले के भिक्षुओं में जो समर्थ हैं उनसे काम लेना और असमर्थ को भोजन वस्त्र तथा स्थान का प्रबन्ध सघ द्वारा किया जाना है) आदि ऐसी ही सस्थाएँ हैं। यहाँ पर आल इण्डिया रेडियो स्टेशन (जो अब तक केवल ५ किलोवाट का है किन्तु निकट भविष्य में भारत सरकार के पचसाला योजना के अन्तर्गत ५० किलोवाट का हो जायगा। इस प्रकार इस स्टेशन की गणना भारत के प्रथम श्रेणी में हो जायगा), और बम्हरौली स्थित हवाई जहाज का अड्डा भी है। सब से पहिले हवाई डाक इसी अड्डा के द्वारा भेजा गया था, और आज भी एशिया का कोई हवाई जहाज नहीं है जो अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के पहले इस अड्डे से न गुजरे।

एग्रिकलचर इन्स्टीट्यूट नैनी—यह विद्यालय सन् १९१२ ई० में अमेरिकन प्रिसबिटेरियन मिशन द्वारा खोला गया था। इसमें कृषि विज्ञान की शिक्षा क्रियात्मक रूप से दी जाती है, जिसके दो विभाग हैं। एक में खेती की सामान्य शिक्षा, नये नये यन्त्रों द्वारा तथा आधुनिक शैली के अनुसार दी जाती है, दूसरे में मक्खन और पनीर आदि बनाना तथा पशु पालन और उनकी देख रेख आदि सिखाया जाता है।

राजकीय कारपेन्टरी स्कूल—यह स्कूल सन् १९१६ ई० में खोला गया। इसमें दो विभाग हैं। एक में लकड़ी का हर प्रकार का काम सिखाया जाता है और दूसरे में रगाई, पालिश तथा कुर्सी की बुनाई की शिक्षा दी जाती है।

हिन्दी विद्या पीठ—यह सस्था हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से

सन् १६१८ ई० में खोला गया था किन्तु कुछ दिन जारी रह कर बन्द सा हो गया था। सन् १६२३ ई० में इसका पुनर्जन्म वर्तमान रूप में जमुना उस पार हुआ। इसमें प्रथमा, मध्यमा एवं उत्तमा के पढाई के अतिरिक्त नये ढंग से कृषि की शिक्षा, हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा दी जाती है। संस्था का एकान्त स्थान और इमारतें लखनऊ जिला के ससेंड़ी रियासत द्वारा प्रदान किया गया है। इसमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। आजकल इस संस्था का प्रबन्ध राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के हाथ में है।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त स्थानीय म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा एक लेदर स्कूल खोला गया है जिसमें विद्यार्थियों को चमड़े का काम सिखाया जाता है। जिला बोर्ड की ओर से तहसील मझनपुर स्थित सरसवा में मिडिल स्कूल में कृषि पाठशाला, बुनाई का स्कूल सन् १६२५ में कड़ा में और सन् १६२६ ई० में मऊआयमा में खोला गया है। यहाँ मौलवी अहमद हुसैन द्वारा सन् १६२६ में संस्थापित एक यूनानी मेडिकल कालेज भी है जिसे सरकारी मान्यता प्राप्त है। इसमें चार वर्ष की पढाई का कोर्स है।

सन् १६२५ ई० में कटरा में यू० पी० कामर्स इन्स्टीट्यूट एक संस्था स्थापित की गई, जिसमें टाइपराइटर का काम, शार्टहैंड, तथा हिसाब किताब रखने की शिक्षा दी जाती है। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये यहाँ विश्वविद्यालय में 'यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कालेज है। यहाँ से विद्यार्थी गण एम० ई० डी० तथा बी० ई० डी० की डिग्री प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त कायस्थ पाठशाला तथा गवर्नमेन्ट कालेज में एल० टी० की शिक्षा दी जाती है। यहाँ गवर्नमेन्ट कालेज आफ फैजिकल एजुकेशन भी है जहाँ से लोग डी० पी० ई० की डिग्री प्राप्त करते हैं। यहाँ सेन्ट्रल पिडेगाजिकल इन्स्टीट्यूट भी स्थापित है। विशेष शिक्षा के लिये यहाँ एक संस्था पायनियर वर्कशाप है जिसमें साइकिल, सइकिल के पुर्जे तथा मोटर के पुर्जे तैयार किये जाते हैं। यहाँ क्षयी रोग निवारणार्थ एक सेनिटोरियम भी है जो पहिले करैलाबाग में था और अब उठकर अपने नई इमारत में चली गई है जो शिरकोटी में बनाई गई है।

प्रयाग महिला विद्यापीठ—सरकारी शिक्षा विभाग से स्वतन्त्र, तथा जापान आदि अन्य विदेशी स्त्री शिक्षा के आदर्शों पर विचार करके प्रो०, डी० के० कार्वे ने एक इंडियन विमेन यूनिवर्सिटी पूना में स्थापित किया था। उसी के

सन् १६१८ ई० में खोला गया था किन्तु कुछ दिन जारी रह कर बन्द सा हो गया था। सन् १६२३ ई० में इसका पुनर्जन्म वर्तमान रूप में जमुना उस पार हुआ। इसमें प्रथमा, मध्यमा एवं उत्तमा के पढाई के अतिरिक्त नये ढंग से कृषि की शिक्षा, हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा दी जाती है। संस्था का एकान्त स्थान और इमारतें लखनऊ जिला के ससेंडी रियासत द्वारा प्रदान किया गया है। इसमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। आजकल इस संस्था का प्रबन्ध राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के हाथ में है।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त स्थानीय म्युनिसिपिल बोर्ड द्वारा एक लेदर स्कूल खोला गया है जिसमे विद्यार्थियों को चमड़े का काम सिखाया जाता है। जिला बोर्ड की ओर से तहसील मझनपुर स्थित सरसवा के मिडिल स्कूल मे कृषि पाठशाला, बुनाई का स्कूल सन् १६२५ मे कड़ा में और सन् १६२६ ई० में मऊआयमा में खोला गया है। यहाँ मौलवी अहमद हुसैन द्वारा सन् १६२६ में संस्थापित एक यूनानी मेडिकल कालेज भी है जिसे सरकारी मान्यता प्राप्त है। इसमें चार वर्ष की पढाई का कोर्स है।

सन् १६२५ ई० में कटरा में यू० पी० कामर्स इन्स्टीटयूट एक संस्था स्थापित की गई, जिसमें टाइपराइटर का काम, शार्टहैंड, तथा हिसाब किताब रखने की शिक्षा दी जाती है। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये यहाँ विश्वविद्यालय में 'यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कालेज है। यहाँ से विद्यार्थी गण एम० ए० डी० तथा बी० ए० डी० की डिग्री प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त कायस्थ पाठशाला तथा गवर्नमेन्ट कालेज में एल० टी० की शिक्षा दी जाती है। यहाँ गवर्नमेन्ट कालेज आफ फैजिकल एजुकेशन भी है जहाँ से लोग डी० पी० ई० की डिग्री प्राप्त करते हैं। यहाँ सेन्ट्रल पिडेगाजिकल इन्स्टीटयूट भी स्थापित है। विशेष शिक्षा के लिये यहाँ एक संस्था पानियर वर्कशाप है जिसमें साइकिल, साइकिल के पुर्जे तथा मोटर के पुर्जे तैयार किये जाते हैं। यहाँ क्षयी रोग निवारणार्थ एक सेनिटोरियम भी है जो पहिले कैलाबाग में था और अब उठकर अपने नई इमारत में चली गई है जो शिवकोटी में बनाई गई है।

प्रयाग महिला विद्यापीठ—सरकारी शिक्षा विभाग से स्वतन्त्र, तथा जापान आदि अन्य विदेशी स्त्री शिक्षा के आदर्श पर विचार करके प्रो०, डी० के० कार्वे ने एक इण्डियन विमेन युनिवर्सिटी पूना मे स्थापित किया था। उसी—

आगार पर यहाँ भी एक संस्था प्रयाग महिला विद्यापीठ २ फरवरी सन् १६२२ ई० में खोला गया। इसमें विद्याविनोदिनी, विदुषी तथा सरस्वती की डिग्री दी जाती है। इस संस्था के अन्तर्गत एक महिला सेवा सदन भी खोला गया है जिसकी प्रधान अध्यापिका प्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती महादेवी जी वर्मा हैं।

संस्कृत पाठशाला—धर्मोज्ञानोपदेश संस्कृतपाठशाला बहुत प्राचीन है। इसको श्री हरिदेव ब्रह्मचारी ने सन् १८८५ ई० में स्थापित किया था। मालवीय जी की प्रारम्भिक शिक्षा इसी पाठशाला में हुई थी। मिरजापुर निवासी पं० गुरुचरण उपाध्याय ने सन् १८६८ ई० में छतनाग में एक पाठशाला खोला था। सन् १८६१ ई० में पं० मथुराप्रसाद त्रिपाठी ने सरयूपारी ब्राह्मण पाठशाला, झूँसी के प्रसिद्ध दानी रईस लाला किशोरी लाल द्वारा 'किशोरीलाल संस्कृत पाठशाला, सन् १६१३ ई० में योगानन्दाश्रम संस्कृत पाठशाला झूँसी, सन् १६२० ई० में हिवेट रोड पर सौदामिनी संस्कृत पाठशाला, सन् १६२६ में निर्वाणी अखाड़ा संस्कृत पाठशाला स्थापित किया गया। इन सब पाठशालाओं के अतिरिक्त यहाँ एक 'मूक बधिर विद्यालय' भी है जो सन् १६२६ में स्थापित किया गया है जिसमें आजकल ५० गूँगे और बहिरे लड़कों को शिक्षा दी जाती है।

इलाहाबाद का ताज

कमला नेहरू अस्पताल—इलाहाबाद में पं० जवाहरलाल जी नेहरू द्वारा संस्थापित 'कमला नेहरू अस्पताल' का वही स्थान है जो शाहजहाँ द्वारा बनवाये हुये आगरे में 'ताज' का है।

भारतीय राजनीति में जो स्थान जवाहरलाल जी का है वह सब पर विदित है। उस क्षेत्र में कमलाजी ने अपने पति का पूरा पूरा साथ दिया। दिन रात कार्य व्यस्त होने के कारण कमला जी का स्वास्थ्य बिलकुल गिर गया। अन्त में औषधि एवं अन्य उपचारों की सुविधा होते हुए भी अपने घर से बहुत दूर विदेश में २८ फरवरी सन् १६३६ को असमय और कुसमय में काल कवलित हो गईं। मरणासन्न अवस्था में 'स्वराज्य भवन अस्पताल' के सम्वर्द्धन और उसमें बालकों तथा स्त्रियों के लिए अस्पताल खोलने का विचार उनके तड़पते हृदय में एक हूक सी पैदा कर देती थी। मरने के बाद उनके स्मृति में एक अस्पताल खोलने का विचार उनके सहकारियों, प्रशसकों तथा साथियों में पैदा हुआ। कोष के

सहायता के लिए मालवीय जी के अगुआई में एक अपील की गई। देश विदेश से जनवरी १९४१ तक ३½ लाख रुपया एकत्रित हुआ। प० जवाहरलाल नेहरू ने अपने आनन्द भवन की कुछ ज़मीन, स्वराज्य भवन के ट्रस्टियों द्वारा समर्पित कुछ जमीन तथा म्युनिसिपिल बोर्ड द्वारा दी हुई १५) प्रति एकड़ सालाना के लगान पर १० एकड़ जमीन पर वर्त्तमान अस्पताल बना। इस कोष का प्रबन्ध तथा प्रस्तावित अस्पताल बनवाने के लिए एक समिति बनाई गई। इसमें ये मालवीयजी, जवाहरलाल, विजय लक्ष्मी, जीवराज मेहता, तथा सैयद अहमद इत्यादि।

इस अस्पताल का नक्शा सर्वश्री मास्टर साठे एण्ड भूटा ने बनवाया और निर्माण का काम डा० जीवराज मेहता की देख रेख में सर्वश्री पैलोन जी इदलजी एण्ड सन्स बम्बई ने शुरू किया। २८ फरवरी १९४१ को बापू ने अपने कर कमलों से इस अस्पताल का उद्घाटन किया। श्रीमती डा० सत्यप्रिय माजूमदार प्रथम सुपरिन्टेन्डेन्ट के एक साल बाद से डा० सामन्त के निरीक्षण में इस अस्पताल की आशातीत उन्नति हुई। आज इस अस्पताल का स्थान भारत के स्त्रियों के लिए सर्व श्रेष्ठ है। कांग्रेस अस्पताल भी इसी में सम्मिलित कर दिया गया। सन् १९४२ में इस अस्पताल द्वारा २६११० रोगियों तथा सन् १९४८ में ५५७८४ रोगियों की सेवा सुश्रुषा और उपचार किया गया।

स्थानीय नगरपालिका द्वारा दिये हुए १०००) से इसमें दाइयों के प्रशिक्षण का कार्य आरम्भ हुआ। तत्पश्चात उत्तर प्रदेशीय सरकार ने इसको दाइयों के प्रशिक्षण केन्द्र की मान्यता सन् १९४४ ई० में प्रदान की। कस्तूरबा गाँधी स्मारक ट्रस्ट ने भी इसको अपनी ओर से दाइयों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र बनवाया। सन् १९४६ से इस अस्पताल ने गर्भिणी स्त्रियों की सेवा सुश्रुषा तथा बच्चा पैदा करने का काम अपने हाथ में लिया।

बम्बई के साप्ताहिक ब्लिटज अखबार ने चन्दा करके इसके कोष में ३ लाख रुपया दिया। जवाहरलाल नेहरू जी को अपने भारतीय दौरे में विभिन्न स्थानों से इस कोष के लिए थैलियाँ भेंट मिलीं, जिसमें ४० हजार रुपया शापुरजी दोन्नमजी बम्बई, २००००) महाराजा जोधपुर, २० हजार पद्मपत सिंहानिया कानपुर आदि ने दिया। उत्तर प्रदेश सरकार न सर फ्रेन्सिस वादर्ली के समय में एक लाख तथा वर्त्तमान सरकार ने २½ लाख रुपया इमारत बनाने के लिए दिया।

इस समय पन्द्रह लाख की लागत से अस्पताल के सम्बर्द्धन का विचार किया-

जा रहा है जिसमें से ७½ लाख रुपया एकत्रित हो चुका है। जमीन के लिए पी०

स्वर्गीय कमला नेहरू

डब्लू० डी० इन्जीनियर का बंगला २१६३३) में खरीद लिया गया है। लाला मनमोहनदास जी ने भी इस कार्य के लिए तीन हजार वर्ग फीट जमीन प्रदान की है।

आजकल इसमें १०० रोगियों की दवा अस्पताल में रखकर की जाती है जिसमें ७० बिल्कुल निःशुल्क हैं और शेष ३० में आंशिक शुल्क तथा कुछ पूरे शुल्क
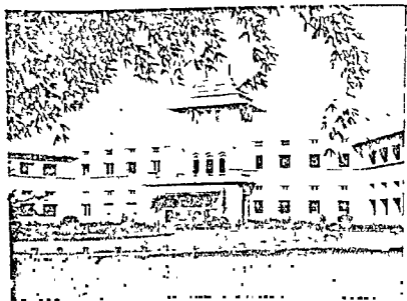
कमला नेहरू अस्पताल

पर रखे जाते हैं। इसका कोष सन् १९४१ में ३७१०००॥) था, दिसम्बर १९४८ तक १५२५०००) हो गया है। इस अस्पताल में १९४१ में ४५८४८॥-)॥। खर्च हुआ था सन् १९४८ में १३६४८३-)॥। है। अब इसका खर्च बढता ही जा रहा है। सालाना खर्च के लिए सन् १९४७ से उत्तर प्रदेशीय सरकार २००००) तथा प्रयाग नगरपालिका ६०००) सालाना दे रही है। बाहरी रोगियो के उपचार के लिए इसी अस्पताल के दूसरे खण्ड में जिसका नाम 'बेगम अबुल कलाम आजाद खण्ड' है, किया जाता है। इसमें सम्वर्द्धन का कार्य बराबर चल रहा है।

प्रयाग संगीत समिति

भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार और प्रसार के लिए समय समय पर सुविख्यात कलाकारों द्वारा गायन, वादन तथा नृत्यकला का प्रदर्शन एवं संगीत विषयक व्याख्यानों का आयोजन करने, प्रति वर्ष संगीत सम्मेलन आयोजित करने और संगीत को सभी शिक्षण विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के उद्देश्य से प्रयाग संगीत समिति की स्थापना ११ फरवरी सन् १९२६ ई० में शिवरात्रि के पुण्य अवसर पर हुई। श्री बी० ए० कशालकर के संयोजकत्व में एक सभा हुई जिसमें हरिजन आश्रम के संस्थापक लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्ति मुन्शी ईश्वर शरण ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सभा में भाग लेने वाले महानुभावों में सर्वश्री स्वर्गीय राय साहब सत्यानन्द जोशी, पण्डित गोपाल दत्त तिवारी तथा प्रो० एस० एस० शर्मा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस सभा ने एक उपसमिति का निर्माण किया। तदुपरान्त मेजर रजीतसिंह अध्यक्ष तथा स्वर्गीय श्री बैजनाथ सहाय जी प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुए।

डा० मेजर रजीतसिंह

समिति ने उक्त उद्देश्यों की पूर्ति में कार्य सचालित किया। प्रति सप्ताह गायन, वादन और नृत्य कला का प्रदर्शन स्थानीय कलाकारों के द्वारा आयोजित हुआ। इसके अतिरिक्त समय समय पर प्रयाग में आये हुए उच्चकोटि के संगीत कलाकारों को आमन्त्रित कर समिति ने उनके कलात्मक संगीत प्रदर्शनों से पर्याप्त लाभ उठाया। इन कलाकारों में सर्वश्री मैहर दरबार के प्रसिद्ध संगीतज्ञ अलाउद्दीन खाँ, ग्वालियर के प्रसिद्ध गायक प्रो० नारायण

दामोदर, कलकत्ता के पंडित जटाधारी झा, दरभंगा राज्य के प० रामेश्वर पाठक तथा प्रो० करामत उल्लाह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

विश्वविद्यालय संगीत परिषद—प्रयाग संगीत समिति के सर्वश्रेष्ठ कार्यों में विश्वविद्यालय संगीत परिषद की स्थापना अत्यन्त सराहनीय है। कानपुर में संगीत समाज, आगरा, फैजाबाद, रायबरेली तथा अन्यान्य स्थानों में संगीत परिषदों की स्थापना हुई। इन संगीत परिषदों को समिति ने पूर्ण सहयोग दिया।

समिति भवन—धीरे धीरे आवश्यकतानुकूल समिति ने नगर के विभिन्न स्थानों में अपनी शाखायें स्थापित कीं। समिति के पदाधिकारियों ने राजकीय सहायता प्राप्त की। स्वीकृति के लिए शिक्षा सचालक से आवेदन किया। फलत तत्कालीन शिक्षा मन्त्री स्वर्गीय श्री राय राजेश्वर बली साहब तथा शिक्षा सचालक श्री ए० एच० मेकेंज़ी के सहयोग से १५००) नानरिकरिंग तथा २०००) रिकरिंग वार्षिक स्वीकृति मिली। उपर्युक्त अधिकारी वर्ग तथा सर सी० वाई० चिन्तामणि जी का इस समिति के प्रति सहयोग एव साहचर्य अत्यन्त प्रशसनीय है। म्युनिसिपल बोर्ड ने ५०,०००) मूल्य की भूमि समिति के नूतन भवन के निर्माण के लिये प्रदान किया। ह्यूम मेमोरियल कमेटी के अध्यक्ष सर तेजबहादुर सप्रू ने कमेटी की ओर से ७०००) कोष समिति को दान किया। इस प्रकार भवन निर्माण के लिए एकत्रित कोष की सहायता से सन् १९२६ ई० में एक विशाल भवन निर्मित हुआ। इसमें १३ कमरे
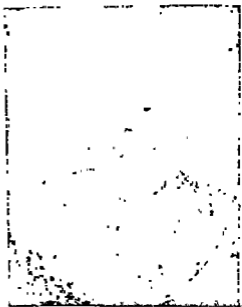
श्री हरी मोहन डे मे कम्पनी के सस्थापक

और एक बड़ा हाल है जो ६० फीट लम्बा और ४० फीट चौड़ा है, और जिसमें लगभग १२०० व्यक्ति बैठ सकते हैं। छात्रावास तथा अध्यापकों के वासस्थानों को लेकर समिति के इस विशाल भवन के निर्माण में लगभग दो लाख रुपया व्यय हुआ। भारत में संगीत का इतना विशाल और सुन्दर भवन अभी तक कहीं भी निर्मित नहीं हुआ।

संगीत पुस्तकालय—हिज़ हाइनेस महाराजा धरमपुर ने संगीत पुस्तकालय के लिए ५००) दान किया। समिति के मन्त्री स्वर्गीय श्री बैजनाथ सहाय जी ने एक पुस्तकालय भवन बनवाया जिसका नाम 'चन्द्रावती लाइब्रेरी हाल' रखा गया जो उनकी धर्म पत्नी स्वर्गीया श्रीमती चन्द्रावती की पुण्य स्मृति के उपलक्ष में निर्मित हुआ। बड़ौदा और बीकानेर को छोड़कर भारत में इस प्रकार का पुस्तकालय कहीं भी नहीं है, जहाँ संगीत की सभी पुस्तकें तथा हस्त लिपियाँ संग्रहीत हों।

शिक्षक मण्डल—समिति का क्षेत्र विकसित और विस्तृत होने पर योग्य शिक्षकों की नियुक्ति पर्याप्त मात्रा में हुई। सर्व प्रथम श्री आर० के० पटवर्धन प्रधानाचार्य नियुक्त किये गये, जिन्होंने लगभग बीस वर्ष (१९२६ से १९४६) तक संगीत अध्यापन द्वारा समिति की सेवा की। तदुपरान्त श्री महेशनारायण सक्सेना निर्देशक के पद पर नियुक्त किये गये, जिन्होंने तीन वर्ष (१९४७ से १९५०) तक संगीत समिति का निर्देशन किया। इसके पश्चात् श्री बी० ए० कशालकर ने संगीत निर्देशन का भार अपने ऊपर लिया और लगभग ढाई वर्ष तक समिति की सेवा की। श्री कशालकर जी के अवकाश प्राप्ति के बाद श्री जगदीश नारायण पाठक ने रजिस्ट्रार का कार्य सम्पन्न करते हुए निर्देशक के कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। श्री जे० एन० पाठक जी ने अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह, एवं तन्मयता के साथ समिति का कार्य संचालित करते हुए उसे उन्नति की ओर अग्रसर किया जिसके फलस्वरूप समिति में आज दिन सत्रह संगीत अध्यापक तथा ४०० छात्र हैं। श्री जे० एन० पाठक जी ने अपने अध्यापकीय जीवन में संगीत समिति के इतिहास में जो सबसे महत्वपूर्ण और सराहनीय कार्य किया है वह यह है कि इस समिति की परीक्षाओं का केन्द्र उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त भारत के सभी प्रदेशों में स्थापित किया जहाँ से हजारों की संख्या में परीक्षार्थी संगीत की परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं।

प्रयाग संगीत समिति के द्वारा निर्दिष्ट सभी विषयों का अध्ययन कुल आठ वर्ष का है। जिसके अन्तर्गत दो-दो वर्ष के अनन्तर चार प्रमुख परीक्षायें होती हैं।

१—द्वितीय वर्ष (जूनियर डिप्लोमा)
२—चतुर्थ वर्ष (सीनियर डिप्लोमा)
३—षष्ठम वर्ष (संगीत प्रभाकर)
४—अष्टम वर्ष (संगीत प्रवीण या एम० म्यूज०)

उपर्युक्त परीक्षाओं की मान्यता अधिकांश प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्वीकृत हो चुकी है।

हरिजन सेवक संघ—गोलमेज कान्फ्रेन्स के असफल सिद्ध होने पर मि० मैक्डानेल्ड तात्कालिक ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने मनमाना 'साम्प्रदायिक निर्णय' किया, जिसके फलस्वरूप हिन्दू, अछूतों को अपने से पृथक् समझने के लिए बाध्य थे। इस अन्याय के विरोध में महात्मा गाँधी ने सन् १६३२ में एक ऐतिहासिक आमरण अनशन किया। पूना पैक्ट बना, और इसके फल स्वरूप अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई, जिसकी शाखाएँ भारत के विभिन्न भागों में खोले गये। इलाहाबाद को भी इस अनशन से प्रेरणा प्राप्त हुई और मुँशी ईश्वरशरण के अध्यक्षता में यहाँ भी ८ जनवरी १६३३ में उसकी एक शाखा कायम की गई। साथ साथ सवर्ण हिन्दू तथा अछूतों के साथ साथ रहने के लिये एक आश्रम भी खोला गया। यही हरिजन सेवक संघ के नाम से प्रचलित हुआ। हरिजन सेवक संघ का नाम लेते ही मुँशी ईश्वरशरण का रूप स्वभावत आँखों के सामने आ जाता है इसलिये उनका संक्षिप्त जीवन चरित्र जान लेना आवश्यक है।

मुँशी ईश्वर शरण—इस संघ के संस्थापक और प्रथम सभापति थे। यह शिक्षा, समाज तथा राजनीति के क्षेत्र के एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उनका जन्म शहर गोरखपुर में कायस्थ वंश के एक उच्च वकील के घर २६ अगस्त १८७४ में हुआ था। जन्म से गोरखपुरी होते हुये भी आपका सेवा क्षेत्र प्रयाग ही था। उन्होंने म्योर सेन्ट्रल कालेज में शिक्षा प्राप्त की और प्रयाग ही के हाईकोर्ट में अन्त तक वकालत किया। सन् १६२० से उन्होंने वकालत छोड़ दिया और अपना सारा जीवन सार्वजनिक सेवा में लगा दिया। वह भारत के प्रथम एवं तृतीय

लेजिस्लेटिव असेम्बली दिल्ली के सदस्य चुने गये। वह प्रान्तीय सामाजिक एवं राजनैतिक कान्फ्रेंस के अध्यक्ष भी थे। वह वकालत के सिलसिले में कई बार विलायत गये, जहाँ उन्होंने भारत के लिये पर्याप्त प्रचार किया। वह उत्तर प्रदेश के सबसे बड़ी संस्था कायस्थ पाठशाला ट्रस्ट प्रयाग के प्रेसीडेन्ट थे। प्रयाग तथा हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस से आपका बहुत निकट का सम्बन्ध था।

जबसे हरिजन सेवक संघ स्थापित हुआ है तब से, मृत्यु पर्यन्त (१ जनवरी १९४७) आपने अपना सारा तन मन धन इसी को समर्पित कर दिया था। संघ १८६० के एक्ट २१ के अनुसार रजिस्ट्री किया हुआ संस्था है।

आश्रम ने अपने प्रारम्भिक काल में शहर के विभिन्न भागों में कुछ छोटे-छोटे मकान किराये पर ले रखा था, अन्त में चादपुर सलोरी में जहाँ हरिजनों की बस्ती अधिक है २० एकड़ जमीन सरकार से प्राप्त की जो शहर के प्रयाग स्टेशन से एक मील की दूरी पर है। यह स्थान गंगा जी के तट पर है। इस संघ के अधिकार में ७० एकड़ जमीन है, जिस पर यह संस्था आज बसा-रसा है। मुंशी जी के प्रयत्न से सरकार ने चन्दा के रकम पर आयकर एक्ट के दफा १५-वीं के अनुसार इनकम टैक्स कर उठा लिया, जिससे चन्दा देने वालों को सुविधा हो गई है।

इस समय आश्रम में एक अस्पताल है जिसमें चीरफाड़ के लिये भी सुविधा है और जिसमें लगभग १०० बीमारों को प्रतिदिन दवा होती है। इसमें एक छात्रालय लड़कों के लिये और दूसरा लड़कियों के लिये है, जिसमें रहने और रोशनी के लिए नि शुल्क प्रबन्ध है। कुल को तो नहीं किन्तु अधिक सख्या में खाना भी मुफ्त दिया जाता है। लड़कियों के लिये एक जूनियर हाई स्कूल है जिसमें लड़कियाँ प्रवेशिका, विद्या विनोदनी और गृहस्थी शास्त्र तथा दस्तकारी विषयों के साथ हाई स्कूल के लिए तैयार की जाती हैं। छात्रगण भोजन बनाने, बर्तन धोने, तथा कमरा साफ करने का काम स्वयं अपने अपने हाथ से करते हैं। बड़े लड़के, छोटे लड़कों को शिक्षा देते हैं।

आश्रम में स्कूल की, दो छात्रालय, कार्यकर्ताओं के आवास के लिये, दफ्तर, एक बड़ा कमरा और आतिथ्यशाला, चमड़ा सिखाने तथा कारखाने के लिये विभिन्न इमारतें हैं। यहाँ जीवन निर्वाह सम्बन्धी स्कूल में, दर्जी, लकड़ी तथा चमड़े का काम सिखाया जाता है। अछूतों के प्रति घृणा करने वाले सवर्ण

हिन्दुओं को उनके प्रति ऐसा न करने तथा अछूतों के बीच अपना जीवन स्तर ऊँचा बनाने के लिए प्रचार कार्य भी किया जाता है।

इस समय योग्य पिता के योग्य पुत्र जस्टिस शम्भर सरन जो आजकल कस्टोडियन जनरल हैं, इस संघ के सभापति हैं।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी की स्थापना १९२७ में हुई। १९२५ और १९२६ के प्रांतीय धारा सभा में यह माँग हुई थी कि हिन्दी और उर्दू साहित्य की अभिवृद्धि तथा प्रोत्साहन के निमित्त, मौलिक तथा अनुवाद ग्रंथों के सृजन के लिए, तथा साहित्यिकों की सहायता के लिए शासन एक संस्था स्थापित करे और उसे एक लाख, दो लाख वार्षिक अनुदान देकर इस कार्य को अग्रसर करे। शासन की प्रतिक्रिया अनुकूल थी और परिणाम स्वरूप हिन्दुस्तानी एकेडेमी अस्तित्व में आई। शासन से पहले वर्ष २५,००० की सहायता मिली और सिवाय इसके कि दो वर्ष ५०,००० और दो वर्ष ३०,००० की सहायता इसे मिली, इसे २५,००० की वार्षिक सहायता मिलती रही है।

एकेडेमी की स्थापना सोसाइटी रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के अन्तर्गत एक रजिस्टर्ड संस्था के रूप में हुई। इसके प्रमुख उद्देश्य रहे हैं"—मौलिक तथा अनुवादित साहित्य का सृजन, लेखकों को पुरस्कार देना, विद्वानों के व्याख्यानों का आयोजन करना और एक पुस्तकालय की स्थापना करना। इसके विधान में दो मुख्य अंग रहे हैं, अर्थात् एक कौंसिल और एक कार्यकारिणी समिति। १९४३ में संस्था के पुनर्गठन से पूर्व इन दोनों समितियों के सदस्य प्रायः सभी शासन द्वारा निर्वाचित होते थे।

१९४३ के अनन्तर एक निश्चित संख्या में कौंसिल के सदस्य यूनिवर्सिटियों तथा प्रमुख साहित्यिक संस्थाओं की ओर से प्रतिनिधि के रूप में आने लगे और कार्यकारिणी में पदाधिकारियों के अतिरिक्त, जो शासन द्वारा निर्वाचित होते हैं, शासन तथा कौंसिल द्वारा निर्वाचित सदस्यों का अनुपात ४ : २ के स्थान पर २ : ४ हो गया। अर्थात् कौंसिल तथा कार्यकारिणी दोनों ही समितियों में

शासकीय निर्वाचन के साथ-साथ प्रतिनिधित्व को प्रश्रय मिला। हिन्दी तथा उर्दू पर व्यय का अनुपात १६४७ के अन्त तक मोटे ढंग से ५० : ५० का रहा है। अक्तूबर १६४७ में शासन का संकेत हुआ कि व्यय ८० : २० के अनुपात में हो, तब से प्रायः इसी अनुपात में हिन्दी उर्दू पर व्यय हो रहा है।

हिन्दी तथा उर्दू साहित्यों की सुरक्षा तथा अभिवृद्धि के व्यापक उद्देश्य को सामने रख कर २५,००० की राशि कभी पर्याप्त नहीं रही है, और पिछले दस वर्षों में संसारव्यापी आर्थिक परिस्थितियों के कारण यह राशि बहुत क्षुद्र सी रह गई है। फिर भी शासकीय सहायता में अभिवृद्धि की आशा तथा आश्वासन पर संस्था अपने निश्चित उद्देश्यों के पालन में लगी रही है। यह स्पष्ट है कि संस्था का ध्येय प्रचार नहीं रहा है और जो कुछ कार्य उसने किया है उसे ठोस आधार पर करने का प्रयत्न किया है।

एकेडेमी के पहले सभापति १६२७ से १६३६ तक स्वर्गीय सर तेजबहादुर सप्रू थे, उसके अनन्तर स्वर्गीय डाक्टर राय राजेश्वरबली सभापति रहे और १६४५ से श्री कमलाकांत वर्मा सभापति हैं।

२५ वर्षों के कार्यों का और एकेडेमी के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष सेवाओं का संक्षेप में वर्णन कठिन है। जो कार्य एकेडेमी के स्थूलरूप में सामने आए हैं वे ये हैं :—

१. एकेडेमी ने अब तक १४ व्याख्यानमालाओं के प्रबन्ध किए हैं और इनमें से १० पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुके हैं, कुछ दोनों भाषा-शैलियों में। व्याख्याताओं में ऐसे विद्वान् हैं:—मौ० अब्दुल्ला यूसुफअली, महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, स्व० महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, मौ० सैयद सुलेमान नदवी; डाक्टर ताराचन्द, डाक्टर भगवानदास, मौ० अब्दुलहक, डाक्टर अब्दुस्सत्तार सिद्दीकी, डाक्टर ज़ाकिर हुसेन, पं० पद्मसिंह शर्मा, श्री एन० सी० मेहता, श्री राहुल सांकृत्यायन, डाक्टर बाबूराम सक्सेना।

२. एकेडेमी ने अब तक २५ हिन्दी उर्दू लेखकों को उनकी प्रतिष्ठित रचनाओं के लिए पुरस्कृत किया है। यह सही है कि अपने कोष की सीमाओं को देखते हुये यह पुरस्कार ५-५ सौ रुपये के ही रहे हैं। इनके अतिरिक्त दो रचनाओं पर १२-१२ सौ के पुरस्कार दिये गये हैं। आरम्भ में विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए ८ पुरस्कार १००-१०० के उन्हें भी दिये गये हैं।

३. एकेडेमी का मुख्य कार्य प्रकाशनों का रहा है। इस दिशा में यह कहा जा सकता है कि संस्था ने ठोस कार्य किया है। अधिकांश प्रकाशन बड़े महत्व के तथा प्रामाणिक हैं और भारी भरकम हैं। एकेडेमी का उद्देश्य मुख्यतया साहित्य की उन कमियों की पूर्ति करता रहा है, जिनकी पूर्ति में साधारण व्यावसायिक प्रकाशक रुचि नहीं ले पाते हैं। संस्था ने अब तक १२१ पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमें ७५ हिन्दी की और ४६ उर्दू की हैं। विषयक्रम से उनकी तालिका इस प्रकार है :—

हिन्दी ७६.

काव्य (प्राचीन) ६१, काव्य (नवीन) १, नाटक (मौलिक) १, नाटक (अनुदित) ६, समीक्षा ४, साहित्यिक इतिहास ४, साहित्यिक जीवनी ७, भाषाशास्त्र ५, लोकसाहित्य १, सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास ६, इतिहास तथा ऐतिहासिक जीवनी ७, स्थानीय इतिहास ३, समाज शास्त्र, अर्थ शास्त्र तथा राजनीति ६, ललित कला १, उपयोगी कला १, दर्शन तथा मनोविज्ञान ४, प्राणिशास्त्र १, खगोल १, विज्ञान २, पुस्तक साहित्य २।

उर्दू : ४६ :—साहित्यिक समह ८, साहित्यिक इतिहास २, नाटक (अनुदित) ३ समीक्षा २, साहित्यक जीवनी ३, भाषाशास्त्र १, लोक साहित्य १, सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास ५, ऐतिहासिक जीवनी ३, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र तथा राजनीति ६, उपयोगी कला २, दर्शन तथा मनोविज्ञान ५, खगोल १, प्राणि शास्त्र १, शिक्षा विज्ञान १, पुस्तक साहित्य १।

सन् १६३१ से ४८ तक एकेडेमी ने उर्दू और हिन्दी में 'हिन्दुस्तानी' नामक त्रैमासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया है, जिसे आर्थिक कठिनाइयों के कारण स्थगित करना पड़ा। एकेडेमी ने ६ साहित्यिक अधिवेशनों के आयोजन किये। एकेडेमी ने एक पुस्तकालय स्थापित किया है जिसमें लगभग दस हजार पुस्तकें हैं और जिस पर संस्था ने २५,०००) व्यय किया है। एकेडेमी का अपने प्रकाशनों का एक बड़ा स्टाक है जिसका अनुमानित मूल्य ४ लाख रुपयों से ऊपर है।

एकेडेमी के लिए यह किंचित श्रेय की बात है कि उसके अनुकरण में बिहार प्रदेश में राष्ट्र भाषा परिषद संस्था, शासन की पर्याप्त सहायता से स्थापित हुई है और मध्यप्रदेश में भी ऐसी ही संस्था के स्थापन का प्रस्ताव हो रहा है।

अखिल भारतीय स्वदेशी लीग तथा प्रदर्शिनी

यस्य परजन दाता स्वजने दुःख जीविनि
मध्वा पाता विषास्वादी, सधर्म प्रतिरूपक (मनुस्मृति)

अर्थात्—जब स्वजन, देश के अपने रोजगारी आदमी तकलीफ में हैं, दुख से जीवन का निवाह कर रहे हैं उनकी जीविका, उनका रोजगार, व्यवसाय, उद्योग धन्धा, सत्यानाश बिगड़ रहा है, ऐसी दशा में भी जो आदमी उनकी सहायता करने की शक्ति रखते हुए भी परजन को, दूसरे देश के, दूसरे आदमियों को उनका बनाया माल खरीद कर मदद पहुंचाता है वह धर्म नहीं करता बल्कि धर्म का प्रतिरूपक, धर्म की झूठी नकल, धर्माभास, मिथ्या धर्म, अधर्म करता है। वह समझता है कि मैं शहद पी रहा हूँ मगर दरअसल वह जहर पी रहा है। वह समझता है कि मैंने उम्दा चीज बहुत कम कीमत में बहुत सस्ती खरीदी। आइन्दा भारी नुकसान उठावेगा।

श्री रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल
। प्रधान मंत्री
स्वदेशी लीग

मनुजी के इन्हीं भावों से प्रेरित होकर राष्ट्रपिता बापू ने स्वतन्त्रता संग्राम के प्रोग्राम में स्वदेशी वस्तु प्रयोग को प्रथम स्थान दिया। फिर क्या था बापू का हाथ लगते ही यह भावना देश में व्याप्त हो गयी। प्रयाग में भी पं॰ मोतीलाल नेहरू ने स्वदेशी प्रचार का कार्य आरम्भ किया। उस समय ... [illegible] राष्ट्रीय

स्वाधीनता का एलान कांग्रेस की ओर से हो चुका था, और संग्राम के सेनानी और सैनिक ब्रिटिश सत्ता से जूझ रहे थे, पं० मोतीलाल नेहरू का ध्यान इस रचनात्मक कार्य की ओर गया और स्वदेशी लीग की संस्थापना सन् १९२६ में किया गया। इसमें अधिक शक्ति उत्पन्न करने तथा स्वावलम्बी होने के लिए सन् १९३० ई० में सत्याग्रह संग्राम के तुमुल युद्ध के बीच स्वदेशी प्रदर्शनी संगठित करने की आयोजना बनी। सर्व प्रथम यह प्रदर्शनी पं० जवाहरलाल नेहरू की संरक्षता में स्वराज्य भवन में प्रदर्शित किया गया। उसके बाद स्वर्गीय कमला नेहरू जी इस संगठन को पालती पोषती रहीं। पं० मोहनलाल नेहरू इस संगठन के मेरुदण्ड स्वरूप रहे हैं। गैर सरकारी संस्था द्वारा संगठित यह प्रदर्शिनी भारत की सर्वोच्च प्रदर्शनियों में से है।

श्री एन० जी० दत्त
प्रधान जयगुरु संस्था

सन् १९३० से आजतक के इस लम्बे अर्से में स्वदेशी लीग, स्वदेशी प्रदर्शिनी और स्वदेशी आन्दोलन को जिन्दगी में कितनी मुसीबतें आईं, कितनी रुकावटें पैदा की गईं कितना दमन हुआ यह एक लम्बी कहानी है, किन्तु स्वदेशी लीग प्रयाग का काम कभी रुका नहीं। ज्यों ज्यों हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन विशाल और

गम्भीर होता गया, त्यों त्यों हमारी स्वदेशी भावना दृढ़तर होती गई और हमारी प्रदर्शनी भी चलती गई।

आजकल यह प्रदर्शिनी कायस्थ पाठशाला के अहाते में हर साल अक्टूबर-नवम्बर के महीने में प्रदर्शित की जाती है। इस समय इस संस्था के प्रेसीडेन्ट श्री मंगला प्रसाद उपमन्त्री यू० पी० सरकार तथा प्रधान मन्त्री श्री रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल एडवोकेट हाईकोर्ट हैं जो भली भाँति इस संस्था का कार्य संचालित कर रहे हैं।

जयगुरु संस्था—देश तथा विदेश में आर्य संस्कृति तथा धर्म की संस्थापना और प्रचार करने, साहित्य और व्याख्यानों द्वारा संस्कृति और धर्म के आधार पर हिन्दुओं में एकता उत्पन्न करने, विदेशी सभ्यता के चंगुल से हिन्दू सभ्यता को पुनर्जीवित करने तथा उसकी रक्षा करने, मन्दिरों और धार्मिक स्थानों की रक्षा करने और उन्हें नष्ट होने से बचाने, हिन्दू सभ्यता पर प्रवचनों का उचित प्रबन्ध करने, हिन्दुओं में तथा अन्य जातियों में बिना मूल्य रामायण, गीता एवं महाभारत आदि का वितरण करने, त्योहारों और मेलों पर तीर्थ यात्रियों का उचित प्रबन्ध करने के लिए यहाँ पर अभी एक नवीन संस्था खुली है जिसे 'जयगुरु संस्था' कहते हैं। इस संस्था के कर्त्ता धर्त्ता आजकल श्री एन० जी दत्त वकील हाईकोर्ट हैं।

भारत का सबसे बड़ा हाईकोर्ट

महारानी विक्टोरिया के राजत्वकाल के पचीसवें वर्ष अर्थात् १४ मई सन् १८६१ ई० में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने एक एक्ट आफ स्टेबिलिशिंग हाईकोर्ट आफ जुडीकेचर (Act of Establishing High Court of Judicature in India) पारित किया जिसके अनुसार भारत स्थित सब सदर अदालत दीवानी एवं सदर निजामत अदालत तोड़ दिये जाएं और उनकी जगह पर जहाँ जहाँ भारत सरकार उचित समझे भारत में हाईकोर्ट स्थापित किये जायँ, साथ ही साथ इन उपरोक्त अदालतों के जज ही स्थापित हाईकोर्टों

के जज नियुक्त किये जायें, जिसमें चीफ जज के अतिरिक्त पन्द्रह से अधिक जज न हों।

महाराणी के इस (Letter Patent) अधिकार पत्र अथवा फरमान शाही द्वारा सर्व प्रथम कलकत्ता हाईकोर्ट की स्थापना की गई। इसके बाद १७ मार्च सन् १८६६ ई० में पश्चिमोत्तर देश की राजधानी इलाहाबाद में हाईकोर्ट खोलने और आगरा स्थित (जो पहिले इस प्रान्त की राजधानी थी) सदर अदालत दीवानी के तोड़ देने का आयोजन किया गया। (गृह विभाग शिमला, सूचना नं० १७४१ तिथि ११ जून १८६६ सरकारी गजट पृष्ठ ३३८ से ३४३)। वैधानिक रूप से हाईकोर्ट तो यहाँ स्थापित हो गया किन्तु तीन साल तक व्यवहारिक रूप से उच्च न्यायालय का कार्य आगरे ही में होता रहा।

बड़े खेद की बात है कि इलाहाबाद हाईकोर्ट का उद्घाटन, क्यों, कैसे और कब हुआ, इसका उल्लेख 'ला रिपोर्ट' की पहली किताब में भी नहीं किया गया है। कुछ भी हो हाईकोर्ट इलाहाबाद में खोला गया। आगरे की सदर अदालत दीवानी तोड़ दी गई, और ६ जज भी नियुक्त किये गये। पहिले यह हाईकोर्ट आजकल के शिक्षा विभाग के आफिस वाले इमारत में खोला गया जिसे आजकल भी लोग पुराना हाईकोर्ट के नाम से पुकारते हैं, बाद में नया हाईकोर्ट वर्तमान इमारत में लाया गया। सर्व प्रथम सर वाल्टर मार्गन बैरिस्टर, इस हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस ५०००) माहवार पर नियुक्त हुए, और इनके अतिरिक्त अलेकजेन्डर रास, विलियम एडवर्ड, विलियम राबर्ट, चार्ल्स आरथर टर्नर, तथा फ्रेंसिस व्यायल पियर्सन, ३७५०) माहवार पर जज नियुक्त हुए। ये सब पहिले बंगाल सिविल सर्विस में थे। पहिले तीन साल तक हाईकोर्ट दो भागों में विभक्त था, चीफ जस्टिस और तीन अन्य जज आगरे में और दो जज इलाहाबाद में मुकदमे फैसल करते थे। वकीलों तथा मुवक्किलों की इस असुविधा से तंग आकर पायनियर अंग्रेजी अखबार इलाहाबाद ने अपनी २३ नवम्बर १८६८ के अंक में बड़ी तीव्र आलोचना की जिसके परिणाम स्वरूप आगरे का हाईकोर्ट विभाग तोड़ दिया गया। आगरे हाईकोर्ट का अन्तिम अपील का मुकदमा माशूकअलीखाँ बनाम नोवल (Nowl) था जिसका फैसला विलियम राबर्टस् ने किया था।

इलाहाबाद हाईकोर्ट अपने पूरे स्टाफ के साथ कब काम करने लगा यह तो ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता किन्तु यह बात अधिकार के साथ कहा जा
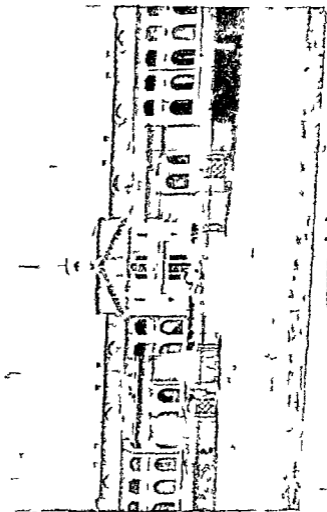
इलाहाबाद हाईकोर्ट

सकता है कि चीफ जस्टिस ने पहला मुकद्दमा सन् १८६६ के शिशिर ऋतु में किया। सिम्सन साहेब सर्वप्रथम इस हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार नियुक्त हुए, और एडवर्ड साहेब के तीन महीने के बाद ही अवकाश प्राप्त करने पर स्पेन्की साहेब जो अब तक स्थानापन्न जज थे ७ मई १८६७ को स्थायी जज नियुक्त हुए। यही पहिली नियुक्ति हुई है। मानहानि का सबसे पहिला मुकद्दमा गुडआल (Goodall) बनाम न्यूटन (Newton) का हुआ। कहा जाता है कि ये दोनों इलाहाबाद हाईकोर्ट के प्रसिद्ध बैरिस्टर थे, आपस तनातनी के कारण लड़ गए। मि० गुडआल ने न्यूटन के विरुद्ध गुमनाम चिट्ठियाँ प्रकाशित कराईं। न्यूटन साहेब ने गुडआल के ऊपर मानहानि का दावा किया, मुकद्दमा साबित न कर सकने के कारण उल्टे न्यूटन साहेब ही पाँच साल के लिये बैरिस्टरी करने से रोक दिये गये, जो प्रिवीकौन्सिल में अपील द्वारा मुक्त कर दिये गये।

इलाहाबाद बार एसोसियेशन—१६ जून १८६६ में नये हाईकोर्ट का विधान बनाया गया, जिसके अनुसार इलाहाबाद बार एसोसियेशन वजूद में आया। सदर अदालत दीवानी आगरा के सब वकील इसके सदस्य समझे गये, बशर्ते कि ये सब तीन महीने के अन्दर वकील होने की दरख्वास्त हाईकोर्ट को देकर अपने को मनोनीत करा लें। उस समय केवल ६ एडवोकेट थे—प्रिटकार्ड (Pritchard) पीटर (Pittar) वार्नर (warner) स्मिथ, (Smith) टामस (Thomas) और एराथून (Arathoon)। सन् १८७१ में २० और १८७७ में पचास एडवोकेट हुए। इनमें तीन हिन्दुस्तानी थे—सैयद मुहम्मद महमूद (१३ दिसम्बर १८७२) किशोरी मोहन चटर्जी (२८ जून १८७५) और मनफूल सूरजबन पंडित (२३ फरवरी १८७७)। सन् १८६६ में विलियम जार्डिन सर्वप्रथम सरकारी एडवोकेट नियुक्त हुए। इस हाईकोर्ट से सबसे लम्बा सम्बन्ध सर जार्ज नाक्स का रहा जिसकी अवधि १८७१ से १६२१ तक था।

उर्दू युग—सर राबर्टस स्टुआर्ट के चीफ जजी के समय तक यहाँ वकील लोग उर्दू में ही वकालत करते थे और उनके जूनियर उनके भावों का तर्जुमा करके जजों को समझाते थे। उर्दू में वकालत करने वालों में मुंशी हनुमान प्रसाद (जो कायस्थ पाठशाला के आजीवन प्रेसीडेन्ट भी थे) और जौनपुर निवासी हैदरहुसेन सर्व प्रसिद्ध वकील थे। इन दोनों परिवारों में अब तक वकालत का पेशा अबाध रूप से होता चला आ रहा है। मुंशी हनुमान

हाईकोर्ट के पुरातन वकील [बैठे हुए बाएँ से] (१) सर सुन्दरलाल, (२) बड़े सिमियन, (३) जोगेन्द्रनाथ चौधरी, (४) जस्टिस प्रमोदा चरन बनरजी, (५) जज हाईकोर्ट, (६) चीफजस्टिस स्टेनली, (७) जस्टिस करामत हुसेन, (८) जस्टिस रिचार्ड्स, (९) जज-हाईकोर्ट, (१०) पं० मोतीलाल नेहरू।
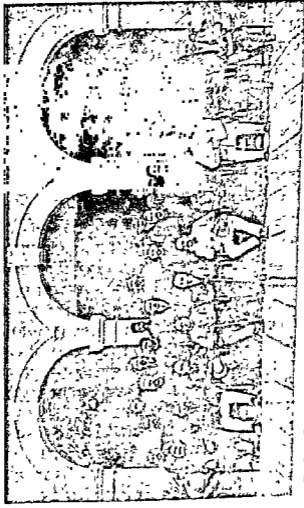
[खड़े बाईं ओर से] (१) शीतलप्रसाद घोष, (२) शरदचन्द्र चौधरी, (३) गुलाम मुजतबा, (४) गोकुलप्रसाद (५) प्यारेलाल बनरजी, (६) सतीशचन्द्र बनरजी, (७) ईश्वर सरन, (८) रजिस्ट्रार (९) ललितमोहन बनर्जी, (१०) बल्देवराम दवे, (११) भृजनारायन गुर्टू, (१२) तेजबहादुर सप्रू (१३) लालगोपाल मुकर्जी, (१४) गुलजारीलाल, (१५)

प्रसाद जी बाद में अपने परिश्रम से अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करके टूटी फूटी अंग्रेजी में वकालत करने लगे थे। मुंशी हनुमान प्रसाद के बाद उनके पुत्र मुंशी माधोप्रसाद, इसके बाद जस्टिस गोकुल प्रसाद, आजकल मुंशी अम्बिका प्रसाद और श्री गनेशप्रसाद हाईकोर्ट में वकालत करते हैं। हैदरहुसेन साहेब के बाद उनके पुत्र नवाब अब्दुल मजीद, फिर उनके पुत्र नवाब मुहम्मद यूसुफ बैरिस्टरी करते रहे जो बाद में संयुक्त प्रान्त के मिनिस्टर हो जाने के कारण वकालत छोड़ दी।

अंग्रेजी युग—इस युग में सबसे पहिला ग्रूप तीन प्रसिद्ध एडवोकेटों का था—पं० अयोध्यानाथ के जद, प० विश्वम्भरनाथ तथा आगरा निवासी मुंशी ज्वाला प्रसाद। पं० विश्वम्भरनाथ जी उन प्रथम बारह हिन्दोस्तानी विद्यार्थियों मे से थे जो सन् ५७ के बलवा के पहिले दिल्ली कालेज में अंग्रेजी पढ़ते थे। इनका स्वर्गवास सन् १६०७ ई० में हुआ। इनके परिवार के कुछ लोग अब भी इलाहाबाद ही में रहते हैं, और इनकी एक पोती की शादी इलाहाबाद हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील श्री मदन मोहन रैना से हुई थी। दिल्ली कालेज में अंग्रेजी पढ़ने वालों के दूसरे हिन्दुस्तानी ग्रूप के प्रसिद्ध व्यक्ति सर तेजबहादुर सप्रू के पितामह (grand father), थे जो बाद में वहीं मैथमेटिक के शिक्षक नियुक्त होगये। कहा जाता है कि हाईकोर्ट के संस्थापना के आदिकाल में यहाँ वकील लोग खुली दलाली करवाते थे। वकालत की फीस तथा मुकदमा जीत लेने पर इतना अधिक शुक्राना लेते थे कि इनमें से कुछ तो केवल इसी पेशे के बल पर लखपति तथा करोड़पति तक हो गये हैं। कीमती मुकदमें बाजी के कारण उधार देनेवाले महाजनों की खूब बन आई थी और लोगों में यह भावना फैल गई थी कि अगर वह अपने पुत्र को वकालत पास करा ले तो गोया उसने अपने परिवार में रुपये का एक वृक्ष लगा लिया।

हाईकोर्ट के इस अंग्रेजी युग में बड़े बड़े प्रसिद्ध एडवोकेट हो चुके हैं, जो न केवल वकालत के क्षेत्र ही में प्रख्यात थे वरन् राजनीति तथा धार्मिक क्षेत्र में भी अपने अपने समय के गण्यमान्य भारत के नेता थे। इन बहुत से प्रसिद्ध व्यक्तियों में से कुछ के नाम इस प्रकार है। सर सुन्दरलाल, बल्देवराम दवे, जस्टिस कन्हैयालाल, महामना पं० मदनमोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, जस्टिस प्रमोदा चरन, जस्टिस ललित मोहन बनर्जी,

जोगेन्द्र नाथ चौधरी, सत्याचरण बनर्जी, सीतल प्रसाद घोष, जस्टिस करामत हुसेन (संस्थापक क्राइस्टचर्च गर्ल्स कालेज) गुलाम मुजतबा, सर सुलेमान, सर तेज बहादुर सप्रू, मुंशी रोशनलाल, सच्चिदानन्द सिनहा, जस्टिस लाल गोपाल मुकर्जी, सिमियन साहेब, अविनाश चन्द्र बनर्जी, सतीश चन्द्र बनर्जी आदि। आजकल वर्तमान समय में सबसे प्रसिद्ध तथा पुरातन एडवोकेट डा० नारायण प्रसाद अस्थाना हैं जिनका संक्षिप्त जीवन चरित्र इस प्रकार है।

१६ जुलाई सन् १६४८ (सरकारी गजट न्यू दिल्ली फरमान न० S. O १७) को लखनऊ चीफ कोर्ट भी इलाहाबाद हाईकोर्ट में शामिल कर दिया गया। इस प्रकार से इलाहाबाद हाईकोर्ट भारत का सबसे बड़ा हाईकोर्ट हो गया है। इस हाईकोर्ट के सर्व प्रथम चीफ जस्टिस बी० मलिक हैं।

डा० नारायण प्रसाद अस्थाना—आपका जन्म आगरा नगर में २० अप्रेल १८७४ ई० को हुआ। आपने सन् १८६५ ई० से आगरे में वकालत शुरू किया। इसके बाद सन् १६१५ से इलाहाबाद हाईकोर्ट में आजतक वकालत कर रहे हैं। सन् १६०२ में आगरा म्युनिसिपिल बोर्ड के सदस्य तथा वायस चेयरमैन चुने गये। सन् १६१६ २३ तक में आप यू० पी० लेजिस्लेटिव कौन्सिल के मेम्बर रहे। सन् १६३७ में कौन्सिल आफ स्टेट के सदस्य हुये। सन् १६२८-३० तक आगरा विश्वविद्यालय के वायस चैन्सुलर चुने गये और इसी साल प्रान्तीय लाइयर्स कान्फ्रेन्स के प्रेसीडेन्ट चुने गये। सन् १६३७ ई० में एडवोकेट जनरल, सन् १६३७. ई० में इलाहाबाद हाईकोर्ट के बार कौन्सिल के चेयरमैन चुने गये आजकल आप एडवोकेट एसोसियेशन के प्रेसीडेन्ट हैं सन् १६४५ में सरकार ने आपको सी० आई० ई० के उपाधि से विभूषित किया।

डा० नारायण प्रसाद अस्थाना

परिशिष्ट

पुस्तक लिखते समय जिन प्रकरणों में कुछ विषय उस समय प्राप्त न हो सकने के कारण छूट गये थे, वे सब अब इस अध्याय मे जोड़ दिये गये हैं। पाठकगण निर्दिष्ट पृष्ठ पर निम्नांकित जोड़कर पढने की कृपा करें।

धार्मिक देन (पृष्ठ ३०)

जगद्गुरु शंकराचार्य—आदि शंकराचार्य ने ११ वर्ष की अवस्था में युधिष्ठिर सम्वत् २६४२ में आज से २४०८ वर्ष पूर्व बद्रीनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार करके सुप्रबन्ध तथा भारत के उत्तराखण्ड में धर्म प्रचारार्थ ज्योतिर्मठ की स्थापना की थी, और इसे उत्तरनाम्नाय का धर्मपीठ घोषित कर अपने प्रिय शिष्य तोटकाचार्य को यहाँ का आचार्य नियुक्त किया था। इसके अतिरिक्त तीन पीठ और भी स्थापित किया था।

आचार्य	वेद	दिशा	मठ	धाम	देवी
पद्मपाद	ऋग्वेद	पूर्व	गोवर्धन	जगन्नाथ	विमला
सुरेश्वर	यजुर्वेद	दक्षिण	शृंगेरी	रामेश्वरम्	कामाक्षी
हस्तामलक	सामवेद	पश्चिम	शारदा	द्वारिका	भद्रकाली
तोटक	अथर्ववेद	उत्तर	ज्योतिर्मठ	बद्रीनाथ	पूर्णागिरि

ज्योतिर्मठ बद्रिकाश्रम की आचार्य परम्परा श्री तोटकाचार्य से प्रारम्भ होता है। इस मठ की आचार्य परम्परा सम्वत् १८३३ तक अविछिन्न रही और तब तक यहाँ ४० आचार्य हुए। अन्तिम आचार्य श्री रामकृष्ण तीर्थ स्वामी के ब्राह्मीभूत होने पर उनका कोई शिष्य आचार्येन अभिषिक्त किये जाने के योग्य नहीं रहा, अतएव ज्योतिर्मठ के आचार्य की गद्दी खाली रही। इस प्रकार बद्रीनाथ भगवान के पूजन अर्चनादि में तो किसी प्रकार व्यतिक्रम नहीं हुआ, किन्तु आचार्यपीठ उपेक्षित हो गया। टेहरी नरेश महाराज प्रदीपशाह ने प्राय इस अवसर का लाभ उठाकर पुराने पुजारी को 'रावल' (अधीनस्थ राजा) की उपाधि देकर उसका अधिकारी बना दिया, जो उन्हें प्रति वर्ष कुछ नगद भेंट भी देने लगा। ऐसी

सन् १६०८ ई० में महाराजा काश्मीर, नेपाल, मेवाड़ तथा टेहरी का ध्यान इस मठ के जीर्णोद्धार की ओर आकृष्ट हुआ। सन् १६१० में गढवाल के तत्कालीन कलेक्टर सर जेम्स क्ले साहब के सहयोग से प्राचीन पीठभूमि मठ के निर्माण के लिये किसानों से खरीद ली गई। अब इस पद पर बिठाने के लिये आचार्य की खोज होने लगी। १६५ वर्षों से रिक्त ज्योतिर्मठ पर चैत्र शुक्ल सम्वत् १९९८ को स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती का पदार्पण हुआ। इन्होंने अपने को इस पद के लिये पूर्णतः उपयुक्त सिद्ध किया। योग्य आचार्य के पीठारोहण से पीठशक्ति का विकास होना स्वाभाविक ही था। आपका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती—सम्वत् १९२८ के मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को अयोध्या प्रान्त में पवित्र सरयू के निकट गाना ग्राम के सम्मानित सरयूपारीण पंक्ति पावन मिश्र ब्राह्मण कुल में आपका जन्म हुआ। आप नौ वर्ष के सुकोमल अवस्था में ही हिमालय में तपश्चर्या करने के लक्ष्य से गृह त्याग कर दिया और सीधे उत्तराखण्ड चले गये। वहाँ उत्तर काशी में शृंगेरी पीठ के सन्यासी श्री कृष्णानन्द जी सरस्वती से दीक्षित होकर २५ वर्ष की अवस्था तक वहाँ योगाभ्यास पूरा किया। तत्पश्चात् तपोभूमि विन्ध्यगिरि तथा अमरकण्टक के निर्जन पर्वतों में स्वच्छन्द निवास और विचरण करने लगे। ३६ वर्ष की अवस्था में गुरुजी से प्रयाग में त्रिवेणी संगम पर सन्यासाश्रम की दीक्षा लेकर दण्ड ग्रहण किया और एकान्तिक जीवन व्यतीत करते रहे। अन्त में सम्वत् १९९८ में किस प्रकार ज्योतिष्पीठ पर पदार्पण किया इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। आप बद्रिकाश्रम के ज्योतिष्पीठ पर बहुत कम निवास करते थे। आप प्रयागान्तर्गत अलोपी बाग में स्थित ब्रह्मनिवास में निवास करते थे, एक प्रकार से इनके कारण प्रयाग ही उत्तराखण्ड का अस्थाई ज्योतिष्पीठ हो गया है। आप सम्वत् २००० में ब्रह्मीभूत हो गये। अब इस गद्दी के लिये स्वामी शान्तानन्द और स्वामी स्वरूपानन्द में मुकदमे बाजी हो रही है।

राजनैतिक देन (पृष्ठ १२७)

क्रान्तिकारियों की प्रगति—नवम्बर सन् १९०७ में 'स्वराज्य' नामक

परिस्थिति में आचार्य का स्थान रिक्त रहना ही उन्हें अभीष्ट हो गया। इस प्रकार ज्योतिर्पीठ सं० १८३३ से १९९८ तक आचार्य विहीन दशा में उद्विग्न पड़ा

शङ्कराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

रहा। धीरे धीरे मठ नष्ट हो गया। आचार्य शंकर की गुहा, तोटक की गुहा, अमर शहतूत वृक्ष, यही मठ का पता बताने के लिए अवशिष्ट बच रहे।

सन् १९०८ ई० में महाराजा काश्मीर, नेपाल, मेवाड़ तथा टेहरी का ध्यान इस मठ के जीर्णोद्धार की ओर आकृष्ट हुआ। सन् १९१० में गढ़वाल के तत्कालीन कलेक्टर सर जेम्स क्ले साहब के सहयोग से प्राचीन पीठभूमि मठ के निर्माण के लिये किसानों से खरीद ली गई। अब इस पद पर बिठाने के लिये आचार्य की खोज होने लगी। १६५ वर्षों से रिक्त ज्योतिर्मठ पर चैत्र शुक्ल सम्वत् १९९८ को स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती का पदार्पण हुआ। इन्होंने अपने को इस पद के लिये पूर्णतः उपयुक्त सिद्ध किया। योग्य आचार्य के पीठारोहण से पीठशक्ति का विकास होना स्वाभाविक ही था। आपका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती—सम्वत् १९२८ के मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को अयोध्या प्रान्त में पवित्र सरयू के निकट गाना ग्राम के सम्मानित सरयूपारीण पंक्ति पावन मिश्र ब्राह्मण कुल में आपका जन्म हुआ। आप नौ वर्ष के सुकोमल अवस्था में ही हिमालय में तपश्चर्या करने के लक्ष्य से गृह त्याग कर दिया और सीधे उत्तराखण्ड चले गये। वहाँ उत्तर काशी में शृंगेरी पीठ के सन्यासी श्री कृष्णानन्द जी सरस्वती से दीक्षित होकर २५ वर्ष की अवस्था तक वहाँ योगाभ्यास पूर्ण किया। तत्पश्चात् तपोभूमि विन्ध्यगिरि तथा अमरकण्टक के निर्जन पर्वतों में स्वच्छन्द निवास और विचरण करने लगे। ३६ वर्ष की अवस्था में गुरुजी से प्रयाग में त्रिवेणी संगम पर सन्यासाश्रम की दीक्षा लेकर दण्ड ग्रहण किया और एकान्तिक जीवन व्यतीत करते रहे। अन्त में सम्वत् १९९८ में किस प्रकार ज्योतिष्पीठ पर पदार्पण किया इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। आप बद्रिकाश्रम के ज्योतिष्पीठ पर बहुत कम निवास करते थे। आप प्रयागान्तर्गत अलोपी बाग में स्थित ब्रह्मनिवास में निवास करते थे, एक प्रकार से इनके कारण प्रयाग ही उत्तराखण्ड का अस्थाई ज्योतिष्पीठ हो गया है। आप सम्वत् २००० में ब्रह्मीभूत हो गये। अब इस गद्दी के लिये स्वामी शान्तानन्द और स्वामी स्वरूपानन्द में मुकदमे बाजी हो रही है।

राजनैतिक देन (पृष्ठ १३७)

क्रान्तिकारियों की प्रगति—नवम्बर सन् १९०७ में 'स्वराज्य' नामक

इलाहाबाद से एक पत्र निकला, यहीं से पहिले पहिल इस शान्तिपूर्ण प्रान्त में क्रान्तिकारी प्रचार तथा प्रयास का सूत्रपात होता है। इसके परिचालक एक सज्जन श्री शान्तिनारायण थे जो पहिले पंजाब के किसी अखबार के सचालक थे। इस पत्र का उद्देश्य लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीतसिंह की नजरबन्दी से रिहाई की यादगारी थी। इस अखबार का लहजा शुरू से ही सरकार के विरुद्ध था, किन्तु ज्यों-ज्यों इसके दिन बीतने लगे, यह और गरम होता गया। अन्त में खुदीराम बोस के सम्बन्ध में आपत्तिजनक लेख के कारण इनको लम्बी सजा हुई। स्वराज्य अखबार फिर भी बन्द न हुआ, चलता रहा। एक के बाद एक इसके ८ सम्पादक नियुक्त हुए जिनमें सबको सजाएँ हुईं। इन आठ में सात पजाबी थे। १९१० के प्रेस ऐक्ट के बाद ही यह अखबार बन्द किया जा सका। जिन लेखों पर आपत्ति की गई थी उनमें से एक तो खुदीराम बोस पर था। यह खुदीराम बोस वह थे जिन्होंने श्रीमती तथा कुमारी कनेडी की हत्या कर डाली थी। दूसरे ऐसे लेखों के शीर्षक यों थे। 'बम या बायकाट', 'जालिम और दबाने वाला'। यद्यपि इस अखबार ने बड़े जोरों से राजद्रोह फैलाया फिर भी इस प्रान्त में इसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। इलाहाबाद से १९०९ में एक ऐसा ही अखबार 'कर्मयोगी' निकला जिसके सम्पादक प० सुन्दरलाल 'भारत में अँगरेजी राज्य' के लेखक थे। किन्तु इसका भी कोई नतीजा इस प्रान्त में नहीं हुआ।

१९०८ में होतलाल वर्मा नाम के एक व्यक्ति को हम एकाएक राजद्रोह प्रचार कार्य में नाम करते हुए पाते हैं। ये जाति के जाट थे और पंजाब में पत्रकार के रूप में कुछ दिनों तक काम करते थे। अरविन्द घोष का कलकत्ते से जो बन्देमातरम् नामक अखबार निकला था ये उसके सम्वाददाता थे। बाद को इनको क्रान्तिकारी प्रचार कार्य में दस साल का कालेपानी हुआ। ये महाशय चीन, जापान तथा यूरोप घूम चुके थे तथा वहाँ क्रान्तिकारी लोगों के प्रभाव में आ चुके थे। इनके पास बम बनाने के मैनुअल के कुछ हिस्से मिले थे। ये हिस्से अनुशीलन समिति के द्वारा बनाए गये मैनुअल से मिलते जुलते थे। इन्होंने अलीगढ़ के नौजवानों में राजद्रोह फैलाने की कोशिश की, किन्तु इसका कोई नतीजा नहीं हुआ।

चन्द्रशेखर आजाद के स्थानीय अल्फ्रेड पार्क (कम्पनी बाग) में २७ फरवरी सन् १९३१ ई० को शहीद होने के बाद इस प्रान्त का काम ढीला पड़ गया।

महात्मा गांधी के आन्दोलन ने उन परिस्थितियों को जिससे इस क्रान्ति की धारा की उत्पत्ति हुई थी, बदल दिया था।

चन्द्रशेखर आजाद

यशपाल बहुत दिनों से सरकार की आँखों में खटकते थे। नायसराय पर

बम, पंजाब के गवर्नर पर गोली आदि कई मामलों में पुलिस इन पर शक करती थी। २२ जनवरी सन् १६३२ को जब यह कानपुर से इलाहाबाद आ रहे थे तो पुलिस रास्ते में ही उनके पीछे लग गई थी। जब यह जाफर अली बैरिस्टर अलीगढ़ के श्रीमती सावित्री देवी नामक आयरिश धर्मपत्नी के घर पर—जो स्थानीय कृष्णा प्रेस, क्रिकेट रोड पर था–ठहरे तो रात ही में मि० विल्ड्स पु० सु० ने दलबल सहित उक्त मकान को घेर लिया। दोनों ओर से गोली चली अन्त में यशपाल गिरफ्तार हुए। उन्हें १४ साल की और श्रीमती सावित्री देवी को ५ साल की सजा हुई। सावित्री देवी का परिचय यह है कि वह अलीगढ़ के बैरिस्टर मि० जाफर अली की आयरिश स्त्री थी, जिन्होंने अपना नाम बाद में बदल कर सावित्री देवी रख लिया था। यह कुछ दिनों तक यहाँ के क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में अध्यापिका का कार्य करती रहीं, किन्तु २१ जनवरी १६३२ का इन्होंने अध्यापकी से स्तीफा दे दिया। आप खद्दर की साड़ी तथा स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार किया करती थीं। २३ जनवरी सन् १६३२ को ४॥ बजे सुबह के तूफान मेल से प्रसिद्ध विप्लवी नेता यशपाल आपके यहाँ आकर ठहरे और उन्हीं के साथ इनको भी सजा मिली।

असहयोग शिथिल होने के बाद काकोरी षड्यन्त्र केस में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल के सहोदर भाई भूपेन्द्रनाथ सान्याल ने ५ साल की सजा पाई, जो आजकल स्थानीय दैनिक हिन्दी 'अमृत पत्रिका' के सहकारी सम्पादक हैं।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रोशनसिंह को स्थानीय मलाका जेल में ही फाँसी के तख्ते पर लटकाया गया था। संक्षेप में प्रयाग में क्रान्तिकारियों की इतनी ही गति प्रगति रही है। अब इसका यहाँ नामोनिशान भी नहीं है।

पीरूमल राधारमन—इस कोठी के प्रसिद्ध व्यक्ति डा० रामचरण अग्रवाल का जन्म १३ दिसम्बर १६०६ को हुआ। आपकी शिक्षा दीक्षा स्थानीय कायस्थ पाठशाला में हुआ, जहाँ से आपने सन् १६३१ में एम० ए० एल० एल० बी० पास किया और १६५१ में डी फिल की डिग्री प्राप्त किया। आप एक रईस ताल्लुकेदार होते हुए भी जिस प्रकार से उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त किया ठीक उसी प्रकार से आपका सार्वजनिक जीवन भी विशेष उल्लेखनीय है। आप सन् १६३५ से १६४४ तक स्थानीय नगरपालिका के सदस्य रहे। सन् १६४८ ई० में

इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट के सदस्य तथा सन् १९५० में उसके चेयरमैन नियुक्त हुए। साहित्य के क्षेत्र में आप साहित्य सम्मेलन के मेरठ अधिवेशन में परीक्षा मन्त्री, पुनः प्रबन्ध मन्त्री, फिर कोटा अधिवेशन में प्रधान मन्त्री चुने गये। सेवा समिति के कार्यकारिणी के सदस्य तथा विद्या मन्दिर कालेज के प्रबन्ध कमेटी के सदस्य, १५ साल से गवर्नमेन्ट कारपेन्टरी स्कूल के सलाहकारी समिति के सदस्य। इस समय आप राधारमण इन्टर मिडियट कालेज के प्रेसीडेन्ट तथा मैनेजर हैं। आप रोटरी क्लब के सदस्य, इलाहाबाद स्वदेशी लीग के वायस प्रेसीडेन्ट, रीजनल तथा जोनल रेलवेज यूजर्स कन्सल्टेटिव कमेटी के मेम्बर, तथा कांग्रेस के सन् १९४२ के आन्दोलन में ६ माह की सजा भुगत चुके हैं। शहर कांग्रेस कमटी के प्रधान मन्त्री थे, आजकल आप इस कमेटी के उप-प्रधान हैं। इसके अतिरिक्त आप समाज सेवक समिति, जिला प्लानिंग कमेटी, दारागंज सहकारी उपभोक्ता के प्रेसीडेन्ट, गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट कार्यकारिणी के सदस्य, मूक बधिर समिति के वायस प्रेसीडेन्ट, यूनाइटेड नेशन एसोसिएशन; भारती भवन, हिन्दी विद्यापीठ तथा अग्रवाल सेवा समिति के प्रमुख सदस्यों में से हैं।

रायसाहब डा० रामचरण अग्रवाल

राय बहादुर कामता प्रसाद कक्कड़—आपके मूल पुरुष पंजाब प्रान्त के एक प्रतिष्ठित खत्री थे। वहाँ से १६० वर्ष पूर्व इनके पूर्वज प्रयाग में आकर रस-बस गये। आपका जन्म अक्टूबर १८८६ ई० में हुआ। आप म्योर सेन्ट्रल कालेज से १९०६ ई० में मो० ए०, तथा १९१० में एल० एल० बी० पास किया। इसके बाद सन् १९११ से आप इलाहाबाद ही में वकालत करने

लगे। आपका नाम लेते ही इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड का नक्शा सामने आ जाता है। आप सन् १९१४ ई० में स्थानीय नगरपालिका के सदस्य, १९२० में उसके प्रथम चेयरमैन नियुक्त हुए। सन् १९२५ ई० में आप जनता द्वारा फिर नगरपालिका के सदस्य चुने गये। उसी साल फिर आप चेयरमैन हो गये। आप इस बोर्ड के लगातार १३ साल तक चेयरमैन रहे। आप ही के समय में प्रयाग का प्रसिद्ध म्युनिसिपल अजायबघर स्थापित हुआ।

राय बहादुर कामता प्रसाद कक्कड़

म्युनिसिपल बोर्ड के अतिरिक्त आप नगर के अन्य संस्थाओं के संचालक मन्त्री तथा सभापति थे। सेवा समिति के सदस्य, पंजाब नेशनल बैंक, जिला सहकारी बैंक, तथा लीडर अखबार के डाइरेक्टर थे। विद्यामन्दिर हाई स्कूल तथा खत्री पाठशाला के प्रमुख सदस्य थे। आप सन् १९१७ से सरकारी वकील भी थे। आप फ्री मेसन लाज के मास्टर मेसन थे।

अनोपीदीन शिवप्रसाद—लोहे का यह प्रसिद्ध तथा पुरातन फर्म बहादुर गंज में स्थित है। इसके मालिक श्री रामाराम जायसवाल हैं। आपका जन्म सितम्बर १९०६ ई० में हुआ है। इस वंश के मूल पुरुष ला० वृन्दावनदास नगर के प्रसिद्ध लोहे के व्यापारी थे। इनके पुत्र अनोपीदीन, और इनके पुत्र ला० शिव प्रसाद तथा श्री नारायणदास जी थे। श्री नारायण दास के

पुत्र इस समय फर्म के मालिक श्री राजाराम जी जायसवाल तथा श्री रामचरण जी

अलापीदीन

जायसवाल हैं। श्री राजाराम जी नगर व भिन्न भिन्न कई समाज सेवक संस्थाओं के प्रमुख सदस्य, कोषाध्यक्ष मन्त्री आदि हैं। आपको रामलीला में प्रबन्ध करने की एक विशेष अभिरुचि है। श्री रामचरण जायसवाल के विचार राष्ट्रीय हैं। आप सन् १९४२ के जनक्रान्ति में जेल के अतिथि भी रह चुके हैं। इस समय आप प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के एक विशेष कार्यकर्त्ता हैं।

लाला द्वारिका प्रसाद जौहरी

जौहरी—इस परिवार के पूर्वज लाला हरप्रसाद जौहरी का निवास स्थान नारनौल है। आपने प्रयाग आकर जवाहरात का व्यवसाय आरम्भ किया, आपने तीन पुत्र हुए। जिनमें दो सन्तानहीन रहे, तीसरे एक लाला रामलाल के पुत्र श्री राधिका प्रसाद जौहरी बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। आपका विवाह अजमतगढ निवासी रा० ब० मुकुन्द लाल के बहिन से सम्पन्न हुआ था। आपने दो लाख की लागत का एक ट्रस्ट की व्यवस्था किया जिसके खर्चे से आजकल ओसा गाँव में दुर्गा देवी हाई स्कूल का प्रबन्ध किया जा रहा है। वर्त्तमान समय में इस कुटुम्ब के सर्वप्रिय तथा प्रसिद्ध व्यक्ति लाला द्वारिका प्रसाद जौहरी हैं, जिनका जन्म सम्वत् १९५७ में हुआ। आप लाला बद्री प्रसाद जौहरी वकील तथा आनरेरी मैजिस्ट्रेट के दत्तक पुत्र हैं। आप नगर के प्रत्येक सार्वजनिक तथा जन हितकारी कार्यों में भाग लेने में विशेष अभिरुचि रखते हैं। आप जिला बोर्ड के सदस्य तथा आल इण्डिया अग्रवाल सेवा समिति के प्रधान मन्त्री रह चुके हैं। आपके यहां जवाहरात और बैंकिंग का कारोबार होता है।

उदासीन सम्प्रदाय के एक मात्र पूजनीय
उदासीनाचार्य गुरु श्रीचन्द्रजी
(विस्तृत वर्णन के लिये पृष्ठ ४१ देखिए)

उपसंहार

राष्ट्र पुनर्निर्माण के इस युग में धर्म और संस्कृति की दुहाई देकर, प्राचीन सभ्यता का यशोगान गाकर, अतीत की ओर लौटने की जो माँग रखी जा रही है, वह उन सभी के लिये खतरे की घन्टी है, जो हजारों बरसों की दासता व उत्पीड़न-शोषण के बाद अब कुछ आजादी की साँस लेने लगे हैं। चिर शोषित, प्रताड़ित व पीड़ित प्रयाग का प्राचीन वैभव तथा भविष्य उन्हीं में से एक है। क्योंकि नवोदित राष्ट्र के रूप में भारत को पाकर विश्व उसके इतिहास से परिचित होने की उत्सुकता रखती है। दुनिया के कोने-कोने में यही प्रश्न किया जा रहा है और वह है—"भारत क्या था, भारत क्या है और क्या होगा"। भारत अपने पाँच हजार वर्षों की दासता में भी इस बात का दावा करता रहा है कि वह जगद्गुरु है, ससार में फैली हुई वर्तमान सभ्य जातियाँ उसी के अंग प्रत्यङ्ग हैं। गणित, ज्योतिष, संस्कृति, कला कौशल तथा विज्ञान में ससार भारत का चिर ऋणी है। आज ससार आजाद भारत से इन सब का प्रमाण चाहता है। क्योंकि यह ज्ञान-विज्ञान का युग है, अज्ञान और धाधली का नहीं। यह तर्क तथा सुतर्क का युग है, मूढता, अन्धविश्वास, अलिफलैला के किस्से तथा कुतर्क का नहीं। आज ससार केवल सिंह की खाल ओढ लेने वाले को सिंह, केवल मयूर पख धारण कर लेने वाले को मयूर अथवा केवल नील के रग में अपना शरीर रग लेने वाले को वनराज स्वीकार कर लेने को तैयार नहीं है। भारत को अपने प्रत्येक दावे का सजीव प्रमाण मनुष्य तथा स्थल विशेष के रूप में देना होगा।

हम भारतियों का दावा है कि हमारी सभ्यता ससार की अन्य सभी जातियों की सभ्यता की अपेक्षा प्राचीनतम है। हमने ही अपनी सभ्यता के आलोक से अन्य देशों को पहले पहल आलोकित किया था। जिस समय भूमण्डल की आधुनिक सभ्यताभिमानी जातियों के नग्न-प्राय पूर्वज अपना जीवन पशुवत व्यतीत करते और गिरि-गह्वरों तथा जंगलों में निवास कर वन्य पशुओं के कच्चे मास से अपनी क्षुधा शान्त किया करते थे। जिस समय वर्तमान योरुप की सभ्यता के जनक, रोमन और यूनानियों में सभ्यता का अभी अकुर तक न उगने पाया

गया, उस समय हमने विज्ञान और कला के विविध विभागों में अपनी सूक्ष्म-दर्शिता दिखा दी थी। मनुस्मृति कहती है।

एतद्देश प्रसूतस्य, सकाशादग्रजन्मनः

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्, पृथिव्यां सर्व मानवः (मनु २।२०॥)

अर्थ—कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शूरसेन ये सब मिलकर ब्रह्मर्षि देश कहलाते हैं। इस ब्रह्मर्षि देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से पृथ्वी के सभी मनुष्य अपना अपना आचार-व्यवहार सीखें।

हम भारतीय इस बात का भी दावा करते रहे हैं कि हमारी सभ्यता और संस्कृति संसार में प्राचीनतम है। मिश्र के स्फिंक्स और पिरेमिड, बाबुल के लटकते हुए बाग, चीन की भीमकाय दीवार, रोड्स टापू के बन्दरगाह पर बनी हुई सूर्यदेव (Appollo) की विशाल धातुमयी मूर्ति आदि जो प्राचीन जगत के सप्ताश्चर्यों में से हैं, कम से कम तीन से छः हजार वर्षों तक के बने हुये हैं, जिनके द्वारा उनसे सम्बन्धित जातियों की सभ्यता की प्राचीनता भलीभांति सिद्ध होती है। क्या भारत भी अपनी तथाकथित प्राचीनतम सभ्यता के स्मारक स्वरूप कोई ऐसी ही आश्चर्यजनक प्राचीन वस्तु या कम से कम उसका ध्वंसावशेष अपने यहाँ दिखा सकता है?

हम भारतीय आत्मश्लाघा की प्रबल प्रेरणा से वशीभूत होकर अपने यहाँ की शिल्प-कला तथा विज्ञान को भी सर्वश्रेष्ठ, स्वतन्त्र तथा प्राचीनतम मानते हैं। हमारा कथन है कि यूरोप वासियों ने जिन वायुयानों का आविष्कार कर समस्त जगत को चमत्कृत कर दिया है, वे हमारे पूर्वजों को कई सहस्राब्दियों पहले ही मालूम थे, और इनके द्वारा वे भलीभाँति विपद-यात्रा तथा आकाश युद्ध किया करते थे। प्रमाण में कहा जाता है कि श्रीराम लंका से पुष्पक विमान पर अपने दल-बल सहित सवार होकर अयोध्या लौटे थे।

ऋग्वेद के ४।३६, १।४७।२, १।१८८।२, १।११८।४, १।२०।३ आदि कतिपय स्थानों पर ऐसे रथों का वर्णन पाया जाता है, जिनकी गति द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष, इन तीनों लोकों में अव्याहत थी। शत्रु सेना पर धुँआधार अग्नि वर्षा करने वाले आग्नेयास्त्र, जलवर्षा करने वाले वरुणास्त्र, झंझा पैदा करने वाले वायव्यास्त्र आदि विविध अस्त्रों का उल्लेख उदाहरणस्वरूप पुराणों में मिलता है।

महर्षि विश्वामित्र ने बला और अतिबला नामक विद्या-द्वय का उपदेश श्रीराम को दिया था। इसके अतिरिक्त उक्त ऋषि ने विविध प्रकार के विष्णुचक्र, ऐन्द्रचक्र, शैव शूलवत, ब्रह्म शिरोऽस्त्र, ब्रह्मास्त्र, धर्मपाश, कालपाश, वरुणपाश, पैनाकास्त्र नारायणास्त्र, आग्नेयास्त्र वायव्यास्त्र आदि अस्त्रों की शिक्षा उन्हें दी थी। महाभारत काल में महाराज धर्मराज युधिष्ठिर ने 'मयदानव' इंजीनियर द्वारा एक ऐसा सभा भवन का निर्माण कराया था जिसमें थल की जगह जल, और जल की जगह थल दिखलाई पड़ता था, जिसके रचनाकौशल ने दुर्योधन को बारम्बार धोखे में डाला था। उस भवन में ऐसे निर्जीव पक्षी बनाये गये थे जो सजीव की भाँति गाते थे। यह सब होते हुए भी आज हमारे ऊपर 'पिदरम सुल्तान बूद तुरा च' (हमारे बाप बादशाह थे किन्तु हमारे लिये क्या) का मसला चरितार्थ होता है। क्या हम दूसरे के धन से धनी तथा दूसरे के पुत्र से पुत्रवान कहला सकते हैं? नहीं। तब भारत के ये सब दावे क्या पागल के प्रलाप, गिरे को सहारा तथा अग्रसर होने के लिए प्रेरणा मात्र हैं? नहीं।

विदेशी स्वीकार करते हैं—सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता वर्ट साहेब को विराट नगर की टेकड़ी पर चालीस हजार पुराना, संसार का सबसे प्राचीन शिला लेख प्राप्त हुआ है जो सन् १०२२ ई० में मुहम्मद गोरी को भी आक्रमण के समय मिला था। इससे हमारे लेखन कला की प्राचीनता का प्रमाण मिलता है। प्रो० हीरेन तथा प्रो० विल्सन का कथन है कि 'हर एक खोज इस तत्व की पुष्टि करता है कि प्राचीन काल में भारत में लेखनकला ज्ञात थी'। प्रो० मोमर लिखते हैं—"यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है जो इस न्यायपूर्वक सत्य का गौरव रखता है कि वह मानव जाति का आदि स्थान था, तो वह देश निस्सन्देह भारतवर्ष है।" एक फ्रेंच इतिहासज्ञ का कहना है कि 'भारत जगत की उत्पत्ति स्थान है। यहीं से सर्वसाधारण की मातृभूमि ने पश्चिम की अन्तिम सीमा तक अपनी सन्तान को भेजा है, और अपना उत्पत्ति स्थान भारतवर्ष ही है" ऐसा अकाट्य प्रमाण देते हुए उसने अपनी भाषा, कायदे, नीति, तत्व, साहित्य और धर्म का हमें हकदार किया है। हिस्ट्री आफ माडर्न फिलासफी के लेखक विक्टर कजिन का कहना है कि "जब हम भारतवर्ष के काव्य और वेदान्त के ग्रन्थ ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं तब उन ग्रन्थों में इतने और ऐसे-ऐसे गम्भीर सत्य मिलते हैं कि पाश्चात्य प्रतिभा-शक्ति (Genious) की 'मस्जिद तक की दौड़' अति तुच्छ

प्रतीत होती है और हमें भारत के सामने घुटनों के बल झुकना पड़ता है और हमें मानव जाति के इस आदि स्थान में उच्चातिउच्च तत्वज्ञान की जननी भूमि का परिचय मिलता है" । कर्नल टाड लिखते हैं "हम उन ऋषियों को दूसरी जगह कहाँ पा सकते हैं जिनके दर्शनशास्त्र ग्रीस के आदर्श थे, जिनके ग्रन्थों का प्लेटो, थेल्स और पायथागोरस शिष्य थे । हम उन ज्योतिषियों को कहाँ पा सकते हैं जिनका ग्रहमण्डल सम्बन्धी ज्ञान आज भी यूरोप में आश्चर्य उत्पन्न करता है । हम उन कारीगरों और मूर्तिकारों को कहाँ पा सकते हैं जिनके कार्य हमारी प्रशंसा के पात्र हैं, और हम उन गायकों को कहाँ देख सकते हैं जो मन को आनन्द से दुख में दौड़ा सकते हैं और आँसुओं को मुस्कराहट में बदल सकते हैं ।"

स्यात इतने अवतरण पाठकों के इस उत्सुकता को सन्तुष्ट कर सकें कि हमारे यहाँ सब से पहले मानवीय संस्कृति का आविष्करण हुआ और हमारे ही यहाँ से इनका प्रकाश संसार ने ग्रहण किया । हमने सबसे पहिले संसार को सभ्यता का पाठ पढाया । ग्रीक और रोम हमारे चेले हैं । इस बात को पाश्चात्य अन्वेषकगण भी स्वीकार करने लगे हैं । किन्तु भारत में ऐसा कौन सा प्रमाणित व्यक्ति तथा स्थल है जो इन सब उपर्युक्त तथ्यों के प्रमाण में पेश किया जा सकता है । व्यक्ति के रूप में तो भारत आज बेधड़क एक ऐसा व्यक्ति संसार के सामने पेश कर सकता है जिसके बड़प्पन और महानता का सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त है, और जिसके विषय में एक अँगरेज ने कहा था कि "आनेवाली पीढियाँ मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि कभी कोई रक्त मांस का ऐसा व्यक्ति भी इस धरती पर चलता फिरता था ।" महामना मालवीय के शब्दों में "ऐसा युगपुरुष पाँच हजार साल के बाद अवतरित हुआ करता है ।" वह पुरुष राष्ट्रपिता बापू थे । वह युगपुरुष की परम्परा की चौथी कड़ी थे—नरसिंह, राम, कृष्ण और गांधी । सचमुच उन्होंने कार्य भी ऐसा ही आश्चर्यजनक किया है । हिरण्यकश्यप, रावण, कंस और दुर्योधन से भी अधिक व्यापक, उदय अस्त तक राज्य करने वाले, संसार के सब जीवित प्राणियों को एक दिन का भोजन प्रदान करने वाले मूल्य वाले 'कोहेनूर हीरा' से सुशोभित मुकुटधारी अँगरेज जाति को अपनी धूनी के विभूति से समुद्र पार ऐसा फेंक दिया जैसे भगवान राम ने बिना फर के शर से मारीच और सुबाहु को समुद्र पार फेंक दिया था । ऐसे युगपुरुष के उत्तराधिकार का गौरव भी 'जवाहिर' के रूप में आज प्रयाग को ही है ।

नगर के रूप में हम आज के आधुनिक सप्तपुरियों—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, रंगून, नागपुर, लाहौर तथा कराँची आदि को जिनको अभी कल अँगरेजों ने अपने व्यापारिक मंडियों के रूप में बसाया था, शिकागो, फिलेडेल्फिया, न्यूयार्क, लन्दन, बर्लिन, पेरिस आदि नगरों के सम्मुख पेश नहीं कर सकते। हाँ, इस सम्बन्ध में दिल्ली का कुछ अधिकार है। किन्तु वह तो 'तप से राज्य, और राज्य से नरक' वाली कहावत को महाभारत काल से गांधी निधन तक प्रमाणित करती आ रही है। महाभारत काल में यह दिल्ली दोनों भाइयों के लिये कुरुक्षेत्र सिद्ध हुई, मध्यकाल में पृथ्वीराज जयचन्द के बीच रणक्षेत्र बनी, मुगलों ने अपनी राजधानी आगरा से हटाकर दिल्ली में करते ही सन् ५७ के बलवे के रूप में अपने को स्वाहा किया। अँगरेजों ने कलकत्ता से अपनी राजधानी दिल्ली किया उसी दिन से उनका पतन आरम्भ हो गया और अन्त में उस पार चले गये। अपने देश में अपना राज्य घोषित होते ही युगपुरुष गांधी को दिल्ली में समाधि लेनी पड़ी। इस प्रकार दिल्ली मुर्दों का टीला है, जिनके कब्र खून के गारे और चूने से बने हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि—

दिल्ली किसी की नहीं—दिल्ली संसार की उन नगरियों में है जिनके आँचल सदैव रक्त से लाल होते रहे हैं, यह वैभव और विलास की नगरी दिल्ली सदैव से अभागी रही है, इसके वक्षस्थल पर भारत के कितने ही महान् साम्राज्यों और सम्राटों का उत्थान पतन हुआ है। यह दिल्ली कितनी ही बार उजड़ी और बसाई गई, बिगाड़ी और सँवारी गई। कितनी बार लुटी और पराजित होकर पद-दलित की गई। कितनी ही बार विधवा और सधवा की गई, लक्ष्मी और वेश्या की भाँति यह दिल्ली किसी एक की नहीं रही। इसने जयचन्द और मीर कासिम का विश्वासघात देखा, शिवाजी, राणा प्रताप, अमरसिंह का देशप्रेम देखा; तेगबहादुर, गोविन्दसिंह, बन्दा बैरागी, जोरावर और फतेसिंह का बलिदान भी देखा, नेताजी के सैनिकों को फाँसी पाते भी देखा। दिल्ली ने सन् १९४७ ई० के अमर १५ अगस्त के शुभ प्रभात में स्वाधीनता भी देखी, परन्तु उस अभागिनी दिल्ली ने ३० जनवरी सन् १९४८ ई० को संसार के सर्वश्रेष्ठ महामानव, युगपुरुष, राष्ट्रपिता बापू 'गांधी' का पाशविक हत्या भी इसी देश के एक नर पिशाच द्वारा होते हुए देखा। इसी दिल्ली ने भारत को दो खण्डों में विभक्त होते हुए और उसके फलस्वरूप नर हत्या, लूट, अग्निकाण्ड के दृश्य

भी देखे। यही दिल्ली के बनाने, बिगाड़ने, उजाड़ने और बसाने व सँवारने विधवा और सधवा करने, सनाथ और अनाथ करने की करुण कहानी है किन्तु इसके विरुद्ध—

प्रयाग सच्चा है—पिछले अध्यायों में हमने एक दीर्घकालीन इतिहास के विभिन्न युगों में प्रयाग प्रान्त का धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दशा का अवलोकन किया है। हमने देखा है कि प्राग्वैदिक एवं वैदिक काल, प्राक्-साम्राज्यकाल, साम्राज्य काल (नन्द, मौर्य, शुंग) गुप्तकाल में प्रयाग कितने महोन्नति को प्राप्त था। प्रयाग के वैभव को पुनः दुहराना पाठकों को समा-खराशी (कान चबाना) तथा तजीय औकात (व्यर्थ समय नष्ट करना) करना है। २५०० साल पुरानी वत्स राज्य की राजधानी कौशाम्बी, ६००० साल की झूसी और लक्षागिर, लगभग १० हजार साल पुराना भारद्वाजाश्रम और निषादराज गुह की राजधानी शृंगवेरपुर इसी प्रयाग के अन्तर्गत अपनी प्राचीनता, सभ्यता और संस्कृति का प्रमाण देते हुए आज भी वर्तमान हैं। अक्षयवट की छाया में तथा पटकूल के अन्दर बसी हुई प्रयाग नगरी में अपनी प्राचीन वैभव को पुनः प्राप्त करने की सामर्थ्य अब भी मौजूद है। जरूरत है water saw its master and blushed, अर्थात् अपने मालिक को देखते ही पानी लाल हो गया। गांधी द्वितीय राजेन्द्र बाबू, गांधी के उत्तराधिकारी जवाहरलाल तथा लौह पुरुष पटेल के प्रतिरूप काटजू के प्रयाग के ऊपर ध्यान देते ही प्रयाग पुनः संसार में अपना प्राचीन गौरव प्राप्त कर सकता है। दिल्ली हमारे स्वतन्त्रताजनक, युगपुरुष बापू की समाधि-स्थान बन चुकी है, इसलिए प्रयाग गांधी राज्य की राजधानी बनाई जाय यही हमारी कामना है। हजरत मूसा के शब्दों में मेरी रट तो यही है कि—

मैं 'रब्बे अरनी' कहे जाऊँगा
उधर से है गो 'लन्तरानी' का जोर

अर्थात्—जब हजरत मूसा ने कोहे तूर पर जाकर कहा कि 'ऐ खुदा तू मुझे अपना जलवा दिखा' तब उधर से बार-बार यह आवाज आती रही 'तुझमें जलवा देखने की सामर्थ्य नहीं है।'

-